महामंत्री

7093
N->2.U
MOH

7093
N-7 Dec
Mott

हिम्मती

23253

BASTHI PUNDALIK SHENOY,
"BASTHI URVA" CHILIMBI;
MANGALORE-575006.

BASTHI PUNDALIKA SHENOY,
URVA CHILIMBI,
MANGALORE-575006.

BASTHI PUNDALIK SHENOY,
URVA CHILIMBI;
MANGALORE-575006.
ಎ. ಎ. ೨೪

महामंत्री

ऐतिहासिक उपन्यास

मोहनलाल महतो वियोगी

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

BASTHI PUNDALIKA SHENOY,
URVA CHILIMBI,
MANGALORE-575006.

मूल्य : चार रुपये
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
मुद्रक : मुद्रक : मदन हाफ़-टोन कम्पनी, दिल्ली-६

MAHAMANTRI : MOHANLAL MAHTO VIYOGI
NOVEL

BASTHI PUNDALIK SHENOY,
URVA CHILIMBI,
MANGALORE-575006.

निराकरण

जो पुस्तक आपके हाथ मे है वह है तो उपन्यास ही, किंतु कुछ ऐसी बातें भी आपको मिलेंगी, जिनका सीधा सम्बन्ध इतिहास से है। इतिहास गणित की तरह भ्रांति-रहित हो तो उसका महत्त्व बढ़ जाता है। कल्पना की रंगीनियों से इतिहास का विरोध है।

प्रस्तुत पुस्तक में हमने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि महान मगध-सम्राट अशोक एक आदर्श शासक था। मंत्रिपरिषद के निर्णयों का आदर करना उसका मुख्य कर्तव्य था। हम पहले इसी प्रश्न पर विचार करें।

हमारे यहां परम्परा ऐसी रही है कि सारी शक्ति जनता में निहित होती थी। युवराज की नियुक्ति तक पौर और जानपद दोनों शक्तिशाली संस्थाओं, राज्य के सर्वमान्य व्यक्तियों तथा जननायकों की सहमति प्राप्त करके की जाती थी। राजा अपने मन से किसी भी राजकुमार को राज्य का अधिकारी नहीं बना सकता था। (रामायण, अयोध्याकाण्ड २।१६–२२)।

राजा का वेतनभोगी होना भी प्रमाणित होता है। अशोक भी वेतन पाता था, जिसकी चर्चा उपन्यास में है। राज्य के खज़ाने का नियन्त्रण मन्त्रिपरिषद करती थी न कि राजा (आपस्तम्बधर्मसूत्र २।६।२५।१०)। राजा को कितना वेतन दिया जाना चाहिए, इसका निर्णय कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र (५।३।६१) में किया है: "समानविद्येभ्यस्त्रिगुणवेतनो राजा।"

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व० डॉ० जायसवाल ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'हिंदू पालिटी' के दूसरे भाग के तीसवें परिच्छेद में लिखा है: "गुरुओं और अमात्यों को ४८००० रोप्य पण[1] वार्षिक मिलता था।" इससे स्पष्ट हुआ कि राजा भी

१. इस सिक्के में ११ माष (१० गुंजा = १ माष) चांदी, ४ माष तांबा, १ माष लोहा, सीसा, रांगा, अंजन अथवा antimoney होता था। मनुस्मृति (८।१३६), अष्टाध्यायी (५।१।३४) में इसका उल्लेख मिलता है।

इतना ही पाता था। शुक्रनीति, कामन्दकीयनीतिसार, महाभारत आदि ग्रंथों
अनुसार राजा जनता का एक नम्र सेवक-मात्र था न कि तानाशाह। राजा के हा
में बहुत ही कम शक्ति होती थी। मन्त्री जननेता होते थे, जनशक्ति उनके सा
होती थी, अतः वे राजा से अधिक शक्तिशाली थे।

स्व० डॉ० जायसवाल ने 'हिंदू पालिटी' में इसपर सप्रमाण विचार किया है

उक्त पुस्तक में ही ऐसा उल्लेख मिलता है कि अशोक का महामंत्री राधागुप्त
या राधगुप्त था जो संभवतः विष्णुगुप्त कौटिल्य का वंशज था।

यह भी जायसवालजी ने लिखा है : "वह एक नम्र तथा दृढ़ व्यक्ति था।"

उपन्यास में राधगुप्त का चरित्र इसी आधार पर विकसित हुआ है। 'मुद्रा-
राक्षस' नाटक के तीसरे अंक का १५वां श्लोक इस प्रकार है :

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां, वटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ॥

यह है महामन्त्री चाणक्य के 'बंगला' का वर्णन। कहा है—एक ओर सूखे
कंडों को तोड़ने के लिए पत्थर का टुकड़ा पड़ा है, दूसरी ओर ब्रह्मचारियों के द्वारा
लाया गया कुशों का अंबार लगा है, चारों ओर छप्पर पर सुखाई जानेवाली समि-
धाओं के भार से घर झुका जा रहा है और दीवारें अब गिरें कि तब गिरें की स्थिति
में खड़ी हैं।

महाकवि विशाखदत्त के इसी श्लोक को सामने रखकर चाणक्य के वंशधर
राधगुप्त की कुटिया का वर्णन किया गया है। चाणक्य के सम्बन्ध में विशाखदत्त
कहता है : "निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः।" (मुद्रा० ३।१६)

चाणक्य एक निरीह, वीतराग, लोकोत्तर-कूटनीतिज्ञ माना गया है और उसके
वंशधर राधगुप्त को भी उपन्यास में उसके पूर्वज के ही जैसा चित्रित करने का
प्रयास किया है।

अब यह स्पष्ट करना बाकी रहा कि अशोक जब बौद्धधर्म की ओर झुका तो
इसका विरोध क्या सचमुच उसकी मन्त्रिपरिषद ने किया था?

हां, किया था। कहा है : "राज्ञो हि दुष्टनिग्रहः शिष्टपरिपालनं च धर्मो न
पुनः शिरोमुण्डनं जटाधारणं वा।" नीतिवाक्यामृत (अ० ५ में से उद्धरण)

फिर भी अशोक ने धर्म का पल्ला नहीं छोड़ा। उसने धर्म को अत्यन्त व्यापक
अर्थ में ग्रहण किया था—साम्प्रदायिक अर्थ में नहीं। अपने द्वितीय स्तंभ-लेख में वह

ता है : "धम्मे साधू कियं चु धम्मे ति अपासिनवे बहुकयाने दया दनि सचे चिये।"

—धर्म अच्छा है, किंतु धर्म है क्या ? पापरहित होना, बहुत कल्याण करना, ा, दान, सचाई और पवित्रता—ये धर्म हैं।

अशोक ने इसी धर्म के मर्म को माना। संसार के सभी जीवित धर्मों का सार ी है। यह वितंडावाद और सम्प्रदायवाद के ऊपर की चीज़ है। इस उपन्यास अशोक को इसी धर्म के उपासक के रूप में दिखलाने का प्रयास किया गया है।

शेष जो कुछ है वह कल्पना है—उपन्यास-लेखक का सपना।

हार राष्ट्रभाषा परिषद्
पटना-४
२६-८-६२

—वियोगी

महामंत्री

शरद् के धुले हुए नीले आकाश में मेघों के खंड इस तरह हवा पर जहां-तहां तैरते दिखलाई पड़ते थे मानो कोई स्वच्छ रूई से किसी दर्पण को हौले-हौले पोंछ रहा हो।

दिशायें स्वच्छ थीं और सर्वत्र शांति की ऐसी विभा फैल रही थी जिसमें आंखों से टकरानेवाली चमक न थी। वृक्षों के धुले हुए पत्ते हवा के हलके स्पर्श से हिल रहे थे।

पाटलिपुत्र महानगर से कुछ हटकर एक गहन अमराई थी। यहीं पर पुण्यतोया गंगा और सोन का संगम हुआ था। सोन का मटमैला जल गंगा के दूध जैसे जल में मिलकर तत्काल अपनी मलिनता से मुक्ति पा जाता था।

यह कोई सवा दो हज़ार साल की पुरानी तस्वीर है, जिसका रंग फीका पड़ गया है किन्तु काल-प्रवाह अपनी रगड़ से उसे साफ नहीं कर सका। यों तो सवा दो हज़ार वर्षों की अवधि में इतिहास की दीवारों पर कितने चित्र अंकित हुए और मिट गए!

हां, गंगा और सोन के संगम पर जो ऊंचा कगार था उसीपर महान अशोक के महामंत्री राधगुप्त की कुटिया थी।

चाणक्य का वह वंशधर अपनी वंश-परंपरा की लकीर को आगे बढ़ाता आ रहा था। एक महान साम्राज्य का शक्तिशाली महामंत्री रहकर भी वह तपस्वी ब्राह्मण की तरह कुटिया में रहता था और यजनादि षट्कर्म करता हुआ राज्य का संचालन करता था—जैसे सब कुछ करता हुआ भी कुछ नहीं करता हो।

महामंत्री की कुटि । खर-पातों से छाई हुई थी तथा मिट्टी की सीधी दीवारों

से उस कुटिया का निर्माण हुआ था। उसमें दो-तीन कोठरियां थीं और एक बड़ा मदा था। फर्श मिट्टी का था जिसे उनके शिष्य पवित्र गोबर से लीप दिया थे। कुटिया के सामने ही एक विशाल वटवृक्ष था जिसके नीचे एक गोल बना हुआ था। यज्ञवेदी भी यहीं पर थी और इसी चौंतरे पर विद्यार्थी अध्ययन करते थे। वटवृक्ष के पत्ते होम-धूप से धूमिल हो गए थे तथा वहां का वातावरण एक ऐसी शांति और निर्जनता थी जो किसी भी अशांत चित्त के व्यक्ति को शांति प्रदान करने की क्षमता रखती थी।

कुटिया के पार्श्व में एक सुन्दर कृष्ण गऊ अपने छोटे-से चंचल बछड़े के साथ बंधी थी जिसका दूध देवार्चन के उपयोग में आता था। कुटिया के बरामदे के एक कोने में हवन के लिए लाए गए उपलों का ढेर था तथा जो छोटा-सा आंगन बरामदे के सामने था उसमें समिधा सूखने के लिए डाल दी गई थी।

कुटिया गंगा और सोन के संगम पर थी तथा घनी अमराई से घिरी हुई ऐसी शांत जान पड़ती थी मानो घोर कर्म-कोलाहल की लहरें टकराने के लिए इस कुटिया तक आती तो हों, किन्तु यहां पहुंचते-पहुंचते उनकी गति क्षीण पड़ जाती हो।

राधगुप्त का जीवन एक तपस्वी का जीवन था और प्रखर तेजस्विता से परिपूर्ण था। बर्फ से ढके हुए हिमालय के भीतर सुप्त ज्वालामुखी की भयानकता की तरह राधगुप्त का शांत और नम्र रूप भी भीतर से अत्यन्त ज्वालामय था। राजनीतिक शक्ति और साधना की शक्ति, इन दोनों शक्तियों का संगम हुआ था उस वृद्ध महामंत्री के अन्तर् में।

एक दिन दोपहर को राधगुप्त अपने शिष्यों को राजनीति-शास्त्र पढ़ा रहे थे कि एक सूत्र उनके सामने आया :

असंशयविनाशात्संशयविनाशश्श्रेयान्।

अचानक आचार्य चुप लगा गए। धीरे-धीरे उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी हो गई और वे पूर्णतः बाह्यज्ञान शून्य-से दीखने लगे। चिंतन की गहराई में आचार्य उतरते जा रहे थे किन्तु अभी तली बहुत दूर थी।

बैठे हुए विद्वान् शिष्य भी सांस रोककर आचार्य की ओर देख रहे थे।

समय बीतता जा रहा था। शरद् ऋतु की कृशांगी गंगा की निर्मल शोभा भी शांत थी, हवा भी मौन थी और उस विशाल बरगद की डालों पर घोंसलों

नेवाले प ी भी चुप थे। बरगद के पत्ते निःशब्द हिल रहे थे और उसकी लट-
हुई जटाएं भी हौले-हौले हिल रही थीं।

ने पत्ते के बीच से छनकर आनेवाली सूर्य की सुनहली किरणें विचारमग्न
ुप्त के ललाट पर पड़ रही थीं मानो प्रज्वलित चिंतन की तीव्र धाराएं हों।

कुछ देर के बाद राधगुप्त की बाह्यचेतना लौटी। उनका ललाट फिर भी चमक
हा था और उसपर गम्भीर चिंतन की रेखाएं उभरी हुई थीं।

राधगुप्त धीमे स्वर में बोले, "आज मुझे रुकना पड़ेगा। इस सूत्र को मैं अच्छी तरह समझना चाहता हूं। महर्षि कौटिल्य ने क्या कहा है—इसपर अच्छी तरह विचार होना चाहिए।"

शिष्य चरण-वंदना करके उठे। आचार्य ने भी आसन का त्याग किया। दिन का अन्त हो रहा था। एक शिष्य ने आसन आदि आवश्यक चीज़ों को समेटा। राधगुप्त खोए-खोए-से सोन-गंगा संगम की ओर चले। वे अत्यन्त गम्भीर और कुछ-कुछ डूबे हुए-से जान पड़ते थे। उनका सदा प्रसन्न मुखमंडल गंभीरता के रंग में रंगा हुआ था, गति भी गंभीर थी और आंखें मानो शून्य में कुछ खोज रही हों इस तरह डूबी-डूबी-सी थीं।

राधगुप्त का वह अत्यंत प्रिय शिष्य शशिमित्र धीरे-धीरे चल रहा था। शशिमित्र एक प्रखर मेधावी विद्वान नवयुवक था जो सदा राधगुप्त की सेवा में तत्पर रहता था। वह अत्यंत तेजस्वी और अर्थशास्त्र का पारंगत विद्वान था, किंतु जिस तरह अपनी अजेय शक्ति को अपने भीतर समेटकर भीष्म परशुराम से शस्त्र-ज्ञान प्राप्त करने गए थे उसी तरह शशिमित्र भी राधगुप्त के चरणों में पड़ा हुआ था। दिन का अस्त हो गया। गंगा की धाराएं जैसे सोने की धाराएं बन गईं। दूर-दूर पर श्वेत पाल ताने हुए और अपने-अपने देश की रंग-बिरंगी ध्वजाएं फहराते हुए अनगिनत बजरे दिखलाई पड़ते थे जिनपर गोधूलि की धूमिल छाया शांति बरसा रही थी। राधगुप्त मुग्ध दृष्टि से यह गौरवपूर्ण दृश्य कुछ क्षण देखते रहे और फिर उल्लसित स्वर में बोले, "मगध साम्राज्य की जय हो!" महान मगध साम्राज्य का समर्थ रक्षक वृद्ध तपस्वी अपने आसन पर बैठ गया और देखते-देखते वह समाधिमग्न हो गया। शशिमित्र कुछ दूर पर, अपने आचार्य की ओर अनिमेष दृष्टि से देखता हुआ बैठा रहा। वह सोच रहा था कि जिस महान साम्राज्य की [illegible] महामंत्री वैभव अनायास ही खिंचा हुआ चला आ रहा है और जिस साम्राज्य

की शक्ति को किसीने भी चुनौती नहीं दी उस साम्राज्य का महामंत्री सर्वस्वत्या तपस्वी ! जनशक्ति, ज्ञानशक्ति और आत्मशक्ति—इन तीनों अजेय शक्तियों धारण करनेवाला इतना वीतरागी हो यह अचरज की बात है।

एक बड़ा-सा तारा पच्छिम क्षितिज पर चमक उठा जिसकी छाया गंगा तरंगों पर नृत्य करने लगी। धीरे-धीरे आकाश में बहुत-से तारे झांकने लगे। शीत हवा के आनंददायक स्पर्श से ऐसा जान पड़ता था कि जीवन में नई स्फूर्ति पै हो रही है।

प्रणव का गंभीर स्वर गूंज उठा और राधगुप्त ने आंखें खोली। शशिभ आगे-आगे चला और महामंत्री पीछे-पीछे धीर-गम्भीर गति से चलने लगे। दो ऊंचे कगार पर चढ़े। सामने ही वह कुटिया थी जिसे मगध साम्राज्य के महामं का महल कहना उस पवित्र कुटिया के महत्त्व को घटाना ही है।

राधगुप्त की प्रतीक्षा में अनेक रथ और दूसरे प्रकार के वाहन अमराई बाहर एकत्रित थे तथा दूर के देशों के बहुत-से कूटनीतिज्ञ और राजदूत कुटिया सामने प्रतीक्षा में खड़े थे। महामंत्री के पधारते ही हलकी-सी हलचल मच गई औ फिर कठोर गम्भीर सन्नाटा छा गया।

कुटिया के बरामदे में महामंत्री कुशासन पर बैठे और जो दर्शनार्थी आए थ वे भी अलग-अलग आसनों पर महामंत्री की वंदना करके बैठ गए।

तत्काल उच्चस्तर की कूटनीतिक वार्ता आरम्भ हो गई। कोने में जो प्रदी झिलमिला रहा था उसका मटमैला प्रकाश उन विलक्षण पुरुषों के गम्भीर चेह पर पड़ रहा था। वातावरण ऐसा था कि वट के एक-एक पत्ते के हिलने की आवा भी साफ सुनाई देती थी। गंगा की शीतल धाराओं को स्पर्श करके आनेवाली हव के मधुर स्पर्श का आनंद अनिर्वचनीय था।

एक घंटे के बाद सभी महामंत्री की वंदना करके विदा हो गए। उनके जा के बाद मंत्रिमंडल के सदस्य आए। महामंत्री के चरण स्पर्श करके सभी सदस्य बैठे और उत्सुक आंखों से महामंत्री के शांत चेहरे को वे देखने लगे। उनमें से प्रत्येक की दृष्टि महामंत्री के होंठों पर थी—वे कब हिलते हैं और उनसे होकर कैसे शब्द बाहर निकलते हैं।

कुछ क्षण के बाद राधगुप्त ने कहा, "मंत्रिपरिषद को एक गम्भीर प्रश्न प विचार करना है। विश्वास है कि परिषद स्वस्थ चित्त से फलाफल को दृष्टि में रख

र निर्णय तक पहुंचेगी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि साम्राज्य की रक्षा का र हमपर है; साथ ही जनता का जो अशेष विश्वास हमें प्राप्त हुआ है उसकी क्षा भी पवित्र बुद्धि से होती रहे।"

राधगुप्त फिर विचारमग्न हो गए। इस बार सभी मंत्री सशंक चित्त से एक-सरे की ओर देखने लगे। वे जानते थे कि उनका महामंत्री अत्यंत दृढ़निश्चयी और शासन के मामले में कठोर है, वे जानते थे कि मगध साम्राज्य का पूरा भार राधगुप्त के कंधों पर है तथा सम्राट अशोक भी अपने महामंत्री का उतना ही सम्मान करते हैं जितना शिष्य के द्वारा गुरु का होना चाहिए। सभी मंत्री यह जानते थे कि जनहित को अपने सामने रखकर ही राधगुप्त साम्राज्य-हित की बात सोचते हैं। वे हजारों साम्राज्यों को जन्म देनेवाली जनता की पूजा करते हैं तथा हजारों साम्राज्यों को चबा जानेवाली जनशक्ति के सामने श्रद्धा से सिर झुकाते हैं।

राधगुप्त ने कहा, "एक ऐसा प्रश्न पैदा हो गया है कि मैं अपने मन से कुछ भी निर्णय नहीं कर सकता। यों तो आपने दया करके मुझे पूरा अधिकार प्रदान कर दिया है; किंतु अधिकार से मिली शक्ति का उपयोग करना साधारण बात नहीं है, ऐसा मैं सोचता हूं। आपका दिया हुआ अधिकार धरोहर के रूप में मेरे पास सुरक्षित है, वह एक पवित्रतम धरोहर है जिसका मैं आदर करता हूं..."

राधगुप्त ने बड़े स्पष्ट शब्दों में समस्या सामने रख दी, जो एक विकट प्रश्न बनकर मुंह बाए खड़ी थी और जिसके लिए मंत्रिपरिषद् का आह्वान किया गया था।

सभी मंत्री बारी-बारी से अपने विचार महामंत्री के सम्मुख उपस्थित करते रहे और फिर वाद-विवाद का सूत्रपात हुआ। सभी अपना-अपना तर्क दे रहे थे, किन्तु अन्तिम निर्णय तो महामंत्री को ही करना था।

उस शांत वातावरण में अत्यंत गंभीरतापूर्वक महान मगध साम्राज्य की मंत्रि-परिषद की आवश्यक बैठक सोन और गंगा के संगम पर स्थित तपस्वी महामंत्री राधगुप्त की कुटिया के बरामदे में आधी रात तक होती रही। नीतिकुशलता और उच्चस्तर की विवेचना का वहां जैसे जाल-सा बुना हुआ था। अपने-अपने विषय के अजेय मंत्री एक-दूसरे से श्रेष्ठ थे। जिनके चरित्र, ज्ञान और त्याग का आदर सारा मगध साम्राज्य करता था।

धीरे-धीरे निःशब्द रात खिसकने लगी। शशिमित्र चुपचाप प्रदीप में तेल

डालता जाता था और बत्ती ऊपर खिसकाकर फिर कोने में धरती पर ही बैठ जाता था। वह कभी विचारों के आकाश में आंधी से घिरे बलवान गरुड़ की तरह उड़ता था तो कभी उल्का की तरह धरती से टकरा जाता था। उसके चारों ओर गंभीर विचारों की आंधी उठ रही थी, वह उसकी चेतना को झकझोरकर थका चुकी थी। शशिमित्र को ऐसा जान पड़ता था कि वह मूर्छित हो जाएगा।

परिषद उठ गई और चलते समय उपमहामंत्री अग्निसेन ने महामंत्री के चरण स्पर्श करके कहा, "भगवन, आप इस साम्राज्य के भौतिक शरीर भी हैं और शाश्वत आत्मा भी ! हम तो आपके आज्ञाकारी सेवक हैं। जो आदेश होगा उसका श्रद्धा पूर्वक पालन करना हमारा परम धर्म है, इसीमें साम्राज्य का हित भी है। हमारी वंदना स्वीकार कीजिए !"

महामंत्री ने स्नेहपूर्वक मंत्रिपरिषद को विदा देकर श्रद्धासिक्त स्वर में हरि स्मरण किया और कहा :

अचिन्त्यं ब्रह्म निर्द्वंद्वमैश्वरं हि बलं मम।

शीतल पवन के झोंकों ने सूचना दी कि उषादेवी की सवारी चल चुकी है। प्राची की खिड़की खुलने ही वाली है। राधगुप्त कुशासन पर हरिस्मरण करते-करते सो गए और शशिमित्र उनकी चरणसेवा में लग गया। सेवा करते हुए उसे ऐसे आनंद की अनुभूति होती थी जिसे न तो मन से पकड़ा जा सकता है और न वाणी से व्यक्त ही किया जा सकता है।

धीरे-धीरे रात अपने आंचल में तारों को समेटती हुई चली गई और गंगा की शांत गोद उषा के हल्के प्रकाश से भर गई। इस तरह इस कथा का प्रथम परिच्छेद समाप्त हो गया।

२

जिस तरह सागर की लहरें एक-दूसरी पर सवार हुई आती हैं, आती ही रहती हैं, उसी तरह चिंता की लहरें भी आ-आकर राधगुप्त के मानस-तट से टकराती रहीं।

सम्राट अशोक कलिंग-विजय करने गए थे जहां उन्हें किसी राजा से नहीं, जनता से लोहा लेना पड़ रहा था। करोड़ मन भारी पत्थर को तोड़ डालना आसान

किंतु रेत के एक-एक कण को चूर करना महा कठिन प्रयास माना जाएगा। यही हाल कलिंग में था। वहां की स्वतंत्र जनता अपनी आज़ादी के लिए बलिदान कर रही थी। संहार करते-करते मगध के सिपाही ऊब उठे थे, रक्तपात से उन्हें घृणा हो गई थी। कलिंग के स्त्री और वृद्ध तक मैदान में उतर पड़ते थे—उन्हें भी निर्मनता से तलवार के घाट उतारना पड़ता था, बाणों से छेदना पड़ता था—जो बड़ा कठिन और हृदय-विदारक था।

प्रत्येक सप्ताह एक न एक दूत समर-भूमि से आकर संवाद ले जाता था और वृद्ध महामंत्री सुन-सुनकर विकल होते जाते थे। वे अपने अंतर्यामी से बार-बार प्रश्न करते थे, 'क्या होगा प्रभो, जनशक्ति को कुचलना आसान नहीं है। कलिंग के प्रत्येक निवासी को मारकर यदि सूनी धरती हाथ लगी तो यह तो श्मशान पर शासन करने जैसा हुआ !'

जब उन्हें कोई समुचित उत्तर नहीं मिलता तो वे और भी व्यग्र हो जाते। एक संवादवाहक ने आकर कहा, "अब तो युवतियां पुरुषवेश धारण करके हमारी सेना की गति रोक रही हैं। उनका आक्रमण इतना भयानक होता है कि हमारे सधे हुए अनुशासनबद्ध सैनिकों को भी टिकना कठिन हो रहा है। तूफान की तरह कलिंग-वालों की यह सेना आती है और भयानक संहार करके स्वयं समाप्त हो जाती है। पता नहीं यह क्रम कब तक चलता रहेगा ! सम्राट स्वयं चिंतित रहते हैं। वे नहीं चाहते कि यह नरमेध अब और चले, किन्तु अन्य उपाय नहीं है। वे जैसे युद्ध के मकड़जाल में फंस गए हैं—अब न तो हटते बनता है और न नरहत्या करने की ही अभिरुचि किसीमें रही है।"

महामंत्री के उन्नत ललाट पर पसीना आ गया। वे यों तो धीर-गंभीर बने रहे किंतु कलिंग-युद्ध से कुछ कम हलचल उनके भीतर नहीं मच रही थी।

स्थिति ऐसी थी कि न तो वे सम्राट को लौट आने की सलाह दे सकते थे और न यही कह सकते थे कि कलिंग के प्रत्येक मानव शरीरधारी को मार डाला जाए—चाहे वह स्त्री हो या बालक, रोगी हो या वृद्ध। दूत को विदा करके महामंत्री चिंता के शीतल तथा गहन जल में डूब गए।

दिन का अंत हुआ और रात का भी अंत हो गया, किंतु चिंता का अंत नहीं हो सका। चिंता करोड़ों दिनों और करोड़ों रातों से भी अधिक लंबी होती है।

महामंत्री किसी यंत्रचालित पुतले की तरह संध्या, अग्निहोत्र आदि दैनिक कर्म

करते जाते थे किंतु उनका मन कलिंग की युद्धभूमि में रोता फिरता था। अत्यंत कोमलहृदय राधगुप्त एकांत में बैठकर यही सोचा करते थे कि इस नाश को कैसे रोका जाए। जब वे किसी दूत को आते देखते तो उनका हृदय धड़क उठता और वे विकल हो उठते। नरसंहार का संवाद सुनते-सुनते वे कुछ इतने कातर हो गए थे कि उनके भीतर ज़रा-सी भी धीरता नहीं रह गई थी।

राधगुप्त ने अनुभव किया कि उनके हृदय के किसी कोने से एक आनंददायिनी शीतल धारा निकली जो देखते-देखते उनके चिंतन के पूरे विस्तार तक फैल गई। वह धारा थी स्नेह की। एक गृहत्यागी किंतु सधे हुए कूटनीतिज्ञ और लोहे जैसे कठोर शासक से स्नेह और दया की कामना करना मगरमच्छ की पूंछ पकड़कर नदी पार करने की उम्मीद रखने जैसी खतरनाक भूल है। रूक्ष चिंतन और शासन के कार्यों में लगे रहने के कारण राधगुप्त का अंतर् पथरा गया था, किंतु कलिंगवालों के थहरा देनेवाले बलिदान के संवाद ने ही जैसे उनको निचोड़ डाला।

उनका शिष्य शशिमित्र अपने आचार्य की गतिविधि का अध्ययन किसी जटिल ग्रंथ की अपेक्षा अधिक सावधान होकर करता था। वह एक प्रकार से राधगुप्त को पारदर्शी बनाकर देखता था।

एक दिन जब राधगुप्त गंगातट पर जा रहे थे तो सहमते हुए शशिमित्र ने उनकी मानसिक अस्तव्यस्तता का कारण पूछा।

प्रश्न सुनते ही तेज़ी से लौटकर वे खड़े हो गए। भय से शशिमित्र दो पग पीछे हट गया। कुछ क्षण अपनी तेज़ नज़रों से एकटक शशिमित्र के भयकातर चेहरे को देखकर महामंत्री फिर मुड़े और स्वाभाविक गति से चलते हुए गंगातट पर पहुंच गए। भयविह्वल शशिमित्र की दशा खराब हो रही थी। वह बेंत की तरह कांप रहा था, उसके होंठ सूख रहे थे और सिर चकरा रहा था। उसे ऐसा लगा कि अनजाने में उसने एक अक्षम्य अपराध कर दिया। उसे क्या अधिकार था महान मगध साम्राज्य के महामंत्री के मन की बातों को जानने की उत्सुकता प्रकट करने का!

राज्य के गुप्त रहस्यों के प्रति उत्सुक रहनेवाला अनधिकारी व्यक्ति राज्य के लिए खतरनाक माना जा सकता है—यह बात शशिमित्र जानता था। उसे विश्वास हो गया कि अब गुरुसेवा के पुण्य से उसे वंचित होना पड़ेगा, जो सिर काटे जाने से भी अधिक कष्टदायक दण्ड उसके लिए था।

संध्या-वंदन करके राधगुप्त जब स्वस्थ हुए तो उन्होंने कहा, "वत्स, यदि ऐसा न दूसरा कोई मेरे सामने रखता तो उसे उत्तर के बदले में प्राणों से हाथ धोने ते, किंतु तू मेरा पुत्रवत् प्रिय और ज्ञान जैसा विश्वासी है। सुन, कलिंग में जो छ हो रहा है वह तू नहीं जानता ? हमारे सम्राट ने वहां नरमेध-यज्ञ आरंभ कर या है। गए थे कलिंग विजय करने और आरंभ कर दिया वहां यज्ञ ? यही चिंता ी बात है। मैं नहीं चाहता कि प्रसिद्ध मगध साम्राज्य का गरुड़ध्वज नर-कंकालों के बीच में फहराए। यह ध्वज शांति और समृद्धि का संदेशवाहक हो, न कि विनाश का, संहार का, सत्यानाश का ! यदि ऐसा हुआ तो इस ध्वज को संसार घृणा की दृष्टि से देखेगा और अपनी जलती दृष्टि से इसे दग्ध करने की चेष्टा करेगा। अवसर मिलते ही हमारे इस गौरवपूर्ण ध्वज को वह फाड़-चीरकर फेंक देगा। यही मेरी चिंता का कारण है।"

शशिमित्र का भय मिट गया। उसने हाथ जोड़कर विनय की, "राज्य-विस्तार या प्राप्त किए हुए राज्य की रक्षा फिर कैसे होगी देव ? मगध-साम्राज्य तलवार का आश्रय ग्रहण करके ही तो फैला है !"

राधगुप्त मुस्कराए और कहने लगे, "तूने ठीक ही प्रश्न किया। यह तो अत्यंत पुरानी पद्धति है। क्या हम कोई ऐसी पद्धति नहीं अपना सकते जिससे कोई खतरा न हो, किसीके प्राण या धन की तनिक भी हानि न हो ? सभी परंपराएं और नियम मानव-निर्मित हैं, सभी तरह के विचार-आचार मानव से पैदा हुए; ज्ञान-विज्ञान का पिता मानव है, राज्य-साम्राज्य मानव के बनाए हुए हैं, जो एक विचार-मात्र हैं।"

राधगुप्त और भी बहुत कुछ बोलते गए। उनकी वाणी का प्रवाह गंगा के पवित्र प्रवाह की तरह प्रवाहित हो रहा था। गंगा की नरम रेत पर बैठे मगध साम्राज्य के प्राण राधगुप्त अपने शिष्य को उन सारी बातों से अवगत करा रहे थे जो कई सप्ताह से उन्हें बेचैन कर रही थीं। रात बीतने लगी और शीतल हवा के झोंके आने लगे, किंतु राधगुप्त विचारों के ऊंचे से ऊंचे स्तर पर पहुंचकर बोल रहे थे तथा शशिमित्र उस सुधावर्षा का एक-एक कण प्राणों में संजोकर रखने का प्रयास कर रहा था।

देखते-देखते द्वितीय प्रहर का मंगल-वाद्य सुनाई पड़ा तो महामंत्री चौंक उठे और बोले, "वत्स, तूने ज़रा भी स्मरण नहीं दिलाया कि अधिक रात हो गई है !"

शशिमित्र ने कहा, "भगवन्, मैं यहां था ही कहां जो आपको स्म
कराता !"

राधगुप्त ने शशिमित्र के सिर पर हाथ रखकर कहा, "पुत्र, जब गुरु और शि
में एकत्व की स्थापना हो जाती है तब ज्ञान का शाश्वत स्वरूप प्रकट होता है
भी भूल गया था कि कोई मेरे सामने बैठा है।"

शशिमित्र बोला, "प्रभो, मैं अपने-आपको ही बिसार बैठा था और मुझे
लगता था कि केवल मेरा अहम् ज्ञान के आकाश में स्थिर टिका हुआ है—न श
है और न यह धरती या आकाश है।"

राधगुप्त मन ही मन जैसे हलके हो गए। भीतर जो कुछ था उसे गंगा
साक्षी रखकर उन्होंने बाहर उलीच दिया था। शशिमित्र एक पात्र था जि
सारा अमृत संचित हो रहा था।

राधगुप्त अपनी कुटिया में जैसे ही लौटे कि कलिंग से आए हुए एक विशेष
ने उनके चरण स्पर्श किए। क्षण-भर के लिए महामंत्री का हृदय कांप उठा, 'फि
नरहत्या का वही हृदय-विदारक संवाद सुनना पड़ेगा ?'

दूत ने कहा, "हमारे चिरविजयी सम्राट कलिंग-विजय करके अब राजधा
की ओर प्रस्थान करनेवाले हैं। कलिंग के बन्दियों का एक दल भी साथ आ र
है। वे सभी दास बना लिए गए हैं। सम्राट ने उदारतापूर्वक उन्हें क्षमादान दे
दास बन जाने का जो गौरव प्रदान किया है उसकी प्रशंसा सर्वत्र हो रही है।"

राधगुप्त एकाएक उत्तेजित हो उठे और बोले, "यह उदारता है, यह प्रशं
नीयता है, यह महानता है ? तुम जा सकते हो।"

भयभीत दूत हांफता हुआ भाग खड़ा हुआ। वह अपने बोले हुए शब्दों अ
बनाए हुए वाक्यों को मन ही मन दुहरा रहा था कि ऐसा कौन सा शब्द मुंह
निकल गया जिससे वह काल के जबड़े में फंसता-फंसता बचा। महामन्त्री का रो
इतना भयानक था कि राज्य के बड़े से बड़े शक्तिशाली पुरुष भी व्यग्र हो उठते थे
जिसपर राधगुप्त की भौंहें तन गईं वह बिना किसी प्रयास के महाकाल का आह
बन गया, यह हाल था। जब दूत चला गया तो महामंत्री बोले, "किसीकी स्वतंत्र
का अपहरण करके, उसीकी आंखों के सामने उसके सारे कुटुंब का वध कर
उसके देश को अच्छी तरह रौंदकर उसे दास बना लेना बहुत बड़ी उदारता औ

हानता है। यह विजेता की चिरस्मरणीय उदारता है, जो वह अपने देश में ले जाकर पराजितों के बच्चों को, उनकी स्त्रियों को कुत्तों और गधों की तरह बाज़ार में बेचवा डाले। इस दूत की जीभ तराश लेनी चाहिए। ऐसा जघन्य संवाद मेरे निकट तक पहुंचाने का साहस इस अभागे को कैसे हुआ !"

अपने बरामदे में रोष से तलमलाते हुए राधगुप्त टहलने लगे और जब मन शांत हो गया तो आसन पर जा बैठे।

महामन्त्री ने अपने-आपको कहा, 'ऐसे अमानुषिक कृत्यों का भी मुझे समर्थन करना पड़ता है ! जनकल्याण के पवित्र नाम पर जनता को कितना तबाह किया गया, यह सोचकर मन खिन्न हो जाता है। जिसे देखो वही जनहित का ठेका लिए बैठा है और एक से बढ़कर एक घृणित कार्य जनहित के पर्दे के पीछे बैठकर हम करते रहते हैं। जिसमें पशुबल का अभाव होता है वह युद्ध में हार जाता है। हार जाना ही कुछ कम दण्ड नहीं है। पराजित का जीवन अपमान का जीवन होता है, उसपर यह अत्याचार ! कलिंगवालों के सभी अधिकार छीन लिए गए जो उन्हें मानव होने के कारण मिले थे। अब वे गुलाम बनकर पाटलिपुत्र के बाज़ारों में बिकेंगे—मैं इस कलंक का अन्त करूंगा।'

रात को महामन्त्री सो नहीं सके। करवटें बदल-बदलकर उन्होंने रात काटी और भोर को ही मन्त्रिपरिषद को सध्या समय आने का आदेश दिया।

सूर्यास्त होते ही ग्यारहों मन्त्री उपस्थित हुए। गम्भीर विचार-विमर्श के बाद यह निश्चित हो गया कि दास-प्रथा का अंत होना ही चाहिए। यह प्रथा मगध साम्राज्य के लिए कलंक-कालिमा है।

दूसरे ही दिन मन्त्रिपरिषद का यह आदेश राज्य-भर में भेज दिया गया। पाटलिपुत्र में यह सब हो रहा था और विजयी अशोक आपकी विजयोन्मत्त सेना के साथ बुद्धगया पहुंच रहे थे। वहीं उन्हें यह संवाद मिला तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा, "निश्चय ही हमारी मन्त्रिपरिषद देवपरिषद की तरह पवित्र है। मैं मन्त्रिपरिषद के निर्णय के सामने नतमस्तक हूं, क्योंकि वह जनता का प्रतिनिधित्व करती है और मैं साम्राज्य का प्रधान हूं। साम्राज्य से बड़ी और श्रेष्ठ जनशक्ति है, जिसके प्रधान महर्षि राधगुप्त हैं।"

इस प्रकार मगध साम्राज्य का एक कलंकमोचन करके महामन्त्री ने तृप्ति का अनुभव किया।

शशिमित्र ने जब अपने आचार्य से प्रश्न किया तो वे बोले, "वत्स, मानवत
का आदर होना चाहिए। जिस राज्य में मानवता पीड़ित होगी वह राज्य प्रेतों क
राज्य होगा और उसके प्रधान पद पर कोई पुराना पापी ही होगा।"

उस दिन महामन्त्री का मुखमण्डल भीतर की तृप्ति से प्रफुल्लित दिखलाई प
रहा था। जब संध्या समय दूत ने आकर यह संवाद दिया कि सम्राट बुद्धगया पहुं
गए हैं और वे वहां विश्राम कर रहे हैं, तो महामन्त्री का चेहरा फिर गम्भीर ह
गया।

वे चिंता में फिर डूबने-उतराने लगे। शशिमित्र ने मन ही मन कहा, 'राज
का भार उठाना भी पूर्वजन्म के पापों का ही फल है। यह त्यागी, तपस्वी और महा
विद्वान ब्राह्मण भी राजनीति की रंगीनियों में फंस गया है—और दिन में दस बा
मुस्कराता है तो पचास बार रोष से दांत पीसता है। न तो इसे धन चाहिए औ
न सुन्दरी, फिर यह क्यों जान-बूझकर अपने को पेर रहा है! यह भी तो विधि क
विडंबना ही है।'

३

बुद्धगया के उदास और खंडहरों से भरे आंगन में शरद् की शांत संध्या चुप
चाप उतरी। बौद्ध विहारों की ढही, टूटी, नंगी दीवारों पर जो बरसाती झाड़
झंखाड़ उग आए थे उनपर सोने की धूल बरसाकर संध्या ने वातावरण की उदास
को और भी चमका दिया। बुद्धदेव का ढहा मंदिर भी मानव के भीतर जो छिपा हुअ
पशुत्व है उसकी घोषणा कर रहा था, क्योंकि कलिंग-विजय के निमित्त जाते समय
चंड अशोक ने ही अपना रोष इस विध्वंस के द्वारा प्रकट किया था। शक्ति दूस
पर चोट करके ही अपनी क्षमता का बोध करती है। मगध सम्राट अशोक ने उ
मार्ग से जाते समय बौद्ध विहारों को नष्ट करा दिया था, बुद्धदेव के विशाल मंदि
को गिरवाकर उस पवित्र महाबोधि वृक्ष को भी कटवा डाला था, जिसके नीचे
बैठकर राजकुमार सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त किया था।

शक्ति तर्क का उत्तर देने के लिए नहीं रुकती, वह अपना काम बिना रुके क
डालती है।

अशोक ने भी यही किया। बौद्ध विहारों को भूमिसात करवा डालना औ

साथ ही बुद्ध मन्दिर पर भी फावड़े चलवाना उचित है या नहीं, यह जानने के लिए अशोक क्षण-भर भी नहीं रुके। शासक आदेश देना जानता है और चाहता है कि तब तक संसार-चक्र भी रुका रहे जब तक उसके आदेश का पालन न कर लिया जाए।

उस दिन कलिंग-विजय करके विजय के सुख के साथ अशोक बुद्धगया के मार्ग से ही लौटे और वहीं ठहर जाने का निश्चय किया। उस मार्ग से जाते समय अशोक चंड अशोक के नाम से कुख्यात थे, किन्तु वे लौटे थे प्रियदर्शी अशोक बनकर, क्योंकि उन्होंने हिंसा और अहिंसा के भेद को जान लिया था।

प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान मोग्गलिपुत्त तिस्स भी उनके साथ ही आ रहे थे। आचार्य तिस्स एक सर्वमान्य बौद्ध विद्वान थे जिनकी तपस्या और श्रेष्ठता का सर्वत्र आदर था।

संध्या समय अशोक आचार्य तिस्स के साथ अपने आवास से निकले। वे अत्यन्त गम्भीर और उदास थे। मीलों तक फैला हुआ मगध सेना का पड़ाव मगध की शक्ति का साकार प्रमाण था। हज़ारों हाथी, घोड़े, ऊंट, रथ आदि थे तथा सम्राट के आवास के सामने मगध का गरुड़ध्वज लहरा रहा था।

अशोक ने उड़ती नज़रों से अपनी सेना के विस्तार को देखा और फिर गरुड़-ध्वज को देखकर मन ही मन तृप्त होकर आगे बढ़ गए। उन्हें इस बात का सन्तोष हुआ कि इस संसार में ऐसा एक भी राष्ट्र नहीं है जो बुरी नज़रों से मगध सामाज्य के इस गौरव-प्रतीक की ओर देखने का भी साहस करे—इसे अपवित्र विचारों की प्रेरणा से स्पर्श करने की कल्पना करना तो असंभव ही है।

एक शासक के लिए इससे बढ़कर संतोष की बात और कुछ हो ही नहीं सकती कि उसका ध्वज पूर्णतः सुरक्षित है, उसके सम्मान पर धूल उड़ाने का साहस आंधी और बवंडर को भी नहीं है, मानव की बिसात ही क्या है।

अशोक उसी तरह आगे बढ़े जैसे भूखा शेर दायें और बायें छिपी हुई दृष्टि से देखता हुआ एक झाड़ी से निकलकर दूसरी झाड़ी की ओर जाता है।

सम्राट के पीछे-पीछे स्थविर आचार्य तिस्स धीर-गम्भीर गति से चल रहे थे। भिक्षुओं के लिए झपटकर चलना वर्जित भी है।

अशोक छिन्न महाबोधि वृक्ष के निकट पहुंचे। वृक्ष जड़ से काट डाला गया था, पत्ते झड़ गए थे, किन्तु डालियों में जीवन शेष था। अपने को कायम रखने के

लिए प्रकृति से केवल जीवधारी ही नहीं संघर्ष करते, अचल वृक्ष तक प्रयत्न क
हैं कि वे बने रहें और काल के प्रहार को सहकर भी वे अपना अन्त करना न
चाहते।

महाबोधि वृक्ष के नीचे वह वेदिका भी टूटी अवस्था में मौजूद थी जिसपर बै
कर तथागत ने सिद्धि पाई थी।

इस कारुणिक दृश्य को अशोक देखकर मन ही मन दुःखी हो गए और बो
"आचार्य, क्या मानव अपने दुर्गुणों का दास होता है ? मेरे मन में जब ऐसा अमा
षिक रोष जाग उठा था तो मैंने उसे दबाया क्यों नहीं ? जैसा उसने चाहा मैंने क
डाला। यह तो मेरी पराजय है—सदाविजयी अशोक अपने दुर्गुणों से हार गया

आचार्य तिस्स की आंखों में आंसू भरे हुए थे। उनका कोमल हृदय, जो मै
भावना से ओत-प्रोत था, कराह रहा था। यदि वे जानते कि उन्हें अपनी असह
आंखों से ऐसा दहलानेवाला दृश्य देखना पड़ेगा तो वे अशोक का निमन्त्रण अस्व
कार कर देते और उनके साथ अपने शांत आश्रम को छोड़कर रोने के लिए बु
गया नहीं आते।

लौटकर अशोक ने देखा कि वृद्ध आचार्य तिस्स आंखें बन्द किए और हाथ जो
कर खड़े-खड़े कांप रहे हैं। उनकी बन्द आंखों से आंसुओं की बूंदें टपक रही है
उनके प्रकाशमान चीवर को भिगो रही हैं।

अशोक को पीछे लौटकर देखने की आदत न थी। इस बार लौटकर देखने
बाद जैसा हृदयद्रावक दृश्य उन्होंने देखा उसकी कल्पना भी उन्होंने नहीं की थी

अशोक को नई दृष्टि मिली और उन्होंने उसी क्षण, उस कटकर गिरे हु
साधारण-से दीखनेवाले पीपल के वृक्ष को पहचाना। उनके हृदय के भीतर से प
तावे और लज्जा की लहरियां उठीं जो उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गईं।

अशोक ने विनय-भरे स्वर में कहा, "आचार्य, यह भयानक कर्म मेरे द्वा
हुआ है।"

क्षमा-याचना करने का अवसर तो सम्राट के सामने आता ही नहीं, अतः अशो
भी इतना ही बोलकर रुक गए। वे सोचने लगे कि अब मैं क्या कहूं जिससे मे
क्रूरता की गुरुता कुछ हल्की पड़े और इस महास्थविर के कातर हृदय को
सांत्वना प्राप्त हो।

किसीको तोष देने की आदत अशोक की न थी। एक प्रबल, प्रतापी सम्रा

रूप में जो जी में आता था वे कर डालते थे—उन्होंने यह सोचकर कभी कदम नहीं बढ़ाया कि उनके पैरों के नीचे चींटी पड़ जाएगी या हाथी दब जाएगा।

अशोक ने पहली बार यह अनुभव किया कि सम्राट भी मनुष्य होता है और साधारण मनुष्य की तरह वह भी भूल कर सकता है और अपनी भूलों के लिए उसे भी पछताना पड़ता है।

आचार्य तिस्स ने जब यह अनुभव किया कि अशोक मन ही मन कातर हो रहा है तो उनका स्नेहशील हृदय और भी बिलख उठा, 'अरे, उनके दुःख से किसीका भी जी दुख जाए यह भी तो पीड़ा देना ही है!' आचार्य अपने किसी भी व्यवहार से किसीको दुःखी होते देखना नहीं चाहते थे।

मन पर पूरा दबाव डालकर आचार्य मुस्कराए और कहने लगे, "प्रिय-दर्शी!..."

इतना ही बोल पाए कि फिर गला भर आया। उन्होंने जिस धीरज के पत्थर से उमड़ते हुए दर्द को दबाना चाहा था, वह पत्थर दर्द के वेग से हलका पड़ा और एक ओर लुढ़क गया।

फिर अपने को संभालकर आचार्य ने इस तरह अपना वाक्य पूरा किया, "आप दुःख न मानें!..."

मंदिर के गर्भगृह की ओर डरी हुई आंखों से देखते हुए अशोक आगे बढ़ गए। उन्हें भय था कि कहीं बुद्धदेव की पवित्र प्रतिमा को वह खंडित रूप में न देख लें।

कभी-कभी मानव अपने कर्म के परिणाम से इतना डर जाता है कि वह उसका स्मरण भी करना नहीं चाहता। भावनाओं के ज़ोरदार आघात के कारण जो कर्म हम एक झटके में कर गुज़रते हैं उसके संबंध में यह दावा नहीं किया जा सकता कि जो कुछ हमने अभी किया है, वह उचित ही है।

अशोक विचारों के भंवर में पड़कर इस तरह चक्कर काटने लगे कि वे मन ही मन थक गए, किंतु उन ज़ोरदार भंवरों को तोड़कर सीधी बहनेवाली धाराओं में पहुंचना उनके लिए असंभव हो रहा था।

एक-एक करके वे सारी तस्वीरें अशोक की आंखों के सामने उभरने लगीं जिन्हें वे युद्ध के दौरान में भूल गए थे।

पहले उन्होंने देखा कि वे कलिंग की ओर कूच करने के सिलसिले में अपनी विजयिनी सेना के साथ बुद्धगया पहुंचे। वहां डेरा डाला। उन्होंने देखा, सुंदर

बौद्ध विहारों में हज़ारों भिक्खु शांतिपूर्वक स्वाध्याय और मनन कर रहे हैं। वातावरण में अशेष शांति और संतोष है। अशोक, जो युद्ध के पथ पर थे, शांति और संतोष से दूर चले गए थे। वे सम्राट थे। उन्हें खून से सींची हुई धरती देखने में सुंदर लगती थी, उजड़े हुए नगर और जले हुए गांव लुभावने लगते थे। वे अपनी शक्ति का परिचय विनाश के रूप में प्राप्त करने को इच्छुक थे। उनके द्वारा कितना लोम-हर्षक संहार हुआ यही उनकी शक्ति का मापदंड था, न कि शांति, संतोष और स्नेह।

सम्राट चाहते थे कि तलवार की नोक से उनका विजय-इतिहास लिपिबद्ध हो और लिखनेवाला हो 'महाकाल'।···

अशोक की आंखों के सामने उस दिन का वह क्रूर चित्र झलमला उठा जिस दिन उन्होंने बुद्धगया के निकट डेरा डाला था और वहां के वृद्ध और तपस्वी महास्थविर को बुलाकर आदेश दिया था, "तुम संघ की बैठक बुलाकर उससे कहो कि वह युद्ध के लिए कलिंग पर मेरे आक्रमण का समर्थन करे।"

महास्थविर चंड अशोक को जानता था। उसने कहा, "महाराज, संघ नर-हत्या का समर्थन कैसे करेगा। यह हमारी नीति नहीं है।"

अशोक के रोष के लिए स्थविर की यह सत्योक्ति चुनौती थी। सम्राट हुंकार कर उठे। उन्हें आदेश देने और उसे पालन होते देखने की आदत थी। वे तर्क सुनने के अभ्यासी नहीं थे। जीवन में पहली बार उन्हें इतना तीखा अनुभव हुआ। एक दुर्बल, साधनहीन, भिक्षाश्रित व्यक्ति उनकी महत्ता को चुनौती दे रहा है, इसके पास अपनी रक्षा करने का कौन सा बल है?

अशोक ने गरजकर पूछा, "तुम्हें मेरी आज्ञा की उपेक्षा करने का साहस कैसे हुआ?"

भिक्खु मुस्कराकर बोला, "सम्राट, सत्य ही हमारा बल है और भगवान् तथागत हमारे रक्षक हैं।"

उसने अपनी कांपती हुई तर्जनी उठाकर बुद्धदेव के मंदिर की ओर इशारा किया।

अशोक फिर गरजे, "मैं क्षण मात्र में सारा नाटक समाप्त कर देता हूं। मेरी शक्ति से टकराएगा उसे नष्ट होना ही होगा।"

उस महास्थविर ने फिर शांत स्वर में जवाब दिया, "कोई भी सम्राट सत्य को मिटा नहीं सकता। वह शाश्वत है। हां, आप इस मंदिर या विहार को मिटा सकते

किन्तु इन पवित्र तीर्थों के सत्यस्वरूप को आप स्पर्श नहीं कर सकते।"

यह दूसरा प्रहार था।

सम्राट ने आदेश दिया और विहारों को खंडहर बनते अधिक विलंब नहीं लगा। मंदिर की उच्च चूड़ा भी टूटकर नीचे गिरी तथा पवित्र महाबोधि वृक्ष भी धराशायी हो गया। भिक्खुओं के कटे हुए सिर भी जहां-तहां नजर आने लगे और उन सिरों में उस महास्थविर का सिर भी था जिसके होंठों पर मुस्कान की विभा खेल रही थी।...

अशोक के सामने जब बुद्धगया के विनाश की सारी तस्वीरें एक-एक करके उभरने लगीं तो वे व्यग्र हो उठे। उन्होंने प्रयत्न किया कि वे उन चित्रों को न देखें, किन्तु चित्रों का उभरना नहीं रुका। कोई अज्ञात शक्ति अशोक को यह मानसिक दंड दे रही थी। अशोक आचार्य तिस्स के साथ निरंजना नदी के तट पर पहुंच गए। सूर्यास्त हो चुका था। निर्जन तट की रेत पर हवा खेल रही थी। नदी के उस पार सुंदर नीली पहाड़ियों की शोभा थी जो शांति में डूबी हुई थी। सम्राट की सेना के आने का समाचार मिलते ही उस आंचल में आतंक फैल गया था और लोग घर छोड़कर चले गए थे। वह इलाका जनहीन हो गया था। इस मार्ग से जाते हुए सम्राट ने अपने स्वरूप का जैसा दुर्दांत परिचय दिया था उसे वहां के निवासी भूले न थे; उनके भाग जाने से यह प्रमाणित हो जाता था। जनता का यह मूक तिरस्कार अशोक के हृदय को व्यथित करने के लिए काफी था। इस तिरस्कार के पर्दे पर उन्होंने अपने स्वरूप को देखा और उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनके अमानुषिक कर्मों को उनकी ही प्रजा, जिसके समर्थन से वे मगध के शासक बने बैठे हैं, किस दृष्टि से देखती है। अशोक मन ही मन कराह उठे।

आचार्य तिस्स ने उस निग्रोध वृक्ष को पहचानकर प्रणाम किया, जिसके नीचे तथागत ने सुजाता का उपहार स्वीकार किया था। अशोक ने प्रश्न किया, "क्या यह वही निग्रोध वृक्ष है आचार्य ?" आचार्य ने धीरे से उत्तर दिया, "सम्राट इसे शायद नहीं पहचानते थे !"

उत्तर बहुत ही तीखा था। लज्जा और परिताप से अशोक व्यग्र हो उठे। वे इतने अधिक व्यग्र हो गए कि उनकी वाणी ने भी उनका साथ छोड़ दिया। व्यग्र व्यक्ति का साथ केवल उसका दुर्भाग्य देता है—और कौन उसके साथ रहना चाहेगा !

अशोक ने देखा कि वह विशाल निग्रोध वृक्ष निरंजना के तट पर अपनी शत-शत बांहें फैलाकर मानो सबको आश्रय देने के लिए पुकार रहा है, 'लकड़हारे, बनजारे ! सभी आओ, और मेरी छाया की सेवा स्वीकार करो।'

अशोक अत्यन्त उदास चित्त से लौट पड़े और धीरे-धीरे सारा बुद्धगया गोधूलि के आवरण के पीछे चला गया।

आकाश से शांति बरस पड़ी। पूरब क्षितिज पर चांद प्रकट हुआ।

४

इस संसार में ऐसी कोई जगह है जहां संत और महामानी सम्राट एक ही केंद्रबिंदु में मिलते हों ?

संत स्वभाव से त्यागी होता है और शासक की ग्रहण-वृत्ति इतनी भूखी होती है कि वह दूसरे के पाप तक को हथिया लेना चाहता है, पुण्य की तो बात ही अलग रही। दोनों दो परस्पर-विरोधी दिशाओं के आग्रही यात्री हैं, फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि सर्वस्वत्यागी संत और सर्वग्रासी शासक कहीं एक-दूसरे के निकट आते हों।

बुद्धगया रात के सन्नाटे में डूब चुका था। आकाश से चांदनी बरस रही थी, हवा के शीतल झोंके आ रहे थे रजनीगंधा की सुगंध के साथ। ढहे हुए विहारों के बीच में अधढहा बुद्धमंदिर था। काटकर गिराए हुए महाबोधि वृक्ष की पत्रहीन शाखाएं दयनीय जान पड़ती थीं।

न तो कहीं कोई बस्ती थी और न बाज़ार। विहारों की नंगी खड़ी दीवारें अपने व्यर्थ जीवन का रोना रो रही थीं तथा अधढहे बुद्ध मंदिर को तोष दे रही थीं 'तुम कभी उपासना और आदर के अधिकारी थे, संसार के अभिमानी सिर तुम्हारे सामने श्रद्धा से झुकते थे, किंतु आज राजनीति ने तुम्हें कहीं का भी नहीं रहने दिया, इतिहास का खंडहर बना दिया।' मानो मंदिर दीवारों से कह रहा था 'किसी दिन तुम्हारे संरक्षण में रहनेवाले ज्ञान-विज्ञान के पारदर्शी विद्वान और उच्च चरित्र के साधक भारत की प्रतिष्ठा संसार के कोने-कोने में फैलाते थे, किंतु तुम भी एक नाशवान मानव के विनाशक रोष में पड़कर अपनी महिमा गंवा चुके हो। आज तुम स्वर्णयुग की राख के अतिरिक्त कुछ नहीं हो।' कटा हुआ महा

बोधि वृक्ष कहता था, 'मैं तो सब कुछ भूल गया। भूल करना मानव का स्वभाव है। क्षमा करो उस बेचारे को जिसने मुझपर कुल्हाड़े चलवाए थे। वह घृणा का नहीं, क्षमा और दया का पात्र है। आज नहीं तो कल उसे अपनी गलतियों का बोध अवश्य होगा।'

आचार्य तिस्स अपने आसन पर से चुपचाप उठे और शिविर से निकलकर खुले मैदान में आकर खड़े हो गए। उन्होंने अस्फुट वाणी में कहा—'भगवान तथागत के पवित्र तीर्थ का नाश मनुष्य अशोक ने नहीं कराया यह तो सम्राट अशोक का काम है। मैं अपने को धन्य मानूगा यदि सम्राट अशोक को यह बोध करा दूं कि वह उपाधि से सम्राट है किंतु जन्म से तो मनुष्य ही है।'

आचार्य तिस्स ने देखा, चारों ओर गम्भीर सन्नाटा है। दूर-दूर तक खेमे फैले हुए हैं जिनमें सन्नाटा छाया हुआ है : निःशब्द प्रहरी घूम रहे हैं। शिविर के बीच में सम्राट का खेमा है, जो सभी दूसरे खेमों की तरह ही है जिसे पहचाना नहीं जा सकता।

आचार्य तिस्स ने कहा, 'लाखों रक्षकों से रक्षित सम्राट अपने को इतना छिपाकर रखता है ! यदि सम्राट बनने पर प्राण और भी संकट में पड़ जाते हों तो फिर लोग राज-पद प्राप्त करने के लिए इतने व्यग्र क्यों रहते हैं ? जिस जीवन में शांति और निर्भयता नहीं है, वह जीवन नहीं नरक है।'

अपने ही विचारों की हिलोरों में नाव की तरह डगमगाते हुए तिस्स इस तरह एक ओर चल पड़े जैसे वे स्वप्न में चल रहे हों। सच बात यह है कि मानव स्वयं आंधी-तूफान पैदा करता है और स्वयं उसमें घास-फूस की तरह उड़ता चला जाता है। बाहर से पैदा होनेवाले किसी आंधी-तूफान में इतनी शक्ति नहीं है जो वह मानव को एक अंगुल भी खिसका सके।

स्थविर सोच-विचार में डूबते-उतराते आगे बढ़ते चले गए। सभी प्रहरी उन्हें पहचानते थे अतः किसीने भी टोका नहीं। वे सादर एक ओर हट जाते थे।

आचार्य कटे हुए महाबोधि वृक्ष के निकट पहुंचकर क्षण-भर रुके और अनिमेष दृष्टि से वृक्षराज को देखने लगे। वे फिर अपने विचारों की हिलोरों में पड़कर आगे बढ़ गए और टूटे हुए मंदिर के सामने आकर खड़े हो गए। मंदिर के भीतर अंधकार मानो चांदनी के डर से छिपकर बैठा हुआ था। तिस्स ईंट-पत्थरों के ढेर पर संभल-संभलकर चढ़ते हुए वहां पर पहुंचे जहां पर मंदिर का प्रवेशद्वार था।

प्रवेशद्वार मलबे के ढेर से प्रायः बंद हो चुका था—खिड़की जितनी खुली जगह बची थी, जैसे किसी गुफा का प्रवेशद्वार हो। आचार्य ने झांककर भीतर देखने का प्रयत्न किया। वे यह देखना चाहते थे कि भगवान तथागत की प्रतिमा सुरक्षित है या वह भी···। अंधकार के कारण आचार्य कुछ देख न सके।

वे वहीं पर आसन लगाकर बैठ गए और सहज समाधि में लीन हो गए।

टूटे हुए मंदिर पर से धूल हवा से उड़-उड़कर आचार्य पर कभी-कभी बरस पड़ती थी। उनके सिर पर कुछ चमगादड़ भी रह-रहकर चक्कर काटकर एक ओर चले जाते थे। मानव ने जिस स्थान का त्याग कर दिया था उसे चमगादड़ों ने अपना दिवस-बसेरा बना लिया था। फिर मानव लौटकर आ गया—यह बात उनके लिए अरुचिकर थी। रात निःशब्द खिसकने लगी। असंख्य खेमे खड़े थे और शताधिक प्रहरी उन खेमों की रक्षा कर रहे थे। सम्राट का खेमा भी सैनिकों के खेमे जैसा ही था, जिससे यह पहचानना कठिन था कि कौन-सा खेमा सम्राट का है। सुरक्षा की दृष्टि से यह एक उपयुक्त प्रबन्ध था। साधारण से विशेष बनना अपने सिर पर संकट लाद लेना है, यह तो स्पष्ट ही है।

आधी रात तक अशोक भी अपने आसन पर करवटें बदलते रहे। एक व्यक्ति छाया की तरह आकर दीपक में तेल डाल जाता था। वह डरी हुई दृष्टि से कोमल बिछावन पर महान मगधाधिपति को बेचैनी के साथ करवटें बदलते देखता था और खिसक जाता था। उस व्यक्ति ने शायद यह मान लिया था कि सम्राट संसार के सभी व्यक्तियों से अधिक सुखी और चिंतारहित होता है, किंतु जब उसने सम्राट को छटपट करते देखा तो उसकी अकल हिरन हो गई—क्या महामहिमामय सम्राट भी साधारण व्यक्ति की तरह ही एक मानव होता है जो रात-भर नींद को पुकारता है और वह हठीली उसकी पुकार पर कान नहीं देती ? उस साधारण व्यक्ति के लिए यह एक बेबूझ पहेली थी।

अशोक बिछावन पर से उठे और टहलने लगे। वे नहीं चाहते थे कि कलिंग में जो कुछ हुआ उसे बार-बार स्मरण करें, किंतु उनकी इच्छा की बिना परवा किए एक से एक दहला देनेवाली स्मृतियां उनके सामने पूरी तेजी से उभरने और मिटने लगीं। शक्तिशाली सम्राट अपने-आप से पराजित होकर मन ही मन छटपटाने लगे। मन पर बार-बार दबाव डालकर भी जब वे सफल नहीं हुए और दहलाने

वाले असंख्य दृश्य सामने आकर थिरकने लगे तो वे खेमे से बाहर निकल आए।

शीतल हवा के स्पर्श ने उनके पसीने से तर ललाट को ऐसा सुख दिया जैसा सुख उन्हें राजतिलक ग्रहण करते समय भी नहीं मिला था।

अशोक ने देखा, नीले आकाश से शरद् की चांदनी अबरख के चूर्ण की तरह बरस रही है; नीले आकाश में चन्द्रमा श्वेत हंस की तरह तैरता हुआ जान पड़ रहा है और बदलियों के टुकड़े उसके नीचे से निकलते जा रहे हैं—बदलियों के टुकड़े अचल जान पड़ते हैं और चांद तेजी से चलता हुआ दिखलाई पड़ता है।

अशोक ने रुककर यह शोभा देखी। उन्होंने सोचा कि प्रकृति अधिक कलामय है या उनका वह राजभवन।

अशोक अपने भरे हुए कन्धों पर उत्तरीय डाले आगे बढ़े। प्रहरी भयाकुल होकर सम्राट का यह निशाभिसार देखते रहे। किसीने भी साथ जाने का साहस नहीं किया।

खेमों के जंगल से बाहर निकलकर अशोक रुके। अंगरक्षकों को जब यह पता चला कि सम्राट एकाकी कहीं जा रहे हैं तो उन्होंने गुप्त रूप से चारों ओर से सुरक्षा का प्रबन्ध कर दिया जिसका पता सम्राट को भी नहीं चला।

अब अशोक निरंजना नंदी के तट की ओर चले। पतली पगडंडी से होते हुए वे आगे बढ़े। उस पगडंडी पर कहीं-कहीं घास उग आई थी क्योंकि बुद्धगया के महाविहार के नष्ट हो जाने के बाद उस ओर आना-जाना प्रायः बंद ही हो गया था।

निरंजना की पतली धाराएं बहते हुए पारे की तरह दूर से ही चमक रही थीं।

अशोक बोले, "आह! उस दिन भी आज की ही जैसी रात रही होगी, जब महामुनि तथागत निरंजना के शांत तट पर पधारे होंगे।

"यही आकाश होगा, यही धरती होगी और इसी तरह चांद भी चांदनी बरस रहा होगा। इसके बाद···?"

अशोक ने कंधों पर से खिसकनेवाले उत्तरीय को फिर से संभाला। उनके भीतर विचारों का बवंडर उठ रहा था। वे सोचने लगे—'इसके बाद, बहुत दिनों के बाद मैं सेना के साथ इसी निरंजना के शांत तट पर आया। भगवान 'बहुजन-हिताय' यहां पधारे थे और मैं यहां आया था, कलिंग की धरती को उसीके पुत्रों के गरम खून से स्नान कराने!

"तथागत भी राजा के पुत्र थे, मैं भी राजा का पुत्र हूं, किंतु दोनों के उद्देश्य में कितना अंतर है, कितनी विषमता है !"

अशोक चुप लगा गए और एकटक निग्रोध वृक्ष की ओर देखते हुए अचानक लौट पड़े।

उनकी चाल में व्याकुलताजन्य तीव्रता थी—वह अदृश्य आशांति, जो मन को झकझोर देती है, तन को भी झकझोर डालती है।

अशोक इस तरह आगे बढ़ चले जैसे एक आत्मविस्मृत व्यक्ति शून्य में अपने-आपको टटोल रहा हो, किंतु उसे इसमें सफलता न मिले। वे वहां पहुंचे जहां पर स्थविर तिस्स समाधिमग्न बैठे थे। बुद्ध मंदिर के ध्वंसावशेष पर उस ध्यानावस्थित तपस्वी की अचल मूर्ति पत्थर की प्रतिमा की तरह दिखलाई पड़ रही थी। अशोक पहले तो यह जानने के लिए रुके कि यह कौन साधक है, किंतु जब उन्हें बोध हो गया कि आचार्य तिस्स हैं तो उनका मन परिताप से भर गया। उस शांत तपस्वी ने कभी भी यह शिकायत नहीं की कि भगवान की तपोभूमि को इस तरह क्यों बर्बाद किया गया और न उसने यह मांग की कि मंदिर और महाविहार फिर से बनवा दिए जाएं। पवित्र महाबोधि वृक्ष का अपमान किया गया, उसे जड़ से काट डाला गया, इस उत्पात में कितने तपस्यामग्न और स्वाध्यायरत भिक्खु मारे गए, कितने आचार्य तलवार के घाट उतारे गए, इसकी भी कोई चर्चा आचार्य तिस्स ने कभी अशोक से नहीं की—जैसे कुछ हुआ ही नहीं। ऐसे स्थितप्रज्ञ और हर्ष-विषाद से परे आचार्य को उस शांत विभावरी में भग्न बुद्ध मंदिर के सामने ध्यानमग्न देखकर अशोक के सामने उनकी हीनता स्पष्ट हो गई। एक सम्राट से एक तपस्वी कितना महान होता है यह समझते अशोक को देर नहीं लगी।

इस जीवन में पहली बार अशोक ने अपनी हीनता का अनुभव किया और वह भी एक सर्वस्वत्यागी भिक्खु की तुलना में।

अशोक हाथ जोड़े चुपचाप खड़े रहे। वे मन ही मन चीख रहे थे, 'भगवान, क्षमा करो। धर्मधर्मेश्वर, क्षमा करो।'

उनके हृदय की करुण पुकार, उनके हृदय में रहनेवाले अंतर्यामी के अतिरिक्त और कौन सुन सकता था।

हृद्गत भावनाएं जब शब्दों का रूप धारण कर लेती हैं तब उनका वह प्रभाव-शाली रूप नहीं रह जाता और न वह प्रभाव ही शेष बचता है। शब्दों के रूप में

बदलते ही भावनाएं समाप्त हो जाती हैं और उनकी जगह पर कुछ शब्द रह जाते हैं जो अपने सिर पर अर्थ का भार युगों से ढो रहे हैं। वे केवल अर्थ देते हैं, रूखा-सूखा अर्थ-मात्र। आचार्य की अचल मूर्ति हिली। अशोक अनिमेष दृष्टि से उन्हें देख रहे थे। हिलती हुई वह पवित्र मूर्ति खड़ी हो गई। अशोक कुछ और पीछे हट गए। वे एक टूटे हुए विशाल खम्भे की ओट में थे। खम्भे पर से धूल उड़कर सम्राट के उस गर्वोन्नत सिर पर गिरने लगी जिसपर मुकुट शोभा पाता था और जिस सिर पर अभिषेक के समय समस्त तीर्थों का अभिमंत्रित जल कर्मनिष्ठ पुरोहितों ने छिड़का था। अब एक अस्फुट गंभीर किंतु सरस ध्वनि गूंज उठी, "हे सर्वांतर्यामी प्रभो! प्रजापालक सम्राट की रक्षा करो। शत्रुओं से नहीं, शत्रुओं से भी अधिक घातक अहंकार से, कुविचारों से, हिंसावृत्ति से और उग्र भावनाओं से। यही इस सेवक की याचना है।"

इसके बाद मर्मभेदी सन्नाटा छा गया।

अशोक अपने डगमगाते पैरों से शिविर की ओर लौट चले। उन्होंने छिपी आंखों से लौटकर देखा, वृद्ध स्थविर संभल-संभलकर उस मलबे के ढेर पर से उतर रहे हैं जिसपर वे समाधिमग्न बैठे थे। तेज चाल से चलते हुए अशोक अपने शिविर में आए और एक ओर उत्तरीय फेंककर बिछावन पर लुढ़क पड़े। वे कब नींद के प्रभाव में आ गए यह उन्हें पता नहीं चला। जब उनकी आंखें खुलीं तो उन्होंने आंसुओं से तकिये को भीगा पाया। वे नींद में ही सुबकियां लेते रहे थे। यह उनकी आत्मा की रुलाई थी, शरीर की नहीं।

नित्य की तरह प्रभात की किरणें बुद्धगया के भग्नावशेषों पर उतरीं और फिर नित्य की तरह ही दिन का अंत भी हो गया। महामंत्री का भेजा हुआ संदेशवाहक आया जिसने यह सूचना दी कि सर्वत्र शांति है, किंतु प्रजा अपने विजयी सम्राट के दर्शनों के लिए इतनी अधीर हो रही है कि सारा पाटलिपुत्र नगर बुद्धगया की ओर प्रस्थान करने की बात सोच रहा है।

अशोक के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान-रेखा उभरी और मिट गई।

५

राज्य के विविध अंगों में मंत्री, खज़ाना, सेना आदि माने जाते हैं। किंतु उस काल में महादेवी भी राज्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानी जाती थीं, इतिहास द्वारा इसका पता चलता है। गम्भीर राजनीति के संचालन में महादेवी का भी योग रहता था, यह स्पष्ट है।

वर्तमान पटना का एक मुहल्ला है गुलज़ारबाग। पुरातत्त्ववेत्ताओं का कहना है कि वहीं पर महान अशोक का महल था।

गुलज़ारबाग की सड़कों पर घूमते हुए इस बात का ज़रा भी बोध नहीं होता कि कभी यहां पर महल रहा होगा और उस विशाल महल में शक्ति और लक्ष्मी विहार करती होंगी। कालचक्र बहुत ही निर्मम होता है यह तो असंख्य प्रमाणों से रात-दिन प्रमाणित होता ही रहता है, किंतु अशोक के उस मर्मरगठित इंद्रभवन जैसे महल में रहनेवाली महारानी तिष्यरक्षिता ने इस सत्य को नहीं स्वीकार किया और उसने जब यह संवाद सुना कि सम्राट के साथ महास्थविर तिस्स भी पधार रहे हैं जो अपने समय के सबसे बड़े सिद्ध और विद्वान माने जाते थे, तो उसने विषभरी मुस्कान से अपने आसपास के वातावरण को झुलसा-सा डाला।

महारानी ने ताली बजाई और एक अत्यंत सुन्दरी नवयौवन-सम्पन्न दासी इस तरह प्रकट हो गई जैसे वह शून्य में से शरीर धारण करके निकल आई हो। वह दासी यमन देश से मंगाई गई थी जो सौंदर्य में जितनी ही कोमल थी स्वभाव में ततोधिक क्रूर भी थी। उसकी चमकदार काली पुतलियां नाचती रहती थीं और वह होंठ कसकर बंद किए रहती थी। वह चकित हरिणी की तरह सशंक रहती थी तथा निःशब्द चलती थी, जैसे बिल्ली या चीता। उस दासी को देखते ही महारानी ने कहा, "और तने क्या सुना ?"

दासी ने स्पष्ट किंतु भरी आवाज़ में इधर-उधर देख लेने के बाद कहना आरंभ किया, "सुना यही कि आचार्य तिस्स का प्रभाव फैल रहा है। सेना के उच्चाधिकारी तक उनका आदर करते हैं और सम्राट तो सदा आचार्य का मुंह जोहा करते हैं।"

महारानी फिर मुस्कराई और बोली, "उस वृद्ध महामंत्री का क्या हाल जिसने साम्राज्य को अपने पैरों के नीचे रख छोड़ा है ? यह विशाल मगध साम्राज्य उस ब्राह्मण का पादपीठ बना हुआ है। मैं उसके सम्बन्ध में जानने को उत्सुक हूं

दासी कहने लगी, "महामंत्री शांति और निर्जनता के परकोटे के भीतर अत्यन्त सुरक्षित हैं। चुप्पी की दीवार लोहे की दीवार से भी मजबूत होती है, यह तो महारानी ने ही बहुत बार कहा है।"

तिष्यरक्षिता की काली घनी भौंहें टेढ़ी हो गईं और कुछ क्षण तक उसका यौवन से भरा चेहरा तपे हुए लोहे की तरह लाल बना रहा और फिर वह स्वाभाविक स्थिति में पहुंच गया।

महारानी बोली, "मौन का आवरण ? कूटनीतिज्ञों का मौन खतरनाक होता है। धगुप्त गोमुखव्याघ्र है ! वह देखने में निरीह गाय जैसा है किंतु काम पड़ने पर शेर बन जाता है, यह मैं जानती हूं।" दासी बोली, "महादेवी का कथन सही है। मुझे पता चला है कि आधी रात के बाद मंत्रिपरिषद की बैठकें महामंत्री की कुटिया में होती हैं और पहरे का इतना भयानक प्रबंध कर दिया जाता है कि हवा भी डर से कांपती हुई घेरे के भीतर प्रवेश करती है।" चौंककर महारानी ने पूछा, "ऐसी बात है ? वहां और कोई नहीं होता, केवल मंत्री ही रहते हैं ?"

दासी के कठोर-सुन्दर चेहरे पर जैसे वसंत की कमनीयता झलक पड़ी। उसने ज़रा-सा सिर झुकाकर धीमे स्वर में उत्तर दिया, "आचार्य राधगुप्त का एक शिष्य रहता है। वह उनका अत्यन्त विश्वासी शिष्य है।"

तेज़ी से मुड़ती हुई महारानी ने कहा, "बाहर का एक व्यक्ति तो वहां उपस्थित रहता है न ? वह नवयुवक है या वृद्ध, तूने देखा है ?"

फिर दासी की आंखें झुक गईं। यदि नीचे के फर्श से वह नहीं टकरातीं तो पता नहीं कहां तक झुकती चली जातीं। उसने कहा, "वह एक ब्रह्मचारी है।"

महारानी ने हल्की झुंझलाहट के साथ पूछा, "मैं यह नहीं जानना चाहती कि वह किस आश्रम में है ! मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे मिलना चाहिए।"

महारानी के शब्दों की चोट से दासी मानो गहरी नींद से चौंक उठी। वह किन्हीं काल्पनिक रंगीन सपनों के निकट तक पहुंच गई थी, किन्तु फिर तुरंत लौट पड़ी। वह बोली, "जी, भूल हो गई। वह एक नवयुवक है और···"

महारानी ने फिर प्रश्न किया, "और, और क्या है ? चुप क्यों लगा गई ?"

दासी का चेहरा फिर मुस्कराहट से भर गया। वह बोली, "और वह अत्यन्त स्वस्थ तथा सुन्दर भी है। अभी मसें भीग रही हैं। देखने में किसी राजकुमार से भी अधिक सुन्दर तथा शुभदर्शन है।"

तिष्यरक्षिता कुछ क्षण चुप रहकर बोली, "जो भी हो, किंतु वह एक मनुष्य भी है, अपनी समस्त दुर्बलताओं से लिपटा हुआ एक मनुष्य। सारी उपाधियों और समस्त अलंकारों के अतिरिक्त मनुष्य, मनुष्य भी है जैसे महाविजयी हमारे सम्राट यदि वे सोलहों आने सम्राट होते तो आचार्य तिस्स के चरणों पर क्यों अपना गर्वो न्नत सिर झुकाते। सिर झुकानेवाला मनुष्य अशोक है, और कलिंग को बर्बाद करने वाला सम्राट अशोक।"

महारानी बोलती रहीं और वह छरहरे शरीरवाली नवयुवती सुन्दरी दासी खड़ी-खड़ी सुनती रही। वह उस समय ऐसी जान पड़ती थी जैसे अचल प्रतिमा हो चेतना-चेष्टा-रहित एक अद्वितीय कलात्मक पुतली। महारानी विचारों के प्रवाह से उछलकर अलग हट गईं और बोलीं, "शैवाल, मैं तुझे अपनी दासी नहीं सखी मानती हूं— क्या यह बात सही नहीं है ?"

दासी फिर मुस्करा पड़ी। वह जानती थी कि इस प्रीति के चलते कभी सिर से भी हाथ धोना पड़ सकता है, क्योंकि वह जानती थी कि कौंधती हुई बिजली को माला की तरह कंठ में धारण करने का क्या फल हो सकता है। राजबुद्धि अत्यंत तीव्र और धारदार होती है—वह किसी क्षण भी विनाश उपस्थित कर डालेगी यह संभावना बराबर बनी रहती है।

'शैवाल' उस दासी का प्यार का नाम था। तिष्यरक्षिता उसे इसी नाम से स्मरण करती थी।

शैवाल ने झुककर महारानी के चरणों की वन्दना की और हाथ जोड़कर निवेदन किया, "आप हमारी महामहिमामयी देवी हैं। चरणों में दासी को सदा स्थान मिले, यही कामना है।"

महारानी ने शैवाल के सुन्दर जूड़ेवाले सिर का स्पर्श करके कहा, "अरी पगली, डर मत। तू मुझे जानती है। मैं गेंद की तरह सारे मगध साम्राज्य को उछाल सकती हूं, फिर चिंता किस बात की ! अच्छा, तू अभी जा।"

शैवाल चली गई और सम्राट अशोक की परम प्रिय तथा परम सुन्दरी महारानी तिष्यरक्षिता विचारों में खो गई। वह इसी अवस्था में बहुत देर तक रही। ऐसा जान पड़ता था कि वह विचारों की गहराई में डूबती हुई उसकी तली तक पहुंचने के लिए ज़ोर मार रही हो। एक अच्छी डुबकी लगानेवाली वह थी, और उसने इस कठिन योग का अभ्यास भी किया था। वह डूबी और बहुत गहरे तक

बती चली गई। जब वह बाहर निकली तो दिन समाप्त हो रहा था। उसका हरा इस तरह चमक रहा था मानो महारानी ने कुछ पा लिया—वह कीमती ोती लेकर निकली, घोंघे और सीप लेकर नहीं।

शैवाल महारानी से असंभव सम्मान प्राप्त करके उस विशाल कक्ष से बाहर निकली। वह स्थिर गति से आगे बढ़ती चली गई। कितने कमरे, बरामदे और दरवाज़ों को पार करती हुई वह उस विशाल महल के एक कोने में पहुंची। वह स्थान अत्यन्त सूना था। खुली खिड़कियों से दूर-दूर तक फैले हुए हरे-भरे खेत नज़र आते थे जिन खेतों में सोने की फसल हवा के झोंकों से लहरा रही थी। कटनी लगी हुई थी और अन्नपूर्णा का उत्सव हो रहा था। हवा के शीतल स्पर्श से शैवाल पुलकित हो उठी। उसने अपनी चिकनी और भरी हुई हथेलियों से चेहरे पर उड़-उड़कर लहरानेवाले घुंघराले बालों को संभाला और फिर अस्फुट स्वर में बोली, 'यह जो अप्रत्याशित स्नेह मुझे तिष्यरक्षिता जैसी भावनाशून्य स्त्री से मिला है उसका बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ेगा ही। दासी से मैं मागधेश्वरी की सखी बन गई और वह भी अचानक—यह किसी भयानक विस्फोट का प्रथम परिच्छेद है।'

शैवाल ने देखा—सामने एक अशोक का जो वृक्ष है उसकी एक डाल पर दो स्नेहमुग्ध कबूतर बैठे हैं। कबूतरी डाल से चिपककर बैठी है और आनन्दविभोर कबूतर उसके फूले हुए गले को सहला रहा है। शैवाल एकटक इस मनोमुग्धकारी दृश्य को देखती रही और फिर एकाएक झुंझला उठी। वह कहीं से चुनकर दो-चार कंकड़ लाई, किन्तु कंकड़ मारकर कबूतरों को त्रस्त करने का साहस उसे नहीं हुआ। वह बोली, 'मुझे यहां से हट जाना चाहिए···।' और वह हट गई।

वहां से हटकर वह अनजाने ही दूसरी खिड़की पर खड़ी हो गई जहां से कबूतरों का वह जोड़ा और भी साफ दिखाई पड़ता था। अब कबूतर डाल से चिपककर बैठ गया था और उसकी स्नेह-विभोर जीवन-संगिनी उसकी सतरंगी गरदन सहला रही थी। अशोक के पत्ते उतरती हुई धूप में चमक रहे थे और वे इस तरह हिल रहे थे कि पूरे वृक्ष में झिलमिलाहट-सी पैदा हो रही थी। फिर शैवाल एकटक कबूतरों के स्नेह-भरे आनन्द का रसास्वादन अपनी कजरारी आंखों से करने लगी। क्षण-भर बाद वह फिर चौंकी और बोली, 'उफ्, इन कबूतरों को मार डालना चाहिए—इन्होंने मुझे अकथनीय पीड़ा पहुंचाई।'

वह तेज़ चाल से अपनी कोठरी की ओर मुड़ी और छोटी धन्वा और दो पैने

बाण लेकर लौटी। उसकी आंखों की लुनाई गायब हो गई थी और उसकी जग पर अमानुषिकता की लाली फैल गई थी।

वह खिड़की के निकट आई। अब दोनों कबूतर सटकर बैठे थे। वे मानो आनं के परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाली सात्त्विक तृप्ति के अनिर्वचनीय सुख का अनु भव कर रहे थे।

शैवाल ने देखते-देखते दोनों कबूतरों को बाणों से बींधकर नीचे गिरा दिया

वह फिर पैर पटकती हुई लौट पड़ी और अपनी कोठरी के भीतर धनुष फेंक कर दूसरी ओर चली गई।

इस तरह शैवाल ने अपने उन शत्रुओं का अन्त कर दिया जिनका सुख उसके व्यर्थ और ज्वालामय जीवन की अनुभूति को और तीव्र बना डालता था।

स्वयं अशुभ स्थिति का शिकार बना हुआ अभागा दूसरे के यहां का मंगल-घट फोड़े, यह बहुत ही भयानक मानसिक क्षोभ है।

शैवाल का मन फिर भी शान्त नहीं हुआ। वह अर्ध-विक्षिप्तावस्था में महल के इस छोर से उस छोर तक छटपटाती फिरी। वह कभी हाथ मलती और कभी ललाट पर के पसीने को पोंछती। कुछ देर में उसका मन पुरानी धुरी पर घूमने लगा और वह हल्की मुस्कान बिखेरती हुई उस ओर चली जिधर तिष्यरक्षिता बैठी खुली छज्जी के बाहर की शोभा देख रही थी।

शैवाल के आने की भनक जब महारानी को मिली तो उसका लुभावना चेहरा दीप्त हो उठा।

वह बोली, "शैवाल, यह तो बता कि उस नवयुवक का नाम क्या है जो महा-मन्त्री का विश्वासपात्र शिष्य है ?"

शैवाल चौंक उठी किंतु अपने को संभालकर बोली, "सुना है, उसका नाम शशिमित्र है। वह तक्षशिला का निवासी है।"

"तक्षशिला का !" महारानी अचानक बोल उठी, "वह मगधनिवासी नहीं है, यह तू अच्छी तरह जानती है ?"

शैवाल ने नरम स्वर में विश्वासपूर्वक जवाब दिया, "जी, जानती हूं।"

महारानी बोली, "यह तो आशा से भरी सूचना तूने दी है। वह दूर देश का रहनेवाला है। मगध के प्रति उसके हृदय में वैसा अनुराग नहीं होगा, यह मैं जानती हूं।"

शैवाल डर रई। वह तो भारत की रहनेवाली भी नहीं थी। कहीं यही तर्क इसके सम्बन्ध में भी महारानी ने सोचा तो तत्काल उसे अपने-आपको गंवाना पड़ेगा।

शैवाल क्षण-भर में ही स्वस्थचित्त हो गई। उसने सोच लिया कि जब ऐसी बारी आएगी तो देखा जाएगा। एक ही बार सभी कोई मरते हैं—फिर चिंता क्यों?

महारानी कहने लगी, "शैवाल, आर्यपुत्र कब तक लौटते हैं पता नहीं। कई मास तक राजसिंहासन खाली पड़ा रहा। राधगुप्त जैसे भिखमंगे को अपनी प्रधानता की स्थापना करने का अच्छा अवसर हाथ लगा।"

शैवाल बोली, "महारानी को यह मालूम होना चाहिए कि···"

तेज स्वर में तिष्यरक्षिता बोली, "क्या मालूम होना चाहिए?"

शैवाल ने कहा, "यही कि महामन्त्री तो जनता का प्रतिनिधि है। वह सदा से प्रभावशाली है। महाराज भी उसका आदर इसीलिए करते हैं कि वह जनता का विश्वासपात्र है।"

तिष्यरक्षिता बोली, "यदि मैं मगध के सिंहासन पर बैठती तो तुझे महामन्त्री का पद देती। तू इतनी गम्भीर बात कैसे समझती है?"

शैवाल ने कहा, "महादेवी के चरणों की सेवा में रहती हूं और यहां तो ऐसी ही बातें रात-दिन कही और सुनी जाती हैं।"

तिष्यरक्षिता मुस्कराई और बोली, "शैवाल, राजनीति का रंग कब गहरा और फीका हो जाता है, कोई नहीं बतला सकता। वह पक्का राजनीतिज्ञ है जो परिस्थितियों पर शासन करता है, न कि परिस्थितियों की गुलामी।"

शैवाल बोली, "एक नई बात आपने बतलाई। इसी तरह से मैंने सीखा। आप महामहिमामयी मागधेश्वरी हैं, आपका कथन बिलकुल सही है।"

६

फूलों की नगरी पाटलिपुत्र के जीवन में कितनी सुगन्धि बसी हुई थी यह तो कोई मधुकर ही बतला सकता है, किंतु राजधानी होने के कारण उस महानगर में पतली-पतली गलियों की तरह कितने तरह के विचार फैले हुए थे यह जानना सहज है।

दिन का अन्त हुआ और रात प्रदीपों के प्रकाश से जगमगाती हुई राजधानी राजपथ पर उतरी। दिन-भर के थके हुए, कार्यव्यस्त जीवन में स्फूर्ति की ए हलकी लहर दौड़ गई और कठोर कर्मचक्र ज़रा ताल-सुर के साथ घूमने लगा ज सारा दिन तूफानी चाल से घूम रहा था।

दिन एक गर्जन-तर्जन है जिसमें न तो आरोहण-अवरोहण है और न ताल बद्धता का ही पता चलता है। रात के लिए ऐसी बात नहीं कही जा सकती। रा ताल-सुर के साथ आगे बढ़ती है, उसकी गति कोमल और हृदयग्राही है जैसे किस सिद्ध गायक का गाया हुआ संगीत।

पाटलिपुत्र ने जैसे ही अनुभव किया कि दिन अपने हाहाकार के साथ विद हो गया, उसने भी अपना चोला बदल डाला।

फूल-माला बेचनेवाले राजपथ पर घूमने लगे, जिस राजपथ पर सारा दि हलदी, सोंठ, मिर्च, नमक लादे हुए व्यापारियों के छकड़े रेंगा करते थे। दौड़-धू करनेवाले भी गायब हो गए और लाभ-हानि के बल पर जीनेवाले सेठ-साहूका भी चलते बने।

ऐसे सिद्ध-तपस्वी अर्थदास भी चले गए जिन्होंने नारायण को 'नकद-नारायण के रूप में पहचाना था और ऐसे लोग भी नहीं रहे जिन्होंने जीवन-भर धूल क रस्सी बटने का व्यापार चलाया था।

पाटलिपुत्र का कर्म-कोलाहलमय जीवन रात होते ही मिलन-वंशी की मीठ तान में बदल गया।

शरीर में मोटी रगें होती हैं। उनसे अधिक महत्त्वपूर्ण वे सूक्ष्म रगें होती है जिन्हें संवेदनशील शिराओं के नाम से जानते हैं। इसी तरह किसी महानगर की बड़ी-बड़ी सड़कों से वे पतली और दुर्गम गलियां अधिक महत्त्वपूर्ण होती है जहां आना-जाना कठिन होता है। पाटलिपुत्र में भी गलियों के उलझे हुए जाल तन्तुओं के भीतर एक ऐसी गली थी जिसके बाहर से अधढहे एक कच्चे घर मे कुछ बौद्ध भिक्षु रहते थे। घर भीतर से अच्छा-खासा बना हुआ था, किंतु दरिद्रता का आवरण ओढ़े जिस तरह कोई धनी व्यक्ति लोगों की लालच-भरी दृष्टि से अपनी रक्षा करता है उसी तरह वह घर भी देखनेवालों की नज़रों को धोखे में रख रहा था।

उस घर में कई प्रवेशद्वार थे—एक द्वार इस गली की ओर था, तो दूसरा

ग गली की ओर, तीसरा एक दूसरे घर के आंगन में खुलता था तो चौथा उस ली की ओर जो निर्जन मैदान तक पहुंचकर समाप्त हो जाती थी। दो कोठरियों । वह घर हज़ारों घरों के घेरे में रहकर भी सबसे अलग और अकेला था।

एक रात उस घर की कोठरी का दरवाज़ा खोलकर एक पहलवान जैसा भिक्खु ाहर निकला और पीछे का दरवाज़ा खोलकर गायब हो गया। फिर एक युवती नकली और वह भी दूसरे द्वार से निकल गई। इसी तरह चार-पांच भिक्खु एक-क करके कोठरी से निकल-निकलकर शून्य में विलीन होते रहे। उस घर का ातावरण अविश्वास और शंकापूर्ण था—ऐसा जान पड़ता था कि वहां न तो शांति और न सौम्यता।

अन्त में एक अधेड़ भिक्खु दूसरी कोठरी से निकला। वह आंगन में खड़ा हो इस तरह हवा सूंघने लगा, जैसे शिकारी पशु सूंघते हैं। हवा की गन्ध से उसे किस रहस्य का पता चला यह तो बतलाया नहीं जा सकता, किंतु सामने के दरवाज़े से एक भिक्खु आया जो देखने में शांत, गम्भीर और कर्मनिष्ठ जान पड़ता था। वह उन्नत शरीर का एक ऐसा व्यक्ति था जिसके चेहरे से उसके विचारों की चमक निकलती थी। आगन्तुक ने गम्भीर स्वर में उस भिक्खु से प्रश्न किया जो हवा सूंघने में तल्लीन था, "शीलभद्र, वे चले गए ?"

शीलभद्र इस तरह चौंक पड़ा जैसे किसीने अचानक उसे चपत मार दी हो। वह जल्दी-जल्दी बोला, "अभी-अभी गए।"

फिर सन्नाटा छा गया। नवागन्तुक भिक्खु स्थिर कदमों से आंगन पार करके उस कोठरी के दरवाज़े पर पहुंचा जिसमें से युवती निकली थी। शीलभद्र को यह बात बुरी लगी। उसने कहा, "रुको, वहां चण्डाचार्य बैठे हैं और, और भी भिक्खु हैं।"

वन्द कोठरी के अन्दर चण्डाचार्य बैठे थे, चार-पांच भिक्खु भी थे तथा दो स्त्रियां भी बैठी थीं जो भिक्खुओं को अपने कटाक्षों से कभी-कभी आहत कर देती थीं।

चण्डाचार्य पाटलिपुत्र के गुप्त भिक्षु-संघ के बलवान अधिष्ठाता थे जिन्होंने तरह-तरह का रूप धारण करके सारे देश की प्रदक्षिणा की थी तथा देश के बाहर भी हो आए थे। उनका दृष्टिकोण पूर्ण राजनीति था, धार्मिक नहीं। उनका विश्वास था कि धर्म से राजनीति बड़ी होती है और राजनीति की उपासना अनेक रूपों में की जानी है—जटा बांधकर, नग्न रहकर, सिर मुड़वाकर और चीवर पहनकर।

ज्यों-ज्यों राजनीति धर्म को दबोचती गई, धर्म का केवल नाम-मात्र शेष रह गया और राजनीति ने धर्म की सारी शोभा को उदरस्थ कर लिया। यह एक स्थिति थी जिसकी देन थे चण्डाचार्य।

चंडाचार्य ने अपनी बलवान बांहों को हवा में उछालते हुए कहा, "यह कैसे हो सकता है कि महास्थविर तिस्स अशोक के राजमहल में रहें और वहां के सुखों से मुग्ध होकर धर्म को बेच दें!"

एक भिक्खु बोला, जो अब तक सामने बैठी हुई एक चंचल चितवनवाली सुन्दरी के रूप-यौवन के दलदल में धंसा हुआ था, "आपने गलत कहा···।"

सही बात यह है कि उसने सुना ही नहीं कि उनके नेता ने क्या कहा। कुछ बोलना चाहिए, इसीलिए वह बोल उठा।

चंडाचार्य तड़प उठे और भिक्खु की ओर क्रुद्ध अजगर जैसी आंखों से ताकते हुए बोले, "मैंने गलत कहा! तुम संघ से अलग हो जाओ—तुम संघद्रोही हो, धर्म के नाश करनेवाले!" चंडाचार्य की हुंकार ने वातावरण में सन्नाटा पैदा कर दिया। वह अभागा भिक्खु, जिसका पतन आनन्द की सबसे ऊंची चोटी पर से हुआ था, भयाकुल होकर गिड़गिड़ाया—"मैंने सुना ही नहीं कि आप क्या बोल रहे हैं। क्षमा कीजिएगा—भूल हो गई।" दोनों सुन्दरियां मुस्कराकर एक-दूसरी को देखने लगीं तो चंडाचार्य ने नरम स्वर में कहा, "यह मैंने भी अपराध किया। मुझे क्रोध के प्रभाव से बचना चाहिए—भगवान बुद्ध ने यही सीख दी है।"

आचार्य चुप हो गए और वातावरण में एक भद्दी चुप्पी छा गई। सुन्दरियां चकित मृगी की तरह इधर-उधर देख रही थीं और अपराधी भिक्खु आचार्य के चरणों में मन लगाए मन ही मन अपने को कोस रहा था और भीतर ही भीतर कांप भी रहा था।

चंडाचार्य कुछ देर तक उसी तरह अपने-आपसे युद्ध करते रहे, जिस तरह एक घुटा हुआ कूटनीतिज्ञ आत्मदमन का नाटक करता है।

सुन्दरियों में से एक ने सुरीले स्वर में निवेदन किया, "मैं अब जाना चाहती हूं क्योंकि बुद्धगया से संदेशवाहक आ गया होगा। वह रास्ते में ही अगर मद्य पीकर कहीं लुढ़क गया तो कल तक पहुंचेगा, नहीं तो एक दण्ड में निश्चय ही आ जाएगा।"

चंडाचार्य इतनी देर में पूर्ण रूप से आत्मदमन करके पवित्र हो चुके थे, उन्होंने भारी आवाज़ में कहा, "जो संवाद मिले उसे भद्रसेन तक पहुंचा देना। तुम जा

कती हो।"

दूसरी सुंदरी भी चली गई। उन दोनों बालाओं के जाने के बाद उस कोठरी जो कुछ बच रहा वह गद्य ही गद्य था। झुलसे हुए वृक्ष की ठूंठ की तरह चंडाार्य अपने जघन्य व्यक्तित्व से वातावरण को कुरूपता से भर रहे थे और जो दोार भिक्खु बैठे थे वे भी रह-रहकर जंभाइयां ले रहे थे। सारा उत्साह, सारा ाज और ओज समाप्त हो गया और जो-कुछ वहां शेष बचा वह था चंडाचार्य का ेताल जैसा डरावना रूप, जिसे कोई भी पसंद नहीं करता था।

धीरे-धीरे निरुत्साहपूर्ण स्थिति में उस कोठरी की सभा भंग हो गई। वह भिक्खु, जिसे आचार्य की खरी-खोटी सुननी पड़ी थी, पिछवाड़े के दरवाज़े से निकला और अंधकारपूर्ण, पतली और दुर्गंधपूर्ण गली में इस आत्मनिर्भता के साथ चला कि वह किसी प्रकाशोद्भासित राजपथ पर चल रहा हो। उसके पैरों में मानो ऐसी आंखें थीं जैसी आंखें बिल्ली की होती हैं जो घोर अंधकार में भी आराम से आती-जाती है।

जब कोठरी खाली हो गई तो चंडाचार्य ने आंगन में निकलकर आकाश की ओर देखा—तारों की स्थिति से उन्होंने अनुमान लगा लिया कि आधी से अधिक रात बीत चुकी है। आचार्य अपनी सील से भरी कोठरी में घुसे और भीतर से अच्छी तरह दरवाज़ा बंद कर लिया।

उस घर में जो नाटक हो रहा था उसका एक अंक इस तरह समाप्त हुआ।

उस सुरंग जैसी गली से बाहर निकलकर वह भिक्खु खुली सड़क पर आया। शीतल हवा के मधुर स्पर्श ने उसके अच्छी तरह मुंडे हुए सिर पर मानो बरफ का टुकड़ा रख दिया। वह बड़बड़ाया, "नरक से उद्धार हुआ। उफ्, कहीं दो घड़ी सोच-विचार करने का समय मिला—रात तो बीतेगी ही किंतु···।"

किसीने आवाज़ लगाई, "शीलभद्र !"

उस भिक्खु का नाम शीलभद्र था। अपना नाम सुनते ही वह इधर-उर देखने लगा। पहले तो एक काला कुत्ता नज़र आया। शीलभद्र ने मुस्कराकर कहा, "आप ही मुझे स्मरण कर रहे थे ?"

साक्षात बेताल की तरह एक व्यक्ति वृक्षों के उस पार से प्रकट हुआ। यह बेहद लंबा, दुबला और काले रंग का भिक्खु था जिसने शीलभद्र को पुकारा था। शीलभद्र ने रूखे स्वर में पूछा, "यह मूर्खता है। सन्नाटे में किसीको नाम लेकर

पुकारना उचित नहीं है। क्या तुम जानते हो कि मैं क्यों नगर की जगमगाहट से दूर रहना चाहता हूं?" वह भिक्खु अपने सिर पर हाथ फेरकर बोला, "सब जानता हूं। तुम पिप्पलाद के घर की ओर जा रहे हो या नहीं ?"

शीलभद्र ने कहा, "चूल्हे में जा रहा हूं, तुम क्यों मेरी जान का यम बने हुए हो ? हटो यहां से !"

उस भिक्खु ने हंसकर जवाब दिया, "पिप्पलाद को नगररक्षक पकड़कर ले गए। इसीलिए सावधान कर रहा हूं, उधर न जाना।" घबराकर शीलभद्र बोला, "अरे, कारण क्या है ? यह क्या हो गया ?" वह भिक्खु शीलभद्र के और निकट खिसक आया और कहने लगा, "मित्र, महामंत्री का यह काम है। जहां-जहां भिक्खुओं की जमात जुटा करती है, वहीं-वहीं गुप्तचरों का चक्र भी चलने लगता है। पिप्पलाद भी इसी संदेह में पकड़ा गया। जो चार-पांच सुंदरी वेश्याएं उसके संरक्षण में रहती थीं उनमें से एक ने सारा भंडाफोड़ कर दिया।"

शीलभद्र भय से कांपता हुआ बोला, "तब तो मेरा नाम भी उसने बतलाया होगा ही।"

उस भिक्खु ने अत्यन्त विज्ञ की तरह धीमे स्वर में सोचकर उत्तर दिया, "कहा या नहीं, किंतु सावधान न रहने से राजगृह के गंदे बंदीगृह में घुल-घुलकर मरना पड़ेगा। अनंतनाग, सौगंधरायन, प्रच्छन्नसेन सभी तो वहीं पड़े हैं।"

शीलभद्र थरथर कांप रहा था, उसने अपने भीतर एक ऐसी कंपकंपी का अनुभव किया जिसका कोई संबंध न तो किसी रोग से था और न शीतल हवा से।

शीलभद्र अपने चीवर को अपने शरीर से अच्छी तरह लपेटकर बोला "किसी तरह साले चंडाचार्य को नरकालय का रास्ता बतला दिया जाए तो पाटलिपुत्र का पातक मोचन हो। वह जंगली भैंसा बिलकुल ही निर्भय होकर खेत उजाड़ता फिरता है। तुम्हारी क्या राय है ?"

वह भिक्खु जैसे ऊंघ रहा था। उसने चौंककर जवाब दिया, "अरे, उस अशुभ व्यक्ति का नाम इस समय क्यों लेते हो? वह आर्यावर्त का निवासी नहीं है। ब्रह्मदेश का रहनेवाला है। उसके हृदय में हमारे देश के प्रति न तो ममता ही है और न श्रद्धा ही।"

शीलभद्र ने कहा, "यही तो रोना है भाई यजन, बाहर के व्यक्तियों ने हमारे यहां प्रमुखता प्राप्त करके जिस राक्षसता का विकास किया है वह हमारे धर्म को

ाकर ही विदा होगी। अब हमें आगे बढ़ना चाहिए।"

दोनों इधर-उधर चौकन्ने होकर ताकते हुए नाक की सीध पर चले। पक्की ड़क कच्ची सड़क बन गई और फिर कच्ची सड़क पगडंडी बनकर दूर पर बसे एक गांव के भीतर चली गई। दोनों भिक्खु गांव के भीतर पहुंचे जहां भौंकते हुए कुत्तों ने उनका स्वागत किया। वहां पूरा सन्नाटा था। प्रत्येक घर का दरवाज़ा भीतर से बंद था और किसी भी बंद दरवाज़े के भीतर से किसी तरह की भी हल-चल का पता नहीं चलता था। दोनों चलते हुए एक घर के दरवाज़े पर रुके और अच्छी तरह घर को पहचानकर आपस में बहस करने लगे, "तुम दरवाज़ा खट-खटाओ", "नहीं, तुम ही दरवाज़ा खटखटाओ।"

कुछ देर तक यह हुज्जत होती रही, अन्त में शीलभद्र ने दरवाज़े की कुंडी खट-खटाई तो भीतर से एक गुर्राती हुई आवाज़ आई, "कौन है ?"

इसके बाद फिर सन्नाटा छा गया। दूसरी बार कुंडी खटखटाने पर अत्यन्त अश्राव्य भाषा का प्रयोग करता हुआ एक नाटा-सा काला व्यक्ति बाहर निकल आया। उसके हाथ में एक प्रदीप था। उसने दोनों अनाहूत अतिथियों को देखकर जवाब दिया, "क्षमा करना मित्रो ! साला शंखायन शराब पीकर नित्य मेरी नींद नष्ट करता है ! पधारो !"

७

कई कोसों तक फैले हुए धन-रत्न-सम्पन्न पाटलिपुत्र महानगर का श्रेष्ठिन् पौर[1] भवन में बैठा हुआ चिंतामग्न था।

विजयी महान सम्राट पधार रहे थे। सम्राट ने आदेश दिया कि उनका स्वागत नहीं किया जाए क्योंकि उन्होंने कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया। लाख से ऊपर मनुष्यों का वध करके और एक श्रीसम्पन्न भूभाग को ऊसर या श्मशान बना-कर जो घोर कर्म उन्होंने किया है वह अत्यन्त जघन्य कहा जा सकता है। इस घृणा

१. 'पौर' वास्तव में नगरनिवासियों की एक सभा थी जिसे राजनगर की आंतरिक व्यवस्था आदि का उसी प्रकार अधिकार प्राप्त होता था जिस प्रकार आजकल के कारपोरेशन को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त वह राष्ट्र के संगठन का भी काम करती थी। इस सभा का अध्यक्ष नगर का सेठ होता था जिसे श्रेष्ठिन् कहते थे।

के योग्य कर्म का पुरस्कार अभिनंदन कैसे हो सकता है !

यह समाचार जब पाटलिपुत्र में प्रचारित किया गया तो श्रेष्ठिन् के लिए एक भारी संकट पैदा हो गया। पौर की बैठकें लगातार कई दिनों तक होती रहीं किंतु कोई निर्णय नहीं हो सका। नगर के साठ-सत्तर द्वारों को सजाना था, बाज़ारों को अलंकृत करना था, बन्दनवार और मंगल-घट की व्यवस्था करनी थी। नागरिकों का उल्लास अपनी अंतिम सीमा तक पहुंच चुका था। प्रत्येक घर में उत्सव और दीपावली की तैयारी थी। गायक-नर्तक सभी उमंग में थे। जन-उत्साह पर ठंडा पानी डालना एक खतरनाक काम था। पूरी सजग जनता अपने को शासक मानती है, वह अनुशासन की रक्षा करती हुई अपनी गौरवपूर्ण परम्पराओं और पवित्र भावनाओं के लिए कुछ भी उठा नहीं रखती। पाटलिपुत्र की जनता अपने अधिकारों का उपभोग करना जानती थी और इस सम्बन्ध में किसी तरह के भी समझौते का स्वागत नहीं करती थी।

पौर ने अंत में निश्चय किया कि सम्राट अपनी ओर से जो भी सलाह दें जनता उसपर अमल करने को बाध्य नहीं है। विजय को सम्राट एक हीन वस्तु मानते हैं किन्तु मगध की जनता उसे अपना गौरव समझती है। अपनी परम्परा के अनुसार पाटलिपुत्र अपने सम्राट का स्वागत करेगा और सम्राट को जनता की श्रद्धांजलि स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि जनता की ओर से मिला हुआ सम्मान वस्तुतः जनता का ही सम्मान है जिसे जनता के श्रेष्ठ प्रतिनिधि जनता की ओर से स्वीकार करते हैं।

श्रेष्ठिन् ने अपने पौर के निर्णय को महामंत्री तक ले जाने का भार स्वयं लिया जो उसका कर्तव्य था।

जिस समय श्रेष्ठिन् महामंत्री की कुटिया में पहुंचे उस समय महामंत्री अपनी होम-धेनु को नहलाने गंगातट पर गए हुए थे। शशिमित्र आश्रम को झाड़-बुहार-कर साफ कर रहा था। यज्ञवेदी से अभी तक सुगन्ध निकल रही थी और समस्त वातावरण पवित्रता से भरा हुआ था। श्रेष्ठिन् एक ओर खड़ा रहा। कुछ देर बाद प्रसन्नवदन महामंत्री अपनी कृष्णा गऊ के साथ आए। गऊ के आगे-आगे उसका चंचल बछड़ा फुदकता हुआ चल रहा था। महामंत्री पुलकित होकर बछड़े का उछलना देख रहे थे और स्नेह-भरे स्वर में कृष्णा को लक्ष्य करके कह रहे थे, "तू कितनी शांत है, जैसे पुण्यतोया की निर्मल धाराएं, किन्तु तेरा पुत्र बहुत ही दुष्ट

! इसे समझाती क्यों नहीं—बोल तो ?"

श्रेष्ठिन्, जो कुछ दूर पर खड़ा था, महामंत्री के उल्लासमय वचन सुनकर गद्-द हो उठा। उसने अपने महामंत्री की महानता को अपनी आंखों से देखा जिसकी सने कभी कल्पना भी नहीं की थी। श्रेष्ठिन् के सामने मगध का जो शक्तिवान ड़ा था वह कितना सरल है इसका बोध जब उसे हो गया तो उसने सम्मान से ही र नहीं झुकाया बल्कि श्रद्धा से भी उसका सिर अपने-आप झुक गया महर्षि के रणों पर। प्रणाम करके श्रेष्ठिन् ने अनुभव किया कि उसके ओज और तेज में द्धि हुई है, उसकी आत्मा ऊपर उठी है, महानता की ओर।

श्रेष्ठ वही है जो दूसरों को भी श्रेष्ठता की शक्ति प्रदान कर दे।

महामंत्री ने जब आसन ग्रहण किया तो आदेश पाकर श्रेष्ठिन् पौर के निर्णय उन्हें अवगत कराकर बोला, "आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

महामंत्री ने शांत स्वर में कहा, "जन प्रतिनिधियों ने जो कुछ निर्णय किया ह शिरोधार्य है। श्रेष्ठिन्, तुम उनका आदेश श्रद्धासहित पालन करो।"

पुनः चरणस्पर्श करके श्रेष्ठिन् सानंद विदा हुआ और महामंत्री संध्या-वंदन रने लगे और शशिमित्र कृष्णा की सेवा में तन्मय हो गया। शीतल हवा के हल्के-हल्के स्पर्श से महामंत्री के मन को सात्त्विक सुख मिला।

जब सम्राट के आने का संवाद महारानी तिष्यरक्षिता को मिला तो उसने शैवाली को बुलाकर कहा, "अरी, तू नहीं जानती आर्यपुत्र पधार रहे हैं ? उनके साथ आचार्य तिस्स भी तो हैं। सुना है, सम्राट ने यह आदेश दिया है कि उनका सार्वजनिक अभिनन्दन न हो। उनका मन फिर गया है। आचार्य तिस्स के पुण्य-प्रभाव से उनकी मलिन बुद्धि परिष्कृत हो गई है।"

शैवाल अपनी चंचल तथा घातक आंखों से खुले बरामदे से दूर-दूर पर दिख-लाई पड़नेवाले मनोरम दृश्य देख रही थी। वह चौंककर बोली, "सम्राट की मलिन-बुद्धि ? महादेवी का ऐसा विचार कब से हुआ ?"

तिष्यरक्षिता ने बगल में रखे हुए तकिये पर जोर से हाथ पटककर कहा, "राध-गुप्त जैसे व्यक्ति को प्रधानता देना क्या अर्थ रखता है ! यहां एक अकेला ही व्यक्ति सारी राजशक्ति को अपनी झोली में डालकर गंगा में डुबकियां लगानेवाला राध-गुप्त था। तू नहीं जानती, राजनीतिक दृष्टि से किसी अधिकारी को अद्वितीयता प्राप्त हो जाना विनाशक होता है। प्रत्येक शक्तिवान अधिकारी के पीछे किसी न

किसीकी छाया लगी रहे तो वह अधिकारी ज़रा संभल-संभलकर कदम बढ़ाता है। राधगुप्त एकमात्र ऐसा व्यक्ति था जिसका सम्राट आदर करते थे। अब बंट-वारा हुआ—आचार्य तिस्स प्रकट हुए।"

शैवाल बोली, "महादेवी, मैं इतनी गहरी बातें नहीं समझ पाती। आप जो सोचती हैं, वह ठीक है।"

तिष्यरक्षिता के भरे हुए चिकने गालों पर आनन्द की ललाई छा गई। वह कहने लगी, "तू नारी तो ज़रूर है किन्तु तुझे इस बात का ज्ञान नहीं है कि एक नारी क्या चाहती है। वह चाहती है अपने पति पर पूर्ण आधिपत्य। यदि उसका पति ईश्वर के प्रति भी अपना अनुराग प्रकट करता है तो वह नारी ईश्वर की बैरिन बन जाती है—ईश्वर यदि उस नारी के आधिपत्य को चुनौती देते हैं तो वह उनका मुकाबला ज़रूर करेगी। अगर वह बल से ईश्वर को हरा नहीं सकती तो अपनी दहकती हुई घृणा उनपर उंडेल देगी और यह इसलिए कि उन्होंने उसके पति के स्नेह की धाराओं को अपनी ओर मोड़ लिया।"

दिन समाप्त हो गया और तिष्यरक्षिता बोलती चली गई। वह मानो चुप लगाना ही भूल गई थी। उसके हृदय के भाव पूर्ण वेग से शब्दों का आकार ग्रहण करके बाहर निकल रहे थे और शून्य में विलीन होते जाते थे, जैसे रंगबिरंगी फुल-झड़ियां।

बाल स्थिर शैवड़ी थी। वह जानती थी कि महादेवी को किसीको लक्ष्य करके बोलना था, वह बोल रही है। यदि वह नहीं होती तो वे अपनी बातें दीवारों और खंभों को ही सुना डालतीं। कभी-कभी चुप रहना एक असह्य दण्ड बन जाता है और दण्ड भोगना किसीको भी रुचिकर नहीं जान पड़ता।

तिष्यरक्षिता अपने ही विचारों के आघात-प्रतिघातों को नहीं संभाल सकी और बरामदे में टहलने लगी। वह अपनी पूरी ऊंचाई में तनी हुई इस तरह चल रही थी मानो नारीत्व की पूर्ण महिमा ही हो।

शैवाल भी यक्षिणी की पाहन-गठित प्रतिमा की तरह अपनी जगह खड़ी थी।

कुछ देर के बाद तिष्यरक्षिता एकाएक रुकी और बोली, "शैवाल, मैंने तुझे दासीपने से मुक्त कर दिया है, अब तू मेरी सखी है। इस पद का निर्वाह उसी तरह करना जिस तरह महाराज जब किसीको मित्रपद से विभूषित करते हैं तो वह उसका निर्वाह करता रहता है।"

शैवाल ने सादर सिर झुकाया और कहा, "महादेवी को कभी कुछ अन्यथ सोचने का अवसर नहीं मिलेगा। मैं किसी भी पद पर जाऊं, किन्तु हूं इन्हीं चरण की दासी। दासत्व से मुक्त हुई, किंतु सेवा से मुक्त कैसे हो सकती हूं !"

भावावेश में शैवाल के भरे हुए कंधे पर अपनी सुन्दर बांह रखकर तिष्यरक्षिता ने कहा, "तू उस नवयुवक को भूल गई क्या जो महामंत्री का विश्वासपात्र शिष्य है ?"

शैवाल चौंक उठी। महारानी क्या चाहती है, यह एक पहेली है। शैवाल ने कहा, "नहीं, मुझे स्मरण है।"

तिष्यरक्षिता शैवाल का हाथ पकड़कर कमरे के अन्दर चली गई और इधर बसेरे के लिए आनेवाले पंछियों के कलरव से उद्यान का प्रत्येक मूक वृक्ष मुखर हो उठा।

दो घड़ी के बाद तिष्यरक्षिता के पीछे-पीछे शैवाल निकली। उसका चेहरा गम्भीर था और होंठ कसकर बंद थे मानो वह मुंह में आई हुई किसी बात को बाहर निकलने से रोक रही हो। वह विदेशी नवयुवती इस तरह महामहिमामयी महारानी के पीछे-पीछे चल रही थी जैसे वह एक प्राणहीन पुतली-मात्र हो।

अत्यन्त प्रभावशील व्यक्तियों की सेवा में रहनेवाले व्यक्ति को कितना अपने को रौंदना पड़ता है इसका अनुभव कई जन्मों के पाप के बल पर ही प्राप्त किया जा सकता है।

महारानी बोली, "तो अब तुझे अपने काम में लग जाना चाहिए। समय का भी ध्यान रखो। मगध की स्त्रियां फूहड़ होती हैं। जो काम तुझे सौंपा गया है वह यहां की कोई भी स्त्री नहीं कर सकती।"

शैवाल सब कुछ सुनती रही और फिर प्रणाम करके इस तरह अपनी कोठरी की ओर चली जैसे स्वप्न में वह चल रही हो। उसका मन हवा पर तैर रहा था, उसके विचार कभी शून्य में उछलते थे और कभी पछाड़ खाकर धरती पर गिरते थे, किन्तु फिर बिना संभले गेंद की तरह ऊपर उछल जाते थे।

शैवाल अपनी कोठरी में घुसी और बिना दीपक जलाए खाट पर औंधे मुंह गिर पड़ी।

वह उन दिनों को याद करने लगी जब वह दस साल की कोमलमति बालिका थी। उसका गरीब पिता पाटलिपुत्र आया और खुले बाज़ार में अपनी बच्ची को

बेचकर चला गया। वह राजभवन मे पहुंचाई गई। पुरानी दासियों ने बेंतों की मार से उसे उन सारी कलाओं का ज्ञान कराया जिनकी वहां आवश्यकता थी। जंगल की चिड़िया सोने के पिंजरे में रहना नहीं चाहती थी, किंतु उपाय क्या था ? यमन की भाषा भूलते-भूलते उसे वर्षों लगे। वह सीधे यमन से ही अपने पिता के साथ आई थी। उन दिनों राजमहल में विदेशी दासियों की ही भरमार थी। संसार के अनेक देशों की दासियां वहां थीं।

शैवाल अपना नाम भी भूल गई थी। महारानी तिष्यरक्षिता ने उसे अपनी सेवा में रखा, क्योंकि शैवाल स्वभाव से अत्यन्त क्रूर और सुन्दरी थी। तिष्यरक्षिता को शैवाल का क्रूर स्वभाव बहुत ही रुचिकर जान पड़ा—शायद उसके स्वभाव से शैवाल का स्वभाव मेल खाता था।

सोचते-सोचते शैवाल खाट से उठी और टटोलकर उसने पानी का एक सुंदर पात्र उठाया। उसने एक सांस में पात्र को खाली कर दिया और फिर खाट पर चित लेट गई।

खुली खिड़कियों से शरद् की चांदनी प्रवेश कर रही थी। उसके यौवन से भरे हुए शरीर पर चांदनी बरस पड़ी। झुंझलाकर शैवाल ने चाहा कि हाथों से झाड़ कर चांदनी को हटा दे! किन्तु फिर वह मुस्कराकर उठ बैठी और बोली, "मैं भी कितनी मूर्ख हूं !"

महारानी तिष्यरक्षिता अपने सुसज्जित कमरे में बैठी कुछ सोचने लगी। शैवाल के जाने के बाद ऐसा लगा कि करने योग्य कोई काम उसके लिए शेष नहीं बचा।

मागधेश्वरी को भी चिंता के चक्कर में पड़ना पड़े यह अचरज की बात है। सही बात तो यह है कि चिंता, कष्ट, अभाव आदि जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग है। हम इनसे डरते जरूर हैं किन्तु इनके बिना जीने का रस भी नहीं मिलता। देखा यह जाता है कि हम जान-बूझकर तरह-तरह की चिंता, कष्ट आदि पैदा करते हैं और फिर इनसे उलझते हुए समय काटा करते हैं। यह एक विचित्र तमाशा है जिसका ओर-छोर कहीं नजर नहीं आता।

तिष्यरक्षिता एक हल्की अंगड़ाई लेकर कमरे से बाहर आई। उसने बाहर निकलकर देखा सारा बरामदा स्वच्छ चांदनी से सराबोर है। शीतल हवा के हल्के झोंके रह-रहकर आ रहे हैं।

उसने ताली बजाई और एक सशस्त्र दासी ने प्रवेश किया। महादेवी का आदेश हुआ, "गायिकाओं को भेजो!"

तत्काल गायिकाओं का एक सुंदर दल आ गया। वीणा की झंकार गूंजने लगी। संगीत का सुमधुर स्वर धरती से आकाश तक भर गया। चांदनी और संगीत की लहरियां इस तरह मिल गईं कि यह पहचानना कठिन हो गया कि चांद से चांदनी बरसकर धरती को नहला रही है या धरती से संगीत की लहरियां उठकर चांद को धो रही हैं।

शैवाल चुपचाप अपनी कोठरी से निकली और महल के अंतिम छोर पर जाकर एक खुली खिड़की के सामने खड़ी हो गई। वह इतनी दूर चली गई जहां संगीत की मनोद्वेग पैदा करनेवाली लहरियां सुनाई न पड़ती हों। वह एक निर्जन कोने में पहुंचकर अनिमेष दृष्टि से बाहर की उदास शोभा देखने लगी और फिर तन्मय हो गई।

८

एक दिन अचानक सारा पाटलिपुत्र उल्लास की हिलोरों में डबने-उतराने लगा।

कलिंग-विजय करके महान सम्राट राजधानी में पधार रहे थे। पुरानी परंपरा के प्रतिकूल सेना पहले ही आ चुकी थी। कुछ प्रधान पुरुषों के साथ सम्राट बाद में आनेवाले थे और थोड़े-से अंगरक्षक भी थे। नागरिकों को यह व्यवस्था कुछ अरुचिकर-सी प्रतीत हुई। वे न केवल सम्राट का ही स्वागत करना चाहते थे बल्कि अपनी चिरविजयिनी सेना की भी आरती उतारना वे उचित समझते थे, किंतु जब सेना के दस्ते पहले ही पहुंच गए तो फिर क्या हो सकता है!

ठीक समय पर सम्राट का रथ दक्षिण-द्वार के भीतर आया। उनके रथ के साथ ही एक दूसरा रथ भी था जिसपर आचार्य तिस्स बैठे थे—शांत चेहरा, तपे हुए सोने जैसा रंग और वयोवृद्ध। तिस्स का व्यक्तित्व प्रभावशाली था जिसके सामने वंदना करने की इच्छा बलवती हो उठती थी।

महामंत्री राधगुप्त ने पहले आचार्य तिस्स का स्वागत किया और फिर महाराज का। पुरोहितों ने वेदमंत्रों का उच्चारण किया। वह स्वागत-समारोह उल्लास-

पूर्ण न रहकर शुद्ध धार्मिक बन गया। जनता तो उत्सवप्रिय होती है, उसे गंभी धार्मिक वातावरण से उतना आनन्द प्राप्त नहीं होता। अपने उल्लास को मुक वातावरण में छलांगें भरते देखना जनता पसंद करती है, न कि नियमों और तौ तरीकों से जकड़े हुए किसी अत्यंत थका देनेवाले रसहीन अवसर को वह चाहती है

महामंत्री के साथ उनका शिष्य शशिमित्र भी था। राधगुप्त को सम्राट अपने रथ पर सादर बैठाया और शशिमित्र एक मंत्री के साथ जा बैठा।

इस तरह नागरिकों का अभिवादन स्वीकार करता हुआ यह छोटा-सा जुलू राजभवन के सिंहपौर पर आया तो शैवाल ने धीरे से तिष्यरक्षिता को दिखल दिया—उस रुपहले रथ पर जो नवयुवक ब्रह्मचारी बैठा है, वही शशिमित्र है।

तिष्यरक्षिता ने भेदभरी आंखों से शैवाल की ओर घूमकर देखा और वह पि अनिमेष दृष्टि से सम्राट को देखने लगी। अशोक का उन्नत और योद्धाओं जैस शरीर दमक रहा था, किंतु मुखमंडल पर गहरी उदासी थी। वह बिजली जैसी तड़ नहीं थी और न वह चकाचौंध पैदा करनेवाला तेज ही था। युवक सम्राट जैसे कु ही महीनों में भीतर से वृद्ध बनकर लौट रहा था। तिष्यरक्षिता की बाज जै तीखी नज़रों से यह परिवर्तन छिपा न रहा। उसने महामंत्री राधगुप्त को देर और फिर आचार्य तिस्स पर जाकर उसकी नज़रें ठहर गईं। वह शैवाल से बोल "देख तो आचार्य साक्षात् देवता जैसे लगते हैं! स्वर्ग की पवित्र विभा इन बरस-सी रही है!"

शैवाल ने महल में रहकर स्वर्ग, देवता आदि शब्दों का अर्थ तो सीख लि था, किंतु एक अनार्य कन्या होने के कारण इन शब्दों के महत्त्व को वह प्रयास कर भी हृदयंगम नहीं कर सकी। स्वर्ग या देवता शब्द के उच्चारण-मात्र से जो प्रभावपू चित्र मन ग्रहण करता है वे चित्र शैवाल के मन के पर्दे पर नहीं उभर सके। र तो संस्कार की बात है।

शैवाल ने कोशिश की कि तिस्स के चेहरे पर वह स्वर्ग की प्रभा देखे, किंतु इ दिन की ही प्रभा नज़र आई।

तिष्यरक्षिता ने भी महाराज की आरती उतारी और पुष्पवर्षा करके महल देवियां विदा हो गईं।

इस तरह राजधानी का चिर-प्रतीक्षित उत्सव एक निरानंदपूर्ण और ततोधि बोझिल वातावरण में समाप्त हो गया। जनता के मन का उल्लास पूर्ण वेग से न

कल सका और न उत्सव का ही तूफान किसीको अपने वेग में समेटकर धरती ऊपर उठा सका। नागरिक हारे-थके-से अपने-अपने घरों में लौट गए और उन्हें ा लगा कि व्यर्थ ही कई रातें जागकर उन्होंने नगर का शृंगार किया था। ष्ठिन का मन भी बैठ गया।

दो दिनों के बाद बंदनवार के सूखे आम्रपल्लव हवा में उड़ते नज़र आने लगे था जो मंगलघट प्रत्येक द्वार पर रखे गए थे वे कुछ तो फूटकर ठीकरा बन गए ोर कुछ गोशालाओं में ले जाए गए। जो हज़ारों तोरण बनाए गए थे उनका भी ही हाल हुआ। तोरणों में जो अशोक के हरे कोमल पत्ते लगाए गए थे वे सूखकर ावर्ण हो गए। पाटलिपुत्र की शोभा में ये उजड़े हुए तोरण उदासी भरने लगे।

महामंत्री अपनी कुटिया में लौट आए। उन्होंने आसन ग्रहण करते ही शशिमित्र ा कहा, "वत्स, तूने देखा नहीं, सम्राट अपने रथ पर कितने उदास थे! कोई ी अस्त्र उनके पास नहीं था, साधारणतः तलवार तो होनी ही चाहिए जो शासक ा चिह्न है।"

शशिमित्र बोला, "शासक में ऐसी उदासीनता का विकास होना शुभ लक्षण नहीं है प्रभो! उसने केवल छत्र ही नहीं दण्ड भी तो धारण किया है।"

आचार्य सोचकर कहने लगे, "हमारे सम्राट अत्यधिक भावुक स्वभाव के व्यक्ति हैं जबकि शासक को अधिक से अधिक ठोस होना चाहिए, व्यवहारप्रिय। राजा यदि पराक्रम से हट जाता है तो उसने अपनी उस शपथ का उल्लंघन किया जिस शपथ को उसने जनता के सामने ग्रहण किया था।"

शशिमित्र ने कहा, "आप इतनी दूर तक न जाएं तो अच्छा। वस्तु और स्थिति को अलग-अलग रखकर विचार करें, फिर यह सोचें कि वस्तुस्थिति क्या है।"

आचार्य खुलकर हंस पड़े और बोले, "बेटा, तू अधिक उदार मत बन। वृक्षों की सीधी डालों पर ही कुल्हाड़े चलते हैं। यह राजनीति है और राजनीति का मार्ग बहुत ही संकरा होता है। जनता एक ऐसा वन है जिसमें बराबर आग लगी होती है। हम सदा आग के बीच में ही काम करते हैं। चूके नहीं कि खाक में मिल गए। यह सदा स्मरण रखना।"

शशिमित्र ने गुरु का चरण-स्पर्श किया और कहा, "आचार्य का कथन ठीक है। मैंने स्वभाव की चपलता के कारण कुछ कह दिया, क्षमा कीजिएगा।"

स्नेह से शशिमित्र का सिर स्पर्श करके आचार्य स्वाध्याय में लग गए और

शशिमित्र ऊंचे तट पर खड़ा हो गया जहां से गंगा और सोन का संगम साफ-साफ दिखलाई पडता था। शशिमित्र ने देखा, उस पार की वन-रेखा दिन के प्रकाश में चमक रही है—नीचे हरीतिमा है और ऊपर सोने की तरह धूप चमक रही है। उसने सोचा, यह धरती कितनी सुन्दर है जिसे विद्वान पुरुष क्षणभंगुर कहते हैं! ऐसी लुभावनी पृथिवी पर रहकर मानव क्यों अपने चारों ओर कुरूपता का अम्बार लगाए रहता है! राज्य, शासन, राजनीति, हत्या, न्याय को आगे करके धन-अपहरण, चिंता, आतंक! क्या मानव बिना इन उपद्रवों के जी नहीं सकता? ऐसी सुन्दर, मनोरम और सरसा धरती क्या मानव को सात्त्विक संतोष और सुख नहीं दे सकती जो वह बुद्धि कही जानेवाली दुर्बुद्धि के चलते नित्य नये से नया नरक निर्माण करता रहता है और फिर उसी नरक में अपने को स्थापित करके कहता है कि यह संसार तो जलबुद्बुद्वत् है, जीवन क्षणभंगुर है—कष्टों का अन्त नहीं है।'

शशिमित्र खड़ा-खड़ा अपने विचारों में इतना खो गया कि उसे यह स्मरण ही नहीं रहा कि आचार्य कुछ ही देर में राजभवन जाएंगे क्योंकि वहां मन्त्रिपरिषद की बैठक होगी।

अपने को अपराधी मानकर धड़कते हुए हृदय से शशिमित्र आचार्य के निकट पहुंचा। उसे यह जानकर बड़ी घबराहट हुई कि वे चले गए थे। उसका हृदय धड़कने लगा।

संध्या के बाद महामंत्री राजभवन में पधारे। सभी मंत्री उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वय सम्राट ने मंत्रणाभवन के द्वार पर खड़े होकर आचार्य का स्वागत किया—यही परम्परा भी थी।

सभी द्वार प्रधानमंत्री के आते ही बन्द हो गए और बन्द द्वार पर बहरे प्रहरी खड़े हो गए। मंत्रणाभवन में क्या हो रहा है यह किसी को भी पता नहीं चले, इसकी पूरी-पूरी व्यवस्था कर दी गई।

दो घड़ी के बाद मंत्रणाभवन का एक द्वार खुला और महामंत्री विदा हुए। उनके बाद क्रम-क्रम से सभी मन्त्री विदा हो गए।

महामन्त्रीजी प्रसन्न मुद्रा में बाहर निकले। देखनेवाले यह नहीं समझ सके कि उस मुस्कराते हुए चेहरे के भीतर कैसी तस्वीर छिपी हुई है। कहते हैं कि चेहरे पर हृदय के भाव प्रतिबिम्बित होते रहते हैं किंतु सधे हुए राजनीतिज्ञों के सम्बन्ध

ऐसा सोचना धोखा है। पक्के राजनीतिज्ञ का वचन कर्म से कभी मेल नहीं खाता और न वह यही पता चलने देता है कि वह अपने भीतर देवता छिपाए हुए है या असुर।

एक सिद्ध राजनीतिज्ञ का आरम्भ ही धोखा और छिपावट से होता है सो तो राधगुप्त महामति चाणक्य की परम्परा में थे, जिन्होंने बुद्धि को सफल करके ही एक राजवंश को रसातल भेज दिया था और दूसरे को मगध का विशाल साम्राज्य सौंप दिया था।

महामंत्री अपनी कुटिया में लौट आए। वे रथ से मुस्कराते हुए उतरे। आचार्य को प्रसन्न देखकर शशिमित्र का कांपता हुआ हृदय शांत हो गया। आचार्य ने उसे देखते ही कहा, "मैं जल्दी में था। चला गया। सम्राट स्वस्थ हैं और नई-नई योजनाएं अपने साथ लिए आए हैं।"

शशिमित्र आचार्य के निकट बैठ गया। अब उसका मन स्वस्थ हो गया था।

आचार्य फिर कहने लगे, "वास्तविकता से बहुत दूर एक मायापुरी अनादि काल से है। वह पुरी बहुत ही मनोरम है। सबका मन उस पुरी में रहने के लिए व्याकुल होता है, किंतु जो सत्य को अपनी सूक्ष्म बुद्धि से अच्छी तरह परख चुके हैं उन्हें धोखा नहीं होता। हमारे स्वामी उसी मायापुरी के सपने देख रहे हैं जहां प्रवेश कर लेने के बाद लौटा नहीं जा सकता।"

इस रहस्यवाद को शशिमित्र समझ न सका, किन्तु प्रश्न करने का साहस भी नहीं हुआ।

रात समाप्त हो गई, फिर दिन आया और इस तरह एक सप्ताह समाप्त हो गया। राधगुप्त का कठोर मौन और भी अभेद्य हो गया। वे सदा की तरह अध्ययन, अध्यापन, मनन और अग्निहोत्र करते रहे। मंत्रिपरिषद की बैठकें भी होती रहीं और पौर का श्रेष्ठिन भी नित्य आकर परामर्श करता रहा। सब कुछ करते हुए भी महामंत्री जैसे कुछ भी नहीं करते थे। एकाध बार वे राजभवन में भी गए, किंतु बुलाने पर ही, अपने मन से नहीं। देश-विदेश के राजदूत और कूटनीतिज्ञ पुरुष सदा की तरह उनकी कुटिया पर पधारते रहे और महामंत्री से बातें करके विदा होते रहे। एकसाथ ही घोर राजनीति और सात्त्विक जीवन की दो परस्पर-विरोधी धाराएं महामंत्री की कुटिया में बहती रहीं और उस खर-पात की नन्ही-सी कुटिया के सामने गंगा और सोन का जो मिलन हुआ था वह भी शशिमित्र के लिए कम

आकर्षक न था। परस्पर-विरोधी तत्त्वों के मिलन का ही परिणाम यह विश्व-प्रपं है यह विद्वान शशिमित्र जानता था। यही कारण है कि वह जो कुछ देखता औ समझता था उससे उसे आश्चर्य नहीं होता था।

महामना तिस्स ने महल में रहना अस्वीकार कर दिया था, अतः उनके लि राजगृह में एक सुन्दर आश्रम बना दिया गया जहां भौतिक सुख के वे सभी साध थे जिनकी आवश्यकता संसारत्यागी और संसार में लगे रहनेवाले—दोनों प्र का के मानव को पड़ती ही रहती है।

राजगृह के आश्रम में आचार्य तिस्स ने अपने लिए उस जगह को पस किया जहां बुद्धदेव का मूलगंध कुटीर था। आचार्य तिस्स के प्रभाव देश-देश के भिक्खु, जो भारत में रह रहे थे, उनके चारों ओर अनायास ही जमा गए। आश्रम ने विहार का आकार धारण किया। गृहस्थों का आना-जाना भ शुरू हो गया और तत्काल ही वहां फूल-माला की दुकानों के साथ ही साथ देखते देखते अच्छा-खासा बाज़ार बस गया। दो-चार महीनों में ही यह सब चमत्कार ह गया।

समय-समय पर सम्राट की सवारी भी आचार्य के आश्रम में पहुंचने लग तथा तिष्यरक्षिता तो नियमपूर्वक आचार्य की वंदना करने जाती ही रहती थी।

शशिमित्र ने आचार्य से प्रश्न किया, "भगवन्, सर्वस्वत्यागी आचार्य तिस्स एव छोटी-सी नगरी में घिर गए हैं। यह सब कैसे हो गया? उनकी साधना कैसे चलत होगी?"

खिलखिलाकर हंसते हुए महामंत्री बोले, "बेटा, प्रतीक्षा करो। मानव अप को छिपाने का सदा प्रयत्न करता है, किन्तु समय उसे बार-बार खुले प्रकाश में लाक खड़ा कर देता है। अभी तुम मन की उत्सुकता को उत्साहित मत करो—देखो क्या-क्या होता है।"

शशिमित्र ने वस्तु को भी समझा और उसकी स्थिति को भी पहचान लिया। जैसे तेज धाराओं के बीच-बीच में भंवर पैदा होते हैं और फिर मिट जाते हैं, उसी तरह राजनीति में भी भंवर पैदा होते रहते हैं। कुशल नाविक अपनी नाव को पा लगाकर ही दम लेता है, यह शशिमित्र जानता था। तिस्स का सम्राट के साथ आना एक भवर का पैदा होना था और राधगुप्त एक कुशल नाविक थे, यह तो सारा देश क्या सारा ससार जानता था, भले ही तिस्स को भ्रम हो।

९

इतिहास-प्रसिद्ध घटना है—मगध सम्राट बिंबसार के सुपुत्र प्रसिद्ध सम्राट अजातशत्रु ने ऐसे पाप कमाए थे जिन पापों के भार से मगध की भूमि निश्चय ही सातल में चली जाती, किन्तु जनक जैसे पुण्यवान राजाओं के चरणों के चिह्न अपने हृदय पर धारण करने के कारण यह बच गई।

अजातशत्रु का पहला पाप था अपने पिता का कसाई की तरह वध करना। बिना अन्न-जल के कारागार में बन्द करके भी जब अजातशत्रु का मन नहीं भरा तो उसने वृद्ध बिंबसार के पैरों के तलवों को उस्तरे से पूरी तरह छिलवा डाला और फिर दहकते अंगारों पर उस अभागे पिता के खून निकलते हुए तलवों को रखवाकर पूरी तरह पका डाला। इस तरह अजातशत्रु ने एक पाप कमाया।

उसने इस पाप से भी भायनक पाप कमाया लिच्छवि-गणतन्त्र का नाश करके।

ये दोनों पाप राजगृह की पुण्यभूमि पर खड़े होकर ही उसने किए। तब से राजगृह एक डरावना स्थान बन गया। वह उजड़ता चला गया और पाटलिपुत्र का विस्तार होता गया। वहां की इमारतें सूनी हो गईं और खंडहर बन गईं। राजभवन की दीवारों पर जंगली घास उग आई तथा सुन्दर बाग शेरों और गीदड़ों का निवास बन गया। जो बौद्ध-विहार वहां कभी धर्म के उपदेशों से गूंजते रहते थे वे भी चमगादड़ों और उल्लुओं के बसेरा बन गए। वहां की सुहावनी पहाड़ियां, जिनपर नागरिकों की भीड़ चढ़ती-उतरती रहती थी, दुर्गम बन गईं—झाड़-झंखाड़ों ने उन्हें ग्रस लिया।

एक लहर आई जिसने राजगृह को संसारविख्यात बना दिया, और दूसरी लहर आई जिसने उसे खंडहरों और डरावनी झाड़ियों से ढंक दिया—अब तीसरी लहर कब और किधर से आएगी यह कौन जाने।

आचार्य तिस्स ने निर्जन राजगृह को ही पसन्द किया और अपने लिए उसी स्थान को चुना जहां पर बुद्धदेव का मूलगन्ध कुटीर सैकड़ों साल पूर्व था।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जहां पर भी बुद्धदेव के लिए कुटी बनाई जाती थी उसका नाम मूलगन्ध कुटीर ही रखा जाता था।

तिस्स जब से राजगृह में जाकर बैठ गए वहां आने-जानेवालों का तांता-सा बंध गया। सड़क की मरम्मत करा दी गई और जंगल साफ कराके जहां तिस्स की

कुटिया बनी थी वहां रौनक पैदा की गई।

चीवरधारी बौद्ध भी जुटने लगे तथा प्रवचन और उपदेश का भी शुभ हो गया। अशोक और महादेवी तिष्यरक्षिता का आना-जाना तो लगा ही र था, जो नागरिकों के लिए एक प्रबल आकर्षण था।

आचार्य तिस्स ने कुछ शिष्यों को भी जमा कर लिया, भक्तों की मण्डली जुटी और सभी आचार-विचार के लोग भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में पहुंचने लगे।

तिस्स ने अपना बाह्य रूप बिलकुल ही धार्मिक रखा। वे स्थविर तो थे उनकी वाणी भी प्रखर थी तथा जीवन-व्यापार भी बहुत ही संयमित था। भा जनता वहीं पर झुकती है जहां उसे निर्मलता का बोध होता है। यह भारत परंपरा रही है कि यहां न तो विजेता देशपूज्य बन सका और न धनाधीश। भ ने सदा सर्वस्वत्यागी संतों की ही पूजा की और उन्हें अपना नेता माना, ह सम्राट स्वीकार किया। यहां तो दरिद्रों को नारायण की संज्ञा दी गई है—द नारायण। किसीने भी सम्राट को, योद्धा को या धनाधीश को नारायण व नारायण का तुच्छ सेवक भी नहीं माना।

इस राष्ट्रीय प्रकृति के कारण आचार्य तिस्स के चरणों पर यदि देखते-दे सारा मगध झुक गया तो इसमें अचरज की कौन-सी बात है।

महामंत्री राधगुप्त ने भी एक दिन राजगृह जाकर आचार्य तिस्स से साक्षात्कार किया। परम कूटनीतिज्ञ महामंत्री की मर्मभेदिनी दृष्टि ने यह देख लिया तिस्स भले ही शांत और तपस्यानिरत हों, किन्तु जिस वातावरण ने ज़ोर पकड़ शुरू कर दिया है वह उन्हें बिना अपनी ओर घसीटे नहीं मानेगा। महामंत्री स समय राजगृह पहुंचे जब सम्राट वहां उपस्थित थे। तिष्यरक्षिता भी थी और शैव भी। महामंत्री के साथ शशिमित्र भी था। शशिमित्र ने शैवाल को उड़ती नज़रों से देखा, किन्तु तिष्यरक्षिता के बल से बलवान बनी हुई शैवाल ने शशिमि को उठाकर जैसे अपनी कजरारी आंखों में रख लिया। वह मन ही मन बोल 'निश्चय ही यह ब्राह्मणकुमार अद्वितीय है। ऐसा लगता है मानो यौवन औ सौंदर्य का एकच्छत्र स्वामी हो!' शशिमित्र ने मन ही मन हरिस्मरण कि और कहा, 'मेरे मन में यह हलचल क्यों पैदा हो गई? अभी मेरी साधना पू नहीं हुई है।'

कुछ देर ठहरकर महामंत्री विदा हुए। शशिमित्र को कोई आपत्ति नहीं होती यदि उसके आचार्य तब तक वहां रुके रहते जब तक सम्राट रहते। तिस्स ने बहुत ही आदर से रथ तक महामंत्री को पहुंचा दिया और चलते-चलते कहा, "आप जैसे साधु पुरुष के रहते मगध की जनता सदा दिव्य आनद का अनुभव करती रहेगी।"

महामंत्री ने कूटनीतिक मुस्कान के साथ कहा, "जनता किस बात से नाराज होती है और किससे आनंद प्राप्त करती है यह आज तक मैं समझ नहीं सका। मैं तो अपना कर्तव्य निभा रहा हूं।"

महामंत्री अपने आश्रम में पहुंचे किंतु वे अपनी सहज मुस्कान के भीतर जिस गंभीरता को छिपाने का प्रयत्न बार-बार कर रहे थे वह शशिमित्र की दृष्टि से छिपी नहीं रह सकी।

महामंत्री के जाने के बाद सम्राट भी विदा हुए। महामंत्री के जाने के बाद वहां का वातावरण इतना भारी हो गया कि सभीका मन उचट गया। शैवाल का मन तो इतना उचट गया कि वह राजभवन पहुचकर भी अपने को प्रफुल्ल अनुभव नहीं कर सकी।

तिष्यरक्षिता ने धीरे से पूछा, 'शैवाल, तूने शशिमित्र को देखा?" शैवाल ने केवल सिर हिला दिया। वह बोलना ही भूल गई थी यह बात न थी, किंतु उसे भय था कि कहीं कोई ऐसा शब्द न मुह से निकल जाए कि महामानवती तिष्य-रक्षिता का तुनुक मन तिलमिला उठे। बड़े लोगों का मन संभाल के बाहर होता है, इतना ज्ञान तो शैवाल को था ही।

तिष्यरक्षिता ने हाथ पकड़कर शैवाल को अपने निकट बैठाया और स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "क्या मैंने गलत कहा था? वह शशिमित्र पुरुषों में अमूल्य रत्न है। मैंने उसे बहुत दिन पूर्व देखा था जब वह एक किशोर था, मसें भी नहीं भीगी थीं। अब तो जवानी की देहरी पर वह खड़ा है।"

शैवाल ने कहा, "महादेवी का कहना सत्य है। निश्चय ही वह बहुत ही उ···।"

तिष्यरक्षिता ज़रा-सी चौंककर बोली, "'उ' कहकर रुक क्यों गई? डर मत, बोल।"

शैवाल ने धीरे से कहा, "उन्मादक शब्द मेरे मुंह से निकला आ रहा था। मैं कहना चाहती थी कि वह निश्चय हो···

तिष्यरक्षिता ने इस असंपूर्ण वाक्य को पूरा किया, "उन्मादक है ! मैं सहम हूं।"

शैवाल अपनी आदत के अनुसार एकांत की खोज में चली और महादेवी अप कमरें में घुसकर सोचने लगी, 'यह शुभ लक्षण है। जब शशि किसी तरह भी शैवा के पंजे में आ जाए तो राधगुप्त की प्रत्येक हलचल का पता अनायास ही च जाएगा। महाराज यदि यह जान लेंगे कि उनका परम विश्वासी महामंत्री कित गहरा है तो वे भी सावधान हो जाएंगे और इसके बाद ?'

वह मुलायम तकिये पर लुढ़क गई और बोली, 'इतनी दूर तक अभी मुझे नह जाना चाहिए।'

दिन समाप्त हो गया। रात आई।

राजमहल में प्रदीप जगमगा उठे और प्रदीपों के प्रकाश में श्रीसम्पदा मुस्कर उठी।

महामंत्री की कुटिया के एक कोने में प्रदीप जल उठा जिसके प्रकाश में पवि त्रता झलमला उठी।

राजगृह के आचार्य तिस्स की कुटिया की कोठरी में प्रदीप ने प्रकाश फैलाया जिसके प्रकाश में तीन-चार व्यक्तियों की अलग-अलग छाया प्रेत की तरह मिट्टी की दीवार पर मौन थिरकने लगी।

तिस्स अपने आसन पर विराजमान थे और उनके सामने बैठे थे—चंडाचार्य, शीलभद्र, भद्रसेन और पिप्पलाद।

पिप्पलाद दीवार फांदकर जेल से भागा था। उसकी खोज हो रही थी। चंडा- चार्य आदत के अनुसार दोनों मोटी-मोटी बांहें हवा में उछाल-उछालकर वक्तव्य दे रहे थे। शीलभद्र मन ही मन उन्हें भद्दी से भद्दी गालियां दे रहा था तथा चंडा- चार्य की चौड़ी पीठ से अपने को छिपाए हुए नाटा-दुबला पिप्पलाद बैठा था, किंतु रह-रहकर वह कांप उठता था। भद्रसेन अत्यंत श्रद्धापूर्वक चंडाचार्य के वाणी-वैभव का प्रदर्शन देख रहा था। तिस्स चुपचाप अपने आसन पर विराजमान थे। कुटिया के बाहर भयानक सन्नाटा था, जंगल की हवा हाहाकार करती हुई बह रही थी। गीदड़ों के रोने की आवाज़ रह-रहकर आती थी और बीच-बीच में शेर की दहाड़ भी गूंज उठती थी।

मानव और प्रकृति में जो संघर्ष सभ्यता के आदियुग से चल रहा है उसका

यानक रूप राजगृह में दिखलाई पड़ता था। मानव जंगलों को साफ करके नगर र नगर बसाता चला जाता है, बाग-बगीचे लगता जाता है और मौका मिलते ो वह पहाड़ों तक को आनंद-विहार का स्थल बना डालता है। दुर्गमता और यानकता ही पर्वतों की महिमा है, न कि यह कि वे बच्चों का घरौंदा बनें। प्रकृति ानव के इस उत्पात को पसंद नहीं करती। जैसे ही मानव का ध्यान दूसरी ओर लगा सने अपने झाड़-झंखाड़ों को आगे बढ़ा दिया। रंगमहलों के संगमरमरी आंगनों ां, शानदार दीवारों पर पेड़-पौधे उल्लास-नृत्य करते दिखलाई पड़ने लगे। बाग ंगल बन गए और सड़कों को भी तोड़-मरोड़कर नाना जाति की घासों ने समाप्त कर डाला। फिर स्वच्छन्द विचरण करनेवाले पशु-पंछी आए और सर्वत्र विचरण करने लगे।

जिस रात को राजगृह की कुटिया में मंडली जुटी थी वह रात वहां के लिए नई नहीं थी। बिंबसार के समय में भी वह रात आई थी, और बुद्धदेव के समय में भी, किंतु उन दिनों राजगृह का यह हाल न था, वह भारत का एक महानगर था। वहीं से देश का शासन होता था, बुद्धदेव के उपदेश वहीं के वातावरण में गजते थे किंतु···?

चंडाचार्य ने जब गरजना शुरू किया तो तिस्स ने अपने बन्द होंठों पर तर्जनी रखकर उन्हें सावधान करा दिया, "इस तरह चिल्लाकर अपने और हमारे लिए काल को निमंत्रण मत दो।"

चंडाचार्य ने यह कहकर अपना मुंह बंद कर लिया, "यहां अब रहना असंभव है। विधर्मी राजा हमें बर्बाद कर डालेगा। जिस दिन बुद्धदेव का मंदिर गया में अशोक ने नष्ट कराया था हमारे साथी सारे राज्य में खून की नदियां बहाने को तैयार हो गए थे, मैंने उन्हें रोका। जब यह समाचार मिला कि पवित्र महाबोधि वृक्ष काट डाला गया मेरे पूज्य गुरु महास्थविर चंद्रसेन गंगा में डूबकर मर गए। मेरे ज्येष्ठ महापंडित वज्रनाग ने अपने कपड़ों में आग लगाकर शरीर-त्याग दिया···"

भद्रसेन यह सोचकर घबरा गया कि कहीं उसे इस घोर मिथ्या को सत्य प्रमाणित करने के लिए गवाही न देनी पड़े।

पिप्पलाद मन ही मन बोला, 'बहुत हुआ ! यह और झूठ बोलेगा क्या ?'

तिस्स ने धीमे स्वर में कहा, "यह बात ज़रूर है कि यह राज्य विधर्मियों के प्रभाव में है, किंतु हम तलवार उठाएं यह बात बुरी है। भगवान बुद्ध का जन्म ही

विधर्मी कुल में हुआ था—वे जब तक सिद्ध नहीं हुए स्वयं भी तो विधर्मी ही
जब उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति हो गई तब बौद्ध धर्म अस्तित्व में आया और वह
केवल एक ही व्यक्ति के लिए —बुद्धदेव के लिए।"

चंडाचार्य फिर गरजने का प्रयत्न करने लगे, किंतु तिस्स के भय से नरम
में ही बोले, "भगवन्, अब हम रुकना नहीं चाहते। संसार के हमारे सद्धर्मी
देने को प्रस्तुत हैं। हम मगध का सिंहासन उलट डालेंगे।"

इतना बोलकर चंडाचार्य पूरी ऊंचाई में तनकर बैठ गए और गरदन घु
कर शान से चारों ओर देखने लगे। तिस्स पर उनके इस वीर-वचन का कोई
प्रभाव नज़र नहीं आया।

तिस्स ने मुस्कराकर कहा, "आपका उत्साह प्रशंसनीय है, किंतु क्या
संभव है कि बिखरे हुए बौद्ध महापराक्रमी अशोक का एक क्षण-भर भी सामन
सकें ? हमारे गौरवपूर्ण इतिहास को कलंकित करना उचित न होगा।"

चंडाचार्य के सिर पर जैसे किसीने एक घड़ा शीतल पानी डाल दिया
मन ही मन तिस्स को गालियां देने लगे। पराक्रम प्रकट करने के अवसर को वि
ने समाप्त कर डाला। हारे और थके हुए स्वर में चंडाचार्य बोले, "यह जो
ब्राह्मण गंगातट पर रहकर अपनी साधुता का प्रदर्शन करता है वह महा धर्म
है। उसीकी नीति सर्वत्र काम कर रही है।"

तिस्स का चेहरा हठात् गंभीर हो गया। वे बोले, "आचार्य, ज़रा वि
करो कि इस महान साम्राज्य का भार कौन उठाए हुए है। अशोक ? वह तो
सिपाही-मात्र है जिसका काम है तलवार के बल से राज्य का सीमा-विस्तार क
रहना। तलवार से शासन नहीं होता—शासन होता है त्याग और सत्य के
से, जो राधगुप्त में है। वह जनता का अत्यंत विश्वासपात्र और जनसंपदा
ईमानदार रक्षक है। आप उस महात्मा को सही-सही पहचानने की चेष्टा करें

१०

पुरानी और अति प्रसिद्ध कथा है।

देव और दनुजों ने मिलकर सागर-मंथन का अभियान चलाया। जब
मंथन शुद्ध रूप में चलता रहा, एक के बाद दूसरा रत्न प्रकट होता गया

लक्ष्मी, चन्द्रमा, ऐवरात, अमृत आदि। जब मंथन का रूप उग्र हो गया तो वह संघर्ष बन गया। संघर्ष का परिणाम हलाहल के रूप में प्रकट हुआ।

मंथन से रत्न और संघर्ष से विष—यही सिद्ध हुआ। महामन्त्री राधगुप्त एक तपस्वी व्यक्ति थे जिनका चरित्र उज्ज्वल और पुण्यमय था। वे सदा संघर्ष से बचते थे और मंथन का स्वागत करते थे। जहां मंथन अपनी अन्तिम सीमा तक पहुंचा नहीं कि अनुभवी महामन्त्री ने वहीं रोक दिया। संघर्ष की स्थिति कभी भी पैदा न होने पाए यह देखते रहना तो लोकनायकों का प्रधान गुण ही माना गया है और महामन्त्री लोकनायक थे ही।

जब अशोक ने उनके सामने यह प्रस्ताव रखा कि राज्य की ओर से बुद्धगया का मंदिर और वहां का महाविहार बनवा दिया जाए तो राधगुप्त के सामने एक अत्यन्त तीव्र स्थिति पैदा हो गई। उन्होंने अपना कोई मत प्रकट नहीं किया और सम्राट के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि यह प्रश्न जनता के सामने रखकर उसके विचार जानना उपयुक्त होगा।

सम्राट ने महामन्त्री से कहा, "आप ही जनता के रूप में मेरे सामने उपस्थित हैं। मैं तो अपना प्रश्न जनता के ही सामने रख रहा हूं।"

महामंत्री प्रसन्न हुए और अपना निश्चय बतलाने के लिए समय लेकर वे अपने आश्रम में चले आए। उनके भीतर तीव्र गति से हृदय-मंथन शुरू हो गया।

महादेवी तिष्यरक्षिता ने जब यह समाचार सुना तो वह रोष से पैर पटकती हुई अपने महल में टहलने लगी। वह उबल रही थी और अपने को संभाल नहीं पाती थी। सम्राट का आना कभी-कभी होता था। वे कलिंग-विजय करके जब से लौटे थे, एकान्त में रहना पसन्द करते थे। कुमार महेंद्र और राजकुमारी मित्रा उनके निकट जब चाहें जाएं—ऐसा आदेश सम्राट ने दे रखा था। वे दोनों आते-जाते रहते थे। महेंद्र किशोर था और मित्रा भी दस साल की थी—दोनों अशोक के प्राण थे।

तिष्यरक्षिता जब थक गई तो अपने आसन पर बैठकर बोलीं, "सम्राट का यह अपमान! एक भिखारी ब्राह्मण के द्वारा? असह्य, अक्षम्य!" एक मुंहलगी दासी थी मल्लिका। उसने महादेवी को अत्यधिक व्यग्र देखकर कारण पूछा तो कोई उत्तर नहीं मिला। तिष्यरक्षिता ने यही कहा, "मगध साम्राज्य के बुरे दिन आ गए।"

भयाकुल होकर दासी इधर-उधर देखने लगी जैसे किसी ओर से महाप्रलय महल में घुसी आ रही हो। वह कुछ भी नहीं समझ सकी कि दिगंतव्यापी मगध-साम्राज्य के लिए भी संकट आ सकता है।

मल्लिका यह नहीं जानती थी कि संकट स्वयं कहीं भी नहीं जाता। हम अत्यन्त प्रयास करके उसे बुलाते हैं, और जब वह सदेह उपस्थित हो जाता है तब चण्डीपाठ शुरू कर देते हैं कि जग-जननी हमारे दुःख दूर कर दे।

मल्लिका बोली, "महादेवी, यह कैसे संभव हो सकता है कि···।"

तिष्यरक्षिता गरज उठी, "एक बूढ़ा भिखमंगा ब्राह्मण सम्राट का अपमान करने का साहस करे और सकुशल अपनी दरिद्रता से भरी झोंपड़ी में लौट जाए! इतिहास की यह एक अभूतपूर्व दुर्घटना है। मैं ऐसे दुस्साहस को सह नहीं सकती।"

मल्लिका का दिमाग चाक की तरह घूमने लगा। जब तिष्यरक्षिता ने उसे सारा किस्सा सुनाया तो वह बोली, "महादेवी, वे तो महामन्त्री हैं—जनता के प्रतिनिधि। जन-बल सबसे बड़ा बल है।" चिल्लाकर तिष्यरक्षिता उछल पड़ी, "तू दासी है! दो टके में बाजार में बिकेगी! तू क्या जाने राज्य की बात!"

भयाकुल होकर मल्लिका ने तिष्यरक्षिता के पैर पकड़कर कहा, "महादेवी, आपने ही बहुत बात यह बात कही है। मैं सचमुच दो टके की दासी हूं। मेरी मुखरता क्षमा करें।"

तिष्यरक्षिता का रोष तब तक शांत हो चुका था। वह बोली, "मैं यह सहन नहीं कर सकती कि कोई मुझे मूर्ख बतलाने की हिम्मत करे।" मल्लिका क्या उत्तर देती। वह तो अधमरी-सी होकर कांप रही थी। महादेवी के स्वभाव का परिचय उसे बहुत बार मिल चुका था।

तिष्यरक्षिता का रूप था पूर्ण विकसित कमलिनी जैसा, किंतु उसका हृदय था ज्वालामय हलाहल से भी अधिक घातक। सौन्दर्य के पर्दे में छिपाकर विधाता ने जिस कुरूपता को रखा था उससे मल्लिका की अच्छी-खासी जान-पहचान थी।

अपना मृतप्राय साहस बटोरकर मल्लिका बोली, "महादेवी, मैं तो तुच्छ दासी हूं—इससे अधिक मैं अपने सम्बन्ध में सोच भी नहीं सकती। मैं नहीं मेरा दुर्भाग्य बोल उठा था, यह मैं चरणों की सौगंध खाकर कहती हूं।"

एक सधे हुए कूटनीतिज्ञ की तरह मुस्कराकर तिष्यरक्षिता बोली, "मैं क्षमा करती हूं। सीमा पार करना खतरनाक काम है। तूने सीमा पार करने का भारी

पराध किया था, किंतु यह पहला अपराध है। अब जीभ पर काबू रखना, नहीं ो वह काट डाली जाएगी।"

मल्लिका कांप उठी। साधारण-सी बात बोलने के अपराध में हिरण्या और द्रा को यही दंड तिष्यरक्षिता ने दे दिया था। दोनों कच्ची उम्र की छोकरियां ीवन-भर के लिए गूंगी हो गई।

मल्लिका ने बार-बार महादेवी की चरण-वन्दना करके त्राण पाया। तिष्य-क्षिता बोली, "मैं आर्यपुत्र के दर्शनार्थ उनके भवन में जाना चाहती हूं। तू ूचना दे आ। विलंब न कर।"

मल्लिका जैसे हवा पर तैरती हुई चली गई। तिष्यरक्षिता ने अपने श्रृंगार को नष्ट कर डाला, जूड़े को अस्तव्यस्त करके अंगराग को भी धो-पोंछकर साफ कर दिया—अर्धविधवा का रूप बनाकर वह सम्राट के निकट जाने को प्रस्तुत हुई। वह अपने उजड़े श्रृंगार की भाषा में यह प्रकट करना चाहती थी कि उसका हृदय विषादपूर्ण है, वह अत्यंत चिंताकुल और विकल है।

मल्लिका लौट आई और महादेवी पूर्ण महिमा के साथ सम्राट के भवन की ओर चली। सुरभित और फूलों से भरे हुए महल के उद्यान को पार करके महा-देवी ने सम्राट के भवन में प्रवेश किया, जैसे पलकों के भीतर दुःस्वप्न का प्रवेश हो।

अशोक का भवन अत्यंत सादा था। कहीं किसी प्रकार की भी सजावट न थी। संगमरमर का वह छोटा-सा भवन अपने-आपमें स्वच्छ था और किसी तरह के साज-श्रृंगार की उसे आवश्यकता भी नहीं थी।

सम्राट जिस घर में रहते थे वह घर भी आभरणशून्य था। एक विशाल चंदन की चौकी थी जिसपर सिंह का चर्म बिछा हुआ था। मगध सम्राट उसीपर शांत मुद्रा में विराजमान थे। वहां की शांति इतनी गंभीर थी कि हवा भी धीरे ही धीरे प्रवेश करती थी। मूक भाव से प्रहरी इधर से उधर घूमते नज़र आते थे। न तो उनके पैरों की आवाज़ सुनाई पड़ती थी और न कुछ आहट ही मिलती थी, माना कर्मकोलाहल अशोक के भवन तक आकर रुक गया हो। घर में सुवासित प्रदीपों का प्रकाश फैल रहा था।

सम्राट ने उठकर महादेवी का स्वागत किया। सम्राट की वंदना करके महा-देवी ने आसन ग्रहण किया। यह सारा व्यापार मौन भाव से ही सम्पन्न हुआ।

न तो सम्राट एक शब्द बोले और न महादेवी ने ही मुंह खोला।

तिष्यरक्षिता ने बहुत-सी बातों को अपने मन में सम्राट के सामने प्रकट करने के लिए संजोया था, बहुत-से महत्त्वपूर्ण प्रश्न उसने बटोर लिए थे और कुछ मान-अभिमान भी संग्रह कर लिया था, किंतु जैसे वह पौरुष के प्रज्वलित पुंज मगध-सम्राट के निकट पहुंची उसे ऐसा बोध हो गया कि उसने जिन बातों को महत्त्वपूर्ण मान लिया था वे बहुत हीन और तुच्छ हैं। सम्राट के सामने ऐसी हल्की बातें रखी जाएं—यह नहीं हो सकता।

अशोक ने गंभीर स्वर में पूछा, "महादेवी किस उद्देश्य से पधारी हैं?"

तिष्यरक्षिता का नारीत्व जाग उठा जिसे उसने सदा दबाना चाहा था। उसके चिकने और भरे हुए गालों पर हल्की-सी लाली दौड़ गई और ललाट पर पसीने की बूंदें झलक पड़ीं। नवागता दुल्हन की तरह सिर झुकाकर मुस्कराती हुई तिष्यरक्षिता बोली, "आर्यपुत्र के चरणों की वंदना करने आ गई। देवता के निकट जाने का एक ही उद्देश्य हो सकता है—उनका आशीर्वाद प्राप्त करना।"

अशोक के होंठों पर भी हल्की-सी मुस्कान-विभा फैलकर मिट गई जिसे तिष्यरक्षिता ने देख लिया।

अशोक ने कहा, "महादेवी का यह शृंगार तो पहले नहीं देखा गया।"

तिष्यरक्षिता डर गई। उसे कारण बतलाना होगा, किंतु जो कारण वह बतलाती उसपर से उसकी आस्था गायब हो चुकी थी। अत्यन्त धूर्ततापूर्वक तिष्यरक्षिता ने जवाब दिया, "आर्यपुत्र ने जब से एकांत में रहना पसंद किया, दासी का मन भी उचट गया।"

अशोक की आंखों में उसके मन की सरलता झलक उठी। सम्राट भी तो मानव ही होता है और मानवीय दुर्बलताओं से वह पूर्णतः मुक्त तो माना ही नहीं जा सकता। वह पति भी है, पिता भी है, मित्र भी है, अपने परिवार का साधारण व्यक्तियों की तरह एक सहृदय मुखिया भी तो है।

अशोक ने कहा, "नहीं, मैंने कलिंग में जो कुछ किया है उसका बहुत ही हृदय-विदारक प्रभाव मेरे मन पर पड़ा।"

तिष्यरक्षिता बोली, "यह तो राजा का धर्म है, प्रभो!"

अशोक ने कहा, "किंतु राजा भी तो मनुष्य है महादेवी! मैंने लाखों व्यक्तियों को निर्दय होकर कटवाकर जिस राज्य को प्राप्त किया वह कितने दिनों तक मेरे

WORLD

थ रहेगा, यह भी तो सोचना ही पड़ेगा। जरा-रोग, कष्ट-मृत्यु हमारे पीछे-आगे । वे हमपर आक्रमण कर रहे हैं और हम उनसे जूझते हुए जीवन के रथ को रीले रास्ते पर आगे बढ़ाते जा रहे हैं।"

तिष्यरक्षिता ने गंभीर स्वर में कहा, "मगध के महान अधिपति यदि ऐसा ोचेंगे तो प्रजा किसकी शरण में जाएगी ? आर्यपुत्र, आप सम्राट हैं, आप विजय ो वरण करें—रक्तरंजित सुख ही आपका सुख है। शासक का सुख दूसरों के ाए हृदय दहलानेवाला होता है, क्योंकि उस सुख में विजय की ज्वाला भरी होती , तीव्र ज्वाला !"

कुछ देर ठहरकर तिष्यरक्षिता अपने महल में लौट आई। वह पूर्णतः भग्न-नोरथा ही लौटी, क्योंकि वह अपने मन में जो विष छिपाकर गई थी वह उसके ाथ ही लौट आया, उगला न जा सका। यह उसकी दयनीय हार थी जिसे वह मझती थी। जब तिष्यरक्षिता चली गई तो अशोक ने धीरे से कहा, 'महादेवी निश्चय ही किसी गूढ़ उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त पधारी थीं—पर शायद वे कुछ ह न सकीं।'

क्षण-भर चिन्तामग्न रहकर सम्राट फिर सब कुछ भूल गए। उन्हें सूचना दी ई कि महामंत्री का शुभागमन हुआ है। हठात् अशोक का गंभीर चेहरा प्रसन्नता प्रकाश से भर गया। निश्चय ही उस महान पुरुष के हृदय की सुन्दरता उसकी सन्नता बनकर स्पष्ट हो गई।

महामंत्री पधारे। वह घर प्रकाश से जैसे भर गया। सारा मगध साम्राज्य न्हीं दो व्यक्तियों में सीमित था। दोनों का मिलना क्या था, उस छोटे घर में विशाल मगध साम्राज्य का उपस्थित हो जाना था। महामंत्री भी अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे। एक ही आसन पर दोनों बैठ गए और रक्षकों को यह आदेश दे दिया या कि रक्षा-व्यवस्था बहुत ही कड़ी कर दी जाए। क्षण-मात्र में सैकड़ों अस्त्रधारी सैनिकों ने उस भवन को घेर लिया। पूरे का पूरा महल सैनिकों के घेरे के अन्दर ा गया। एक उच्चपदस्थ सेनाधिकारी घोड़े पर चढ़कर चारों ओर रक्षा की यवस्था देखने लगा।

आधी रात तक महामंत्री सम्राट के साथ रहे। इतनी देर तक शायद ही कभी रामर्श हुआ हो।

महामंत्री जब विदा हो गए तो सम्राट ने कहा, "मगध साम्राज्य धन्य है, जो

उसे ऐसा महामंत्री मिला !"

तिष्यरक्षिता अपने महल में पहुंचकर शैवाल से बोली, "अरी, तू नहीं जान वह ब्राह्मण ज़रूर जादू जानता है। उसने आर्यपुत्र को अपना अनुचर बना लि है। अगर मगध साम्राज्य का नाश हुआ तो मैं कहती हूं उसी अभागे राधगुप्त चलते।"

शैवाल क्या जवाब देती ! वह तिष्यरक्षिता का तमतमाया हुआ मुंह देख रह गई।

तिष्यरक्षिता फिर बोली, "तू किसी भी उपाय से शशिमित्र को अपने वश कर ले; तब पता चलेगा कि गंगातट पर बैठकर राधगुप्त कैसा-कैसा षड्य करता रहता है। वह धर्महीन ब्राह्मण है। मैं तो इस जाति का नाम सुनते ही ज उठती हूं।"

शैवाल गंभीर बनकर बोली, "क्या महादेवी बतलाएंगी कि बात क्या है मैं तो आर्यावर्त की रहनेवाली नहीं हूं और न मैं यही जानती हूं कि ब्राह्मण क होता है—यमन में इस तरह की बात नहीं होती।"

तिष्यरक्षिता ने कहा, "तू क्या जाने यमन का हाल ! वहां भी ज़रूर ब्राह्म होते होंगे, किन्तु नाम कुछ और होगा। इस बात को जानकर तू क्या करेगी ? शशिमित्र को किसी भी उपाय से अपना दास बना ले।"

शैवाल शशिमित्र को भूलने के लिए बार-बार प्रयत्न करती थी किंतु वह उस मन के पूरे विस्तार पर छा गया था। स्वामिनी का आदेश मिलते ही वह जैसे म ही मन नाच उठी। उसका मानसिक संघर्ष मिट गया।

११

आचार्य तिस्स ने राजगृह के एकांत में बैठकर जिस घोर साधना में अपने व फंसा लिया, वह कोई दुर्घटना या हठात् सिर पर गिरनेवाली बिजली नहीं थी।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तिस्स अपने समय के एक श्रेष्ठ विद्वान औ साधक थे। उनकी वाणी पवित्र थी और उनके विचार भी तपःपूत थे, किंतु उन हृदय में एक दर्द बराबर उठता था जो उन्हें बेज़ार कर डालता था। इस विश्व प्रपंच के रोग को समझकर गृहत्याग करनेवाले और असहनीय कष्टों को भ

म-

आसानी से सहकर आत्मचिंतन में लीन रहनेवाले महापुरुष तिस्स उस रोग को नहीं समझ सके जिसके कारण उनकी वृत्तियां रह-रहकर उद्विग्न हो जाती थीं। वह रोग उनके भीतर एक अत्यन्त क्षुद्र कांटे की तरह छिपा हुआ था।

आचार्य अपने को जितना शांत रखना चाहते थे उतना ही उनका वह रोग गरज उठता था। जब वे अशोक से सम्मान पाकर पाटलिपुत्र की ओर चले तो उस रोग ने ज़ोर मारा। अशोक का सत्कार प्राप्त करना क्या था, रोग को और बलवान बनाना था।

आखिर वह रोग क्या था ?

वे चाहते थे कि एक बार फिर भारत बौद्ध धर्म के चरणों पर नत हो, एक बार फिर भिक्खुओं के चरण, सम्राट सिंहासन से उतरकर पखारें, एक बार फिर बौद्ध बिहारों के चारों ओर सारा देश एकत्रित होकर मुक्ति की याचना करे और एक बार फिर बौद्ध आचार्यों के हाथों में देश की वास्तविक शक्ति आ जाए।

इससे भी अधिक तिस्स चाहते थे, वे क्या चाहते थे यह वे भी नहीं जानते थे, किंतु चाहते थे बहुत कुछ।

तिस्स ने राजगृह में अपनी कुटिया बनवाई, क्योंकि वह स्थान बुद्धदेव के चरणों के स्पर्श से पवित्र हो चुका था और जनता के हृदय में राजगृह के प्रति जो भावुकतापूर्ण श्रद्धा थी उसका भी लाभ तिस्स उठाना चाहते थे। नया वातावरण बनाने में समय तो लगता, किंतु राजगृह में वह वातावरण बना-बनाया ही उन्हें प्राप्त हुआ।

अनायास ही वहां भीड़ जुटने लगी। जो बौद्धधर्मावलम्बी इधर-उधर बिखर गए थे उन्हें एक केन्द्र प्राप्त हो गया—तिस्स के रूप में।

साधक भक्तों की टोली भी वहां जुटी और चीवर पहनकर सिंहासन का स्वप्न देखनेवाले अवसरवादी बौद्ध भी मंडराने लगे। साथ ही ऐसे व्यक्ति भी वहां पहुंचने लगे जिनका सारा जीवन दूसरों के द्वारा किए जाने वाले अन्यायों और अत्याचारों के दर्द से भरा हुआ था, उनके पास केवल शिकायतें थीं, उनके खज़ाने में केवल विफलताओं का धन जमा था। जितने आचार, विचार और प्रकार के लोग राजधानी में निवास करते थे उनमें से चुने हुए व्यक्ति तिस्स के दरबार में पहुंचने लगे। इस प्रकार आचार्य तिस्स की तपस्या का शुभारंभ राजगृह में हुआ। भीड़ को पसंद करनेवाले साधक और एकांत में रहनेवाले धोबी का अन्त एक ही

प्रकार से होता है—दोनों ही विफलता का फल चखते हैं। आश्चर्य तो यह है कि तिस्स इस गर्हित भीड़ को पसंद करने लगे। वे अनजाने ही खिसकने लगे और खा के किनारे तक पहुंच गए।

एक दिन कुछ व्यग्र भक्तों ने तिस्स को यह संवाद दिया कि महामंत्री ने उ कारागार की मरम्मत करने का आदेश काराध्यक्ष को दिया है जिस कारागार महाराज बिम्बसार ने अपना कष्टमय जीवन समाप्त किया था। वह कारागा राजगृह में ही था जो खंडहर बन गया था। कारागार की संगीन दीवारें ढह ग थीं और भीतर झाड़ियां उग आई थीं जिनमें गीदड़, सांप आदि जघन्य जीव सु से रहते थे।

बात सही निकली, एकदम सत्य।

एक दिन शताधिक मजदूर उस कारागार की सफाई करने में जुट गए झाड़ियां साफ की गईं और दीवारों की मरम्मत भी बहुत ही दृढ़ रीति से की जा लगी। एक छोटा-सा मजबूत लोहे का द्वार भी लाया गया।

जब सावन पूरे जोर पर था और रात-दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी चंडाचार्य तिस्स की कुटिया में अपने दो-चार विश्वासी साथियों के साथ पधारे स्वागत-सत्कार के बाद तिस्स ने पूछा, "किधर आना हुआ ?"

चंडाचार्य ने फुसफुसाकर कहा, "आप नहीं जानते महाराज, अनर्थ होन चाहता है ?"

तिस्स का हृदय उन दिनों किसी अज्ञात भय से सदा प्रकंपित रहता था ही अनर्थ' शब्द सुनते ही उनका मुंह सूखने लगा। वे घबराकर बोले, "मैं तो कु नहीं जानता, कैसा अनर्थ ?"

चंडाचार्य कहने लगे, "एक सूत्र से पता चला है कि राधगुप्त की नीयत खरा हो गई है। वह आपको और अशोक को कारागार में डाल देने की योजना बन रहा है। बिंबसार जिस कारागार में मार डाला गया था उस कारागार की मरम्म हो रही है।"

तिस्स ने अनुभव किया कि वे मूर्छित हो जाएंगे। उन्हे मालूम था कि राध गुप्त अत्यंत कठोर और शक्तिवान महामंत्री है। जन-बल उसके साथ है। सच्च बात यह है कि वही मगध साम्राज्य का प्रभु है। सम्राट तो साम्राज्य का ए प्रतीक-मात्र है।

तिस्स बोले, "राधगुप्त इतना साहस नहीं करेंगे। वे मूर्ख नहीं हैं। सम्राट कैद में डाल दें, यह कैसे सम्भव हो सकता है!"

चंडाचार्य बोले, "महाराज, आप नहीं जानते ब्राह्मणों में कितनी शक्ति होती । राधगुप्त का ही पितामह था विष्णुशर्मा उपगुप्त, जिसने पूरे के पूरे नंदवंश को ूं में डलवा दिया और चन्द्रगुप्त मौर्य उसके भय से थर-थर कांपता था। उप- त उसे 'वृषल' कहा करता था।"

नंदवंश की कहानी सुनकर तिस्स का रहा-सहा साहस भी शून्य में विलीन गया। फिर भी आत्माभिमान की रक्षा करते हुए वे दृढ़ स्वर में बोले, "नंद त्याचारी था, उसके वंश का प्रत्येक व्यक्ति अपने को सम्राट से कम नहीं मानता । प्रियदर्शी अशोक एक महान शासक है। महामंत्री राधगुप्त एक स्वामिभक्त ामंत्री है, वह विद्रोह नहीं करेगा।"

चंडाचार्य झुंझला उठा, "महाराज, आपकी यह सरलता किसी दिन हमारा न्त करा देगी। राजनीति दुधारी तलवार होती है। सावधान रहिए! आप राध- त की दिखावटी साधुता पर मुग्ध हैं, किन्तु मैं जानता हूं कि वह साक्षात् पिशाच मखादेव यक्ष से भी अधिक बलवान! किसी दिन अचानक टूट पड़ेगा तो र्वनाश हो जाएगा।"

पिप्पलाद, जो अब तक किसी तरह अपनी वाणी की प्रखरता को रोके हुए था, डाचार्य को मन ही मन गालियां देता हुआ बोला, "आचार्यजी, आप तो हमें ोलने ही नहीं देते। मैंने ही तो राधगुप्त की गुप्त योजना का पता लगाया है।"

तिस्स यदि वहां पर नहीं होते तो चंडाचार्य पिप्पलाद के सिर पर बिना पेटाघात किए नहीं रहते। एक बार तेज़ी से उनका दाहिना हाथ प्रहार करने के ए पूरी ऊंचाई तक उठा, फिर रुक गया। पिप्पलाद पीछे खिसककर बोला, "यह ा बात है, आचार्यजी!"

चंडाचार्य गरजकर बोले, "तूने बात काट दी!"

तिस्स ने शांत स्वर में कहा, "बात तो ज़रूर बुरी है। जब अपना ज्येष्ठ बोल हा हो तो श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिए। यही संघ का नियम रहा है।"

पिप्पलाद ने कहा, "प्रभो, यहां संघ का अधिवेशन नहीं हो रहा है। हम एक ानेवाली विपदा की चर्चा करके उससे त्राण पाने का उपाय खोज रहे हैं।"

तिस्स बोले, "अच्छा कहो, तुम क्या कहना चाहते हो? मैं सुनूंगा।" रोष-

भरी दृष्टि से चंडाचार्य की चौड़ी पीठ को देखता हुआ पिप्पलाद बोला, "प्रभ
आचार्य का कथन सत्य है। राधगुप्त सांप की तरह निःशब्द आगे बढ़ता जा र
है। एक दिन वह हमारे सामने फन काढ़कर खड़ा हो जाएगा। हमारे सद्धर्म
वह छिपा हुआ बैरी है।"

चंडाचार्य ने कहा, "अरे नीच, यही तो मैं कह रहा था। तूने कौन-सा रहस्य
द्घाटन किया। अभागा कहीं का, तुच्छ कीड़ा ! चुप लगाकर सुन।"

आचार्य तिस्स खिन्न स्वर में बोले, "चंडाचार्यजी, आपने यह कैसी भाषा
उच्चारण किया ? क्या यह संघ के द्वारा मान्य है ?"

चंडाचार्य नम्र स्वर में बोले, "आचार्य क्षमा करें। यह पतित व्यक्ति है। ह
हम बौद्धधर्मावलम्बी मानते ही नहीं।"

तिस्स ने कहा, "कारण बतलाइए।"

चंडाचार्य बोले, "इसने चोरी में सज़ा पाई है।"

पिप्पलाद ने कहा, "यह बात सही है, किन्तु मैंने चोरी तो पुण्यकार्य के लि
की थी। आचार्य भूखों मर रहे थे। जो भिक्खु गुप्त रूप से इनके निवासस्थान
रहते थे वे उपवास किया करते थे। दो-चार तो भाग भी गए। नगर-रक्षक के भ
से भिक्षा मांगने वे जा नहीं सकते थे। मैंने दो बार चोरी करके धन प्राप्त कि
और तीसरी बार जब इसी प्रयास में गया तो पकड़ा गया।"

तिस्स ने चंडाचार्य से पूछा, "यह बात सही है ?"

चंडाचार्य ने मौन रहकर अपनी सहमति जताई तो तिस्स ने गम्भीर स्व
अपना मन्तव्य दिया, "उद्देश्य उच्च था, अतः पिप्पलाद प्रशंसा का पात्र है।
दंड का अधिकारी कदापि नहीं माना जा सकता।"

पिप्पलाद ने औंधे मुंह लेटकर तिस्स के चरणों की धूलि ले ली। तदन
आचार्य चंड के चरणों का भी उसने स्पर्श किया।

तिस्स कहने लगे, "अब मूल विषय पर हम विचार करें। माना कि महाम
ने हमें कुचलने का निश्चय कर ही लिया, तो बचने का भी तो उपाय नहीं
जब सम्राट की शक्ति भी उन्हें रोक नहीं सकती तो हम क्या कर सकते हैं ?
सत्य है कि महामंत्री बहुत ही क्रूर है। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण को के
दो सौ छत्तीस साल बीते हैं। इतने ही दिनों में हमारा श्रेष्ठ धर्म भारत से विद
गया। यह ज़रूर शोक की बात है। ऐसे झगड़ों में पड़ने से हम धर्म की सेवा

करेंगे ?"

आचार्य तिस्स की इन बातों को सुनते ही चण्डाचार्य का पारा फिर उठ गया। अपने को प्रयास करके उन्होंने रोका और कहा, "प्रभो, जब हमारी जड़ ही काट डाली जाएगी तो फिर क्या होगा ?"

तिस्स ने कहा, "जो धर्म मानवता का विकासक होता है उसकी जड़ें काटी नहीं जा सकतीं। मैं महामंत्री की शक्ति से टकराना नहीं चाहता, किंतु यह भी सत्य है कि मुझे धर्म के पुनरुत्थान के लिए सब कुछ सहना चाहिए और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए।"

आचार्य चण्ड हताश होकर कहने लगे, "तब तो व्यर्थ ही मैं आपको सावधान करने आया।"

तिस्स मन ही मन कुछ सहम गए और बोले, "नहीं, यह भी तो धर्म की ही सेवा आपने की। आपको सदा सजग रहना है और रास्ते की कठिनाइयों को मिटाने का प्रयास करते रहना है।"

चण्डाचार्य पुलकित हुए, क्योंकि उनके नेतृत्व का संहार नहीं हुआ, जिसका उन्हें खतरा था। वे अपनी प्रमुखता को प्यार करते थे, न कि धर्म-रक्षा को। नेतृत्व प्राप्त करके चण्डाचार्य सब कुछ प्राप्त कर चुके थे। तिस्स ने चण्डाचार्य को अच्छी तरह समझ लिया था, अतः उन्होंने उनकी प्रमुखता पर आंच आने नहीं दी। चण्डाचार्य आनंद-विभोर हो उठे। अब उन्हें ही देखना था कि किधर से कैसी कठिनाइयां आती हैं—बस।

तिस्स कहने लगे, "सब कुछ समाप्त हो गया है। बुद्धदेव का केवल पावन यश-मात्र यहां शेष बचा है। हम उसका नाम बेच-बेचकर कब तक धर्म को जीवित रख सकेंगे ? एक दिन बिकते-बिकते नाम का प्रभाव भी समाप्त हो जाएगा तो क्या होगा ?"

दो-तीन दुर्गंधपूर्ण जंभाइयां लेकर चण्डाचार्य इधर-उधर देखने लगे, क्योंकि तिस्स की बातें उनकी समझ में नहीं आईं। वे उथल-पुथल मचाने को ही धर्म-सेवा मानते थे। शांत और रचनात्मक बातों में उनकी आस्था नहीं थी—यह तो अपना-अपना स्वभाव है, संस्कार है। आचार्य को अनमना-सा देखकर तिस्स को बड़ी निराशा हुई। वे दुःख-भरे स्वर में बोले, "क्या तलवार के ज़ोर से तथागत ने अपना धर्म फैलाया था ? नहीं, धर्म चाहे संसार से मिट जाए, किंतु मैं तलवार का सहारा

लेना कभी भी पसंद नहीं करूंगा।"

चण्डाचार्य को तिस्स का यह मत बहुत ही कटु लगा। वे कहने लगे, "अ नहीं समझते आचार्य महोदय, यहां चीवर पहनना अपराध है। राधगुप्त के शिकां कुत्ते हमारे पीछे लगे फिरते हैं। कारागार की मरम्मत क्यों हो रही है? एक एक दिन हम देखेंगे कि चाणक्य की तरह राधगुप्त भी अशोक को और साथ आपको भी उस नरक में सदा के लिए डाल देगा।"

तिस्स का दिल फिर दहल उठा। महामंत्री के संबंध में उनकी धारणा उत्सा वर्धक नहीं थी। वे उनसे डरते थे, क्योंकि महामंत्री का निशाना अचूक और घात होता था। क्षमा, दया जैसी कोई चीज़ उनके निकट फटक ही नहीं सकती थी।

यह प्रसिद्ध था कि महामंत्री कंटीले वृक्ष के अंकुर को ही नष्ट कर डाल चाहते हैं। अंकुर वृक्ष बने और बहुतों को कष्ट पहुंचा ले तब उसका मूलोच्छे किया जाए यह उन्हें पसंद न था।

तिस्स को यह पता नहीं चला था कि उनका यहां आना और उनके चा ओर भिक्षुओं का जमा होते जाना महामंत्री की दृष्टि में अनुचित है या नहीं। सर्व शांति थी, कहीं से भी यह पता नहीं चलता था कि आचार्य तिस्स की हलचलों शासक किस दृष्टि से देखते हैं।

तिस्स को सब कुछ करने की जो पूरी छूट दे दी गई थी वही आशंका की ब थी। एक बार महामंत्री भी आए थे। उनके दुर्बल शरीर और ततोधिक कटु गंभीर चेहरे से यह पता नहीं चलता था कि वे क्या सोच रहे हैं।

चण्डाचार्य ने जो भयानक चित्र वहां उपस्थित किया वह तिस्स के लिए दहलानेवाला था, किंतु अपनी प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर तिस्स अपनी चेष्टा के द्वारा भीतर के भय को प्रकट होने देना नहीं चाहते थे।

जब चण्डाचार्य अपने दल के साथ विदा हुए तो तिस्स ने अपना ध्यान स्वाध्य की ओर लगाना चाहा। वे ध्यान में डूबना चाहते थे, किंतु उनकी आंखों के सा राधगुप्त का रूखा-सूखा चेहरा झलक उठता था और वे कांप उठते थे। तिस्स यह मान लिया कि वे एक अंधे कुएं में कूद पड़े हैं, पता नहीं नीचे क्या है, फिर जीवन-भर की दृढ़ साधना ने उन्हें धीरज दिया—जीवन अनित्य है।

2325

पाटलिपुत्र के निवासी उस दिन की प्रतीक्षा आनन्दपूर्वक कर रहे थे जिस दिन महान सम्राट अशोक का सोलहवीं राज्याभिषेक-वर्षगांठ समारोह मनाया जाने वाला था।

यह उत्सव प्रत्येक वर्ष मनाया जाता था और तीन सप्ताह तक जनता उत्सव में लिप्त रहती थी। देश-देश के राजदूत और शासक उपहार लेकर पधारते थे। कलाकार, व्यापारी, व्यवसायी सभी लाभ तो उठाते ही थे, साथ ही आनन्द के प्रवाह में सभी निमग्न भी हो जाते थे। यह उत्सव राष्ट्रीय उत्सव के रूप में परिणत हो गया था।

सदा की तरह एक मास पूर्व से ही नगर में नाटक-मण्डलियां, खेल-तमाशे-वाले, नटबाज, नर्तक-नर्तकियां, मूल्यवान वस्तुओं के साथ व्यापारी, कलात्मक चीजें, रत्नों के जौहरी पहुंचने लग गए थे। देश के प्रत्येक भाग से लोग चले आ रहे थे जिनके ठहरने आदि का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता था। रथ और घोड़े तथा दर्शनीय हाथी भी आते थे, जो शुभ लक्षणों से युक्त होते थे। यह उत्सव साधारण मेले-तमाशे जैसा नहीं होता था। नगर और महलों की सजावट भी देश-देश के कलाविशारद करते थे। विद्वानों और श्रेष्ठ पुरुषों को भी निमन्त्रण भेजकर बुलाया जाता था, जो राज्य की ओर से सम्मानित होते थे।

मगध के विश्वविख्यात कौमुदी-महोत्सव की तरह यह उत्सव भी अद्वितीय माना जाता था।

महामन्त्री ने मन्त्रिपरिषद की बैठक बुलाई और यह निश्चय किया कि पिछले सभी उत्सवों से यह उत्सव शानदार होना चाहिए क्योंकि कलिंग-विजय का आनन्द भी इसी उत्सव के माध्यम से व्यक्त किया जाए। देश-देश के राजदूत और शासक देखेंगे कि मगधवाले अपने महान सम्राट को कितना प्यार करते हैं। शासन करना एक अप्रिय कार्य है किंतु वह पुरुष धन्य है जो शासन करता हुआ भी सर्वप्रिय बना रहे। यह सौभाग्य प्रियदर्शी अशोक को प्राप्त था ही। मन्त्रिपरिषद की स्वीकृति तो एक नियम का पालनमात्र था।

श्रेष्ठिन को आवश्यक आदेश देकर महामन्त्री निश्चिन्त नहीं हुए। यह उत्सव जनता की ओर से मनाया जाता था और जनता के प्रतिनिधि होने के कारण

महामन्त्री पर ही सारा दायित्व था। योग्य और कुशल कार्यपालकों ने अपने-अपने दायित्व का पालन श्रद्धापूर्वक किया और देखते-देखते होनेवाले उत्सव की रूप-रेखा स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगी। यह भी स्पष्ट हो गया कि इस बार का उत्सव अद्वितीय होगा। जनता यही चाहती भी थी, वह प्रसन्न हो गई।

नगर के बाहर से आनेवालों के लिए आवास बनाए गए। बाज़ार और नृत्य, संगीत, नाटक आदि के लिए भी रंगभूमि तैयार की जाने लगी। हज़ारों व्यक्ति अथक परिश्रम करके काम पूरा करने लगे। काम करानेवालों से लेकर काम करने-वालों तक के सामने अपने राज्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न महत्त्व रखता था—कहीं बाहरवाले हंसें नहीं कि मगधवाले उत्सव मनाना भी नहीं जानते या अपने सम्राट के प्रति उनके हृदय में स्नेह नहीं है।

छोटी-सी गलती पर भी पूरी मुस्तैदी से ध्यान दिया जाने लगा और यह ध्यान रखा गया कि एक भी त्रुटि रह न जाए।

महामन्त्री सारी व्यवस्था का संचालन स्वयं करते थे—यह तो सबसे महत्त्व-पूर्ण बात थी। पूर्व के उत्सवों की व्यवस्था एक समिति करती थी, किंतु इस बार महामन्त्री ने स्वयं सारा भार अपने ऊपर ले लिया था।

शशिमित्र ने पूछा, "प्रभो, इस बार स्वयं सब कुछ कर रहे हैं?"

महामन्त्री ने कहा, "यह राष्ट्रीय उत्सव है। हम कैसे इस उत्सव को हल्का होने दें! ज्यों-ज्यों सम्राट हमारे राष्ट्र को अधिक से अधिक गौरवशाली बनाते जाएंगे, उत्सव उसी अनुपात से चमकता जाएगा। शासक के पराक्रम से ही तो किसी राष्ट्र की गौरव-वृद्धि होती है।"

शशिमित्र ने फिर प्रश्न किया, "भगवन्···!"

महामन्त्री ने उसे रोककर कहा, "अतिप्रश्न मत पूछो।"

शशिमित्र ने हाथ जोड़कर कहा, "भूल हो गई। क्षमा करें।"

शशिमित्र की वाणी तो मूक हो गई किंतु उसका मन बोलता ही रहा, 'क्या कारण है कि स्वयं महामन्त्री ने उत्सव का सारा भार स्वीकार किया? क्या कारण है कि उन्होंने प्रश्न करने से यह कहकर रोक दिया कि अतिप्रश्न मत पूछो? यह अतिप्रश्न कैसे हो गया?'

शशिमित्र अपने ही प्रश्नों के जाल में उलझा हुआ गंगातट की ओर चल पड़ा। महामन्त्री रथ पर बैठकर सम्राट की सेवा में चले गए थे।

दिन समाप्त हो गया था और कृष्ण पक्ष की काली रात धरती पर फैलती जा रही थी। कुटिया बिलकुल ही जनशून्य थी—वहां एक कृष्ण गऊ और उसके बच्चे के अतिरिक्त और कोई न था। अनमना-सा शशिमित्र गंगा-तट पर पहुंचा और दो चुल्लू शीतल जल पीकर किनारे-किनारे आगे बढ़ा। शीतल हवा के स्पर्श से उसने प्रसन्नता का अनुभव किया। तट से टकराकर गंगा की लीला-तरंगे जो कल-कल शब्द प्रकट करती थीं उससे वहां की शांति और बढ़ जाती थी। शशिमित्र चाहता था कि अशेष शांति के भीतर तक वह चला जाए जहां से लौटा न जा सके। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया। उसने देखा कि एक काली छाया उसकी ओर बढ़ रही है। वह ध्यान से देखने लगा।

वह छाया मंदगति से बढ़ती चली आ रही है। शशिमित्र ठहर गया और उत्सुक आंखों से देखते-देखते कुछ सोचने भी लगा। अब वह छाया उसके निकट पहुंचकर रुक गई।

उसने ताराओं के प्रकाश में देखा—वह एक सुन्दरी नवयुवती है जिसने काला वस्त्र पहन रखा है।

शशिमित्र ठिठककर खड़ा हो गया तो वह मूर्ति बोली, "आप शशिमित्र हैं, आचार्य-श्री के विद्यार्थी ?"

शशिमित्र ने सूखे होंठों को तर करके कहा, "जी, मैं ही शशिमित्र हूं और आप आर्ये ?"

उस नारी-मूर्ति ने कहा, "आज मेरी तपस्या पूरी हुई जो मैंने आपको अपने सम्मुख पाया। मैं कौन हूं यह फिर बतलाऊंगी।"

शशिमित्र ने धड़कते हुए हृदय को संभालकर फिर प्रश्न किया "परिचय देने में क्या हानि है ?"

उस नारी-मूर्ति ने सरस स्वर में उत्तर दिया, "अंधकार गहरा होता चला जा रहा है, आप ऊपर चलें। आश्रम में कौन है ?"

शशिमित्र ने झिझकते हुए कहा, "कोई नहीं। आचार्य देव सम्राट की सेवा में गए हैं।"

वह बोली, "यह मैं जानती हूं। चलिए।"

वह घाट की ओर मुड़ी और शशिमित्र मन्त्राकर्षित-सा पीछे-पीछे चला। दोनों ऊपर की ओर चढ़ने लगे। उस स्त्री के शरीर में जो अंगराग और सुगंधित द्रव्य

लगे थे उसकी महक से शशिमित्र घिर गया। आज तक उसने इस तरह की मादक सुगंध का सामना नहीं किया था। वह नारी मंथर गति से चढ़ रही थी और दो चार कदम चढ़कर इस तरह रुक जाती थी मानो थककर विश्राम कर रही हो वह कभी-कभी लौटकर शशिमित्र को अपनी घातक दृष्टि से देख भी लेती थी आंखें चार होते ही शशिमित्र सिहर उठता था, उसका ललाट गरम हो जाता थ तथा सांस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगती थी। अपने इस नवीन अनुभव को शशिमि पकड़ नहीं पाता था कि ऐसा क्यों हो रहा है।

जब दोनों ऊपर पहुच गए तो उस परम सुन्दरी ने अपना मुंह खोल दिया वह अत्यन्त मनोरम और नवयौवना थी जिसके बालों में फूल गुंथे हुए थे।

शशिमित्र हक्का-बक्का-सा उसकी ओर अपनी निर्दोष दृष्टि से देखता रहा उस रमणी ने अपने जूड़े से एक फूल निकालकर शशिमित्र को देते हुए कहा, "य हमारी मित्रता का पहला चिह्न है। प्रतीक्षा कीजिए। मैं फिर आपको कहीं कहीं खोज लूंगी।"

इतना बोलकर वह मुड़ी और तेज़ी से उस घनी अमराई में घुसकर गायब ह गई, जैसे उसे अंधकार निगल गया।

शशिमित्र अपने कांपते हुए हाथों में कर्णिकार के फूलों का एक छोटा-स गुच्छा लिए जहां का तहां खड़ा रह गया।

कुछ देर बाद उसे जब होश आया तो वह कुटिया की ओर चल पड़ा। उस अनुभव किया कि उसके दोनों सबल पैर कांप रहे हैं, धरती पर जो कदम पड़ र हैं वे उतनी मज़बूती से नहीं पड़ते।

कुटिया तो सामने ही थी। शशिमित्र वहां पहुंचकर अर्धमूर्छित की तरह बै गया और सोचने लगा, 'यह सब स्वप्न का खेल तो नहीं है। ऐसा उन्मादक दृश्य उसने कभी नहीं देखा था। सदा राधगुप्त की सेवा में रहते हुए शशिमित्र ने य अनुभव ही नहीं किया कि 'नारी-शक्ति' क्या चीज़ होती है। अचिंत्य ब्रह्म व व्याख्या सुनते-सुनते उसकी सारी कोमल वृत्तियां पथरा-सी गई थीं, फिर भी शशि मित्र मानव तो था ही, उसे बिलकुल ही भावना-शून्य नहीं बनाया जा सकता था युग-युग से मानव को भावनाहीन बनाने का प्रयास ज्ञान करता रहा है, किंतु उ बार बार पीछे हटना पड़ा। ऊसर के बहुत नीचे शीतल जल का जो स्रोत प्रवाहि होता रहता है उस तक सूर्य की प्रखर किरणें पहुंचती ही नहीं। इसी तरह मान

के अन्तर् की गहराई भी अथाह है जहां तक ज्ञान-विज्ञान की पहुंच हो ही नहीं सकती। यही कारण है कि मानव, मानव के रूप में रह गया। यदि उसके अन्तर् की गहराई अथाह नहीं होती तो ज्ञानवादियों के प्रयत्नों का फल जरूर प्रकट होता तथा मानव भेड़िया से भी अधिक निर्दय बनकर एक-दूसरे को चबा जाता।

आज तो धरती पर रंगीनियां नज़र आती हैं वह क्यों ? इन सारी रंगीनियों का जन्म मानव के ज्ञान से नहीं उसकी भावनाओं से हुआ है। ज्ञान और तर्क से मानव का उतना ही संपर्क रहता है जितना विद्यार्थी का अध्यापक से रहता है—और यही चाहिए भी।

शशिमित्र आंखें बन्द किए बैठा रहा। उसने अनुभव किया कि वह मनोहर नारी-मूर्ति उसकी समस्त चेतना पर फैलती जा रही है। रात बीतने लगी। दीपक भी जलकर बुझ गया। सर्वत्र अन्धकार छा गया, किंतु शशिमित्र अपने विचारों में तल्लीन बैठा रहा। जब हठात् वह होश में आया तो घबराकर उठ खड़ा हुआ। पता नहीं रात कितनी बीती थी, महामंत्री आए या नहीं। संध्या के बाद से समय के अनुमान का जो क्रम चलता था वह उसके विचारमग्न हो जाने के कारण बीच में ही भंग हो गया था।

ताराओं की स्थिति से समय का अनुमान करके शशिमित्र दूसरी चिंता का शिकार हो गया—महामंत्री नहीं लौटे।

महामंत्री सम्राट की सेवा में पहुंचे। वे अकेले ही गए थे—दूसरा कोई मंत्री उनके साथ न था।

सम्राट को उन्होंने प्रसन्न और शांत पाया। उनकी प्रसन्नता गंभीर थी। भीतर से आनन्द का जो प्रकाश फैलता है उसका कोई बाह्य कारण नहीं होता। उस आनन्द को सात्त्विक आनन्द कहा जाता है। जिस व्यक्ति की दृष्टि अंतर्मुखी हो जाती है वही आत्मा के इस प्रकाश को प्राप्त कर सकता है। सम्राट योगियों की तरह प्रसन्न मुद्रा में बैठे थे जो उनके विशाल साम्राज्य और विश्वव्यापी कीर्ति से प्राप्त होनेवाली प्रसन्नता से भी अधिक मूल्यवान कही जा सकती है।

महामंत्री ने तेज़ निगाहों से भांप लिया कि प्रियदर्शी अशोक अब महान अशोक का पद ग्रहण करने वाले हैं।

सम्राट ने मुस्कराकर पूछा, "महामंत्री जी ने किस उद्देश्य से कष्ट किया ?"

महामंत्री ने विनयपूर्वक उत्तर दिया, "सम्राट के दर्शनों की इच्छा तो सदा

बनी ही रहती है, साथ ही यह आदेश भी प्राप्त करना था कि जो उत्सव होने जा रहा है उसमें कलिंग के पराजित प्रधान को भी हम बुलावें या नहीं।"

सम्राट ने वैसे ही मुस्कराते हुए कहा, "अब उत्सव की क्या आवश्यकता है ? मैं चाहता हूं कि मेरे नाम पर यह सब न किया जाए।"

महामंत्री अचानक चौंक पड़े, वे यह क्या सुन रहे हैं, अनहोनी बात !

क्षण-भर रुककर सम्राट ने कहा, "महामंत्री जी, मैं जानता हूं कि आप मुझसे कारण नहीं पूछेंगे क्योंकि ऐसा नियम नहीं है, किंतु मैं स्वयं कारण बतलाता हू और वह यह है कि अब मैं इस मिथ्या प्रदर्शन और शोर-गुल से अलग रहना चाहता हूं। सम्राट होने के साथ ही मैं मानव भी हूं। मैं चाहता हूं कि जिन्हें मैं प्रजा के नाम से जानता हूं उन्हें एक मानव के रूप में भी जानूं।"

महामंत्री ने कहा, "सम्राट के विचार अभिनंदनीय हैं।"

अशोक बोलने लगे, "इस तरह के नाच-तमाशों से न तो मेरा कोई हित होगा और न उन मानवों का जो हमारी प्रजा हैं। हम सत्य के निकट जाने का प्रयत्न करें और जब तक हम अपने मन को अपने ही भीतर केन्द्रित नहीं करेंगे यह संभव नहीं होगा। यही मेरा कहना है।"

महामंत्री बोले, "महाराज, प्रजा चाहती है कि वह अपने सम्राट का अभिनन्दन करे, उत्सव करे, और इस तरह अपनी भावनाओं को व्यक्त करे।"

सम्राट ने कहा, "आप मेरे सामने मगध साम्राज्य की सारी प्रजा के रूप में उपस्थित हैं। महामंत्री तो पूरी जनता का प्रतीक होता है। मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूं उसका अर्थ यही है कि सारी प्रजा के सामने बोल रहा हूं। आप जो कहेंगे वह सारी प्रजा का मत होगा।"

महामंत्री ने आदर से सिर झुकाकर कहा, "सम्राट के प्रति मैं आदर प्रकट करता हूं। आपके विचार अत्यन्त उच्च हैं।

सम्राट ने फिर कहा, "मैंने यह निश्चय कर लिया है कि प्रजा को ऐसी बातों में फंसाकर उसे सत्य से दूर नहीं ले जाऊंगा। इसमें उसका हित नहीं है।"

१३

इस समाचार से कि सम्राट उत्सव मनाने के पक्ष में नहीं हैं जनता के हृदय में निराशा का संचार नहीं हुआ।

नगर के श्रेष्ठिन के द्वार पर भीड़ लग गई। घबराया हुआ श्रेष्ठिन जब भीड़ का स्वागत करने बाहर निकला तो उसका भय और भी बढ़ गया। एक व्यक्ति भीड़ में से चिल्लाकर बोला, "तुम हमारे साथ हो या उस प्रासाद में रहनेवाले सम्राट के साथ, शीघ्र उत्तर चाहिए।"

उस व्यक्ति के प्रश्न ने भीड़ के रुख को गरम कर दिया। देखते-देखते हज़ारों की संख्या में नागरिक जमा हो गए। उत्तेजनापूर्ण वातावरण का अन्दाज़ लगाना श्रेष्ठिन के लिए साधारण-सी बात थी, क्योंकि वह जनता का ही प्रतिनिधि था—सेवक अपने स्वामी के रुख पर सदा ध्यान रखता ही है।

श्रेष्ठिन ने कहा, "ऐसा प्रश्न मेरे सामने क्यों रखा जाता है ?"

भीड़ में से आवाज़ आई, "हम शास्त्रार्थ करने नहीं आए हैं—यह स्पष्ट शब्दों में कहो कि तुम हमारे साथ हो या सम्राट के साथ ?"

श्रेष्ठिन ने उल्लसित कण्ठ से जवाब दिया, "मैं न आपके साथ हूं और न सम्राट के साथ। मैं तो साम्राज्य के कल्याण के साथ हूं।"

एक वृद्ध व्यक्ति चिल्लाकर बोला, "भाइयो, यह श्रेष्ठिन हमारे ही साथ है। जनता का ही दूसरा नाम साम्राज्य है।"

इस व्याख्या के बाद श्रेष्ठिन की जान में जान आई किन्तु उसका दिमाग चकराता ही रहा कि यह सब क्या हो रहा है। श्रेष्ठिन ने पूछा, "आप लोगों के पधारने का उद्देश्य क्या है, यह मैं जानना चाहता हूं।"

एक व्यक्ति भीड़ से बाहर निकला और बोला, "श्रेष्ठिन, आप जानते हैं कि हमारे सम्राट ने होनेवाले उत्सव के प्रति उदासीनता प्रकट की है। यह हमारी प्रतिष्ठा का सवाल है। सरकारी खज़ाने को हम भरते हैं, उसपर हमारा अधिकार है यह बात हम नहीं कहते, किन्तु यह तो कहेंगे ही कि हमारे ही धन से यह महल खड़ा है।"

एक दूसरा व्यक्ति अपनी जगह से उछला और आगे बढ़कर बोला, "हम सम्राट से एक छदाम नहीं चाहते। उत्सव हम अपने धन के बल पर मनाएंगे

और अवश्य मनाएंगे।"

तीसरा व्यक्ति अपनी जगह से ही गरजकर बोला, "सम्राट हमारे दोषों पर निगाह रखें और दण्ड दें, शेष बातों में हम पूर्ण स्वतंत्र हैं।"

चौथा व्यक्ति उत्तेजित स्वर में बोला, "राज्य की उत्पत्ति ही जनता के पापों से हुई है। हम उत्सव मनाकर कोई पाप नहीं कर रहे हैं जो सम्राट बीच में कूद पड़ेंगे, यह कोई राज्य उलटने का षड़यंत्र तो नहीं है श्रेष्ठिन !"

बेचारा श्रेष्ठिन थरथर कांप रहा था—जनता के दिमाग का क्या ठौर-ठिकाना ! तुच्छ बातों के लिए क्रांति नहीं होती किंतु तुच्छ बातों से क्रांति भड़क सकती है यह परम कूटनीतिज्ञ श्रेष्ठिन जानता था।

श्रेष्ठिन बोला, "आपका आदेश जानना चाहता हूं, मैं क्या सेवा करूं यह बतलाइए।"

भीड़ और भी बढ़ गई। सारा पाटलिपुत्र मानो श्रेष्ठिन के द्वार पर उमड़ पड़ा हो ऐसा दृश्य था। लोग चले ही आ रहे थे। सारा राजपथ भर गया था और सहायक पथ भी भरे हुए थे। भीड़ शांत किंतु क्षुब्ध थी। श्रेष्ठिन की नम्रता ने अपना असर पेश किया। एक व्यक्ति बोला, जो अभी तक अपनी लाल-लाल आंखों से चुपचाप श्रेष्ठिन को घूर रहा था, "हम चाहते हैं कि तुम उत्सव की सारी व्यवस्था अपने हाथों में ले लो। महामंत्री जी को हम कष्ट देना नहीं चाहते। जितना धन लगे हम देंगे।"

ष्ठिन हाथ जोड़कर बोला, "आज्ञा शिरोधार्य है। ऐसा ही होगा। उत्सव बन्द नहीं होगा—आप विश्वास रखें।"

अचानक भीड़ में आनन्द की लहरें दौड़ गईं। एक वृद्ध व्यक्ति, जो किसी विद्यालय के आचार्य जैसे वस्त्र पहने हुए था, भीड़ से बाहर निकलकर आया और श्रेष्ठिन का सिर स्पर्शकर बोला, "तुम्हें सदा यश प्राप्त होता रहे, यही हमारी कामना है।"

श्रेष्ठिन ने श्रद्धापूर्वक भीड़ को प्रणाम करके कहा, "अब आप जाएं। मैं सारी व्यवस्था करता हूं। आप केवल देखें कि कहीं त्रुटि तो नहीं रहती है। हमारा निश्चय है कि उत्सव हमारी प्रतिष्ठा के अनुरूप ही हो। संसार के निमंत्रित व्यक्ति देखें कि मगध की जनता अपने सम्राट के प्रति कितनी श्रद्धा रखती है—आपकी जय हो !"

देखते ही देखते भीड़ गायब हो गई, मानो वह कभी थी ही नहीं। सड़कें पूर्व रूप में गुलज़ार हो गई और हवा में जो आतंक की थरथरी भर गई थी वह भी साफ हो गई। काली-काली डरावनी घटाओं के हट जाने के बाद जिस तरह चांद की आनंददायिनी चंद्रिका धरती पर बरसने लग जाती है उसी तरह जनता के बिखर जाने के बाद शांति बरसने लगी। श्रेष्ठिन जनता का आदमी था, वह एक जादूगर, राजनीतिज्ञ और जनरुचि का पारखी था, फिर भी अप्रत्याशित रूप से उस दिन जिस उत्तेजित भीड़ का उसे सामना करना पड़ा वह एक खतरनाक बात थी।

श्रेष्ठिन अपने बैठकखाने में घुसा और तत्काल नगर-समिति के सदस्यों को बुलवाने के लिए सोचने लगा। उसे भय था कि यदि जनता के मन में ज़रा भी अविश्वास हुआ तो उसकी रक्षा भगवान भी नहीं कर सकते। जनता की घृणा उसकी तलवार से भी घातक होती है। यदि कोई भी प्रतापी व्यक्ति जनता की घृणा का शिकार बन जाए तो उसका प्रताप कोई काम नहीं देगा क्योंकि जनप्रिय होना ही प्रतापार्जित करना है।

जब समिति के सभी सदस्य आ गए तो श्रेष्ठिन ने कहा, "मैंने तो जनता को वचन दे दिया है, आप अपनी स्वीकृति दीजिए।"

समिति ने भी सोल्लास अपनी स्वीकृति दे दी और श्रेष्ठिन को आदेश दिया कि महामंत्री जी को वह समिति के निश्चय से अवगत करा दें, उनके आदेश की आवश्यकता नहीं है, समिति का निर्णय अपने-आपमें पूर्ण है क्योंकि जनमत इसके साथ है।

श्रेष्ठिन जब महामंत्री की कुटिया पर पहुंचा तो उसने स्थविर महामंत्री को अत्यन्त पुलकित मुद्रा में पाया। महामंत्री की प्रसन्नता से ही यह स्पष्ट होता था कि कोई गंभीर प्रश्न उनके सामने है।

सिद्ध राजनीतिज्ञ महामंत्री खिन्नता और चिंता का अवसर आने पर प्रसन्नता का रुख रखते थे जिससे कोई यह न अनुमान लगा ले कि उनके सामने कोई गंभीर प्रश्न उपस्थित है या उन्हें कोई कठोर निर्णय करना है। यह रहस्य शायद कोई जानता हो किंतु श्रेष्ठिन की अनुभवी आंखों ने सब कुछ भांप लिया।

महामंत्री ने सारा समाचार सुनकर कहा, "तुमने उचित ही निर्णय किया। मेरी शुभकामनाएं अपने साथ लिए जाओ और जनता की प्रतिष्ठा बढ़े, ऐसा काम करो।"

श्रेष्ठिन ने महामंत्री के चरण स्पर्श करके कहा, "देवता का वरदान व्य
नहीं जाएगा।"

महामंत्री ने मुस्कराकर कहा, "जहां की जनता मूर्छितावस्था में नहीं रह
वहां फूंक-फूंककर कदम रखना पड़ता है। वहीं अंधाधुंध शासन-चक्र चलाया जा
है जहां की जनता गिरी होती है या मूर्छित होती है। मगध-साम्राज्य का
सौभाग्य भी है और दुर्भाग्य भी कि यहां जनता अपने ऊपर शासन करती है
हमारी एक-एक बात पर जनता प्रसन्न होती है और भड़क उठती है—वह उद
सीन रहकर सब कुछ सहते जाना और देखते रहना पसन्द नहीं करती। ऐसा क
हुआ ऐसा क्यों नहीं हुआ—आदि सवाल जनता पूछती रहती है। जिस दिन ह
ईमानदारी से उसे जवाब नहीं दे सके वह हमारा अस्तित्व समाप्त करके ही व
लेगी। हम तलवार की धार पर चल रहे हैं श्रेष्ठिन !"

श्रेष्ठिन ने कहा, "आर्य का कथन सही है। हमारी जनता पूर्ण सजग
और सावधान भी है।"

मितभाषी महामंत्री उस दिन दिल खोलकर बात कर रहे थे। श्रेष्ठिन क
मन रह-रहकर भय से कांप उठता था। वह जानता था कि यह वृद्ध ब्राह्मण, ज
त्यागी और तपस्वी का जीवन व्यतीत कर रहा है, कितना भयानक है। यह बाह
भीतर एक जैसा नहीं है। यह मूर्तिमान राजनीति है, न तो इसके सूखे शरीर
प्राण है और न दया, ममता आदि गुण। यह एक रूखा-सूखा व्यक्ति है औ
राजनीति का पुतला है—पत्थर का पुतला, जिसे चूर किया जा सकता है किन
गलाकर अपनी पसन्द के सांचे में ढाला नहीं जा सकता, वह जैसा है वैसा ह
रहेगा।

श्रेष्ठिन प्रणाम निवेदन करके जब लौटा तो उसने अपने भीतर आनंद क
अनुभव किया। महामंत्री के सम्मुख रहते समय जिस दबाव का वह अनुभव क
रहा था, अपने मन पर जिस बोझ का अनुभव कर रहा था, उस दबाव से, उ
बोझ से उसे त्राण मिल गया। वह उस आम के घने जंगल से बाहर निकलक
अपने रथ पर बैठा।

जनता को जब यह सूचना मिल गई कि प्रधान मंत्री भी राजी हैं तो उत्सा
की दूनी लहरें फैल गईं।

तिष्यरक्षिता क्रोध में उफनती हुई सम्राट के निकट पहुंची। सम्राट ने शां

स्कान से उसका स्वागत किया। तिष्यरक्षिता का जोश ठंडा पड़ गया। वह अपने पर झुंझलाई।

सम्राट ने स्नेह-भरे स्वर में पूछा, "महादेवी का चेहरा उतरा हुआ क्यों है ? ाज्य में जब शांति है तो फिर कोई कारण नहीं कि हम उदास रहें। हमारा आनंद ा जनता के आनंद में ही है।"

साहस बटोरकर महादेवी बोली, "आपने कुछ सुना है महाराज ?"

अशोक ने शांत स्वर में उत्तर दिया, "किस संबंध में महादेवी पूछ रही हैं ?"

तिष्यरक्षिता बोली, "आपके मना कर देने पर भी उत्सव मनाया जानेवाला । राजाज्ञा का यह उल्लंघन !"

अशोक कहने लगे, "महादेवी, जनता उत्सव मनाती रही है। राज्य जनता की ोर से व्यवस्था करता था। इस बार मैंने अपना मत इसके पक्ष में नहीं दिया। नता ने अपना उत्सव स्वयं मनाना तय कर लिया तो इसमें राजाज्ञा का उल्लंघन- ंसा कोई वैधानिक प्रश्न कहां पैदा होता है ? मैं कौन होता हूं जनता को आनंदो- सव मनाने से रोकनेवाला ? शासन का अर्थ यह नहीं है कि वह जनता के पैरों में ड़ियां बनकर लिपटा रहे। जहां बुराइयां होंगी वहीं शासन का उग्र रूप प्रकट ोगा न कि यत्र-तत्र-सर्वत्र। यह तो शासन-शक्ति का अपव्यय है महादेवी !"

तिष्यरक्षिता का मन क्रोध से विकल हो रहा था। सम्राट ने क्या कहा, उसने समझा ही नहीं। वह अपनी ही धुरी पर घूम रही थी।

तिष्यरक्षिता बोली, "आपके मत का अनादर क्यों किया गया ?"

अशोक ने कहा, "अनादर कैसे हुआ ? मैंने कहा, राज्य की ओर से यह उत्सव नहीं मनाया जाएगा। जनता ने कहा, हम अपनी ओर से मना लेंगे। राज्य की सहायता हमें नहीं चाहिए। महादेवी, ज़रा शांत मन से सोचिए। जनता की शक्ति अजेय है। वही अपने ऊपर शासन करती है। वही अपने लिए विधि-निर्माण करती है, वही अपने को दंड देती है, वही खज़ाना भरती है, वही उसे अपने हितार्थ खर्च करती है—हम तो निमित्त-मात्र हैं। आपको इतना जानना चाहिए।"

तिष्यरक्षिता ने दिमाग पर ज़ोर देकर समझना चाहा, किंतु यह बात उसकी समझ में नहीं आई कि राज्य जनता का है और वही सब-कुछ करती है। उसने सरल भाव से पूछा, "तो हम क्या हैं ?"

अशोक बच्चों की तरह हंस पड़े और कहने लगे, "महादेवी, हम मानव हैं;

आपको कुछ संदेह तो नहीं हैं ?"

तिष्यरक्षिता मन ही मन इस परिहास से झुंझला उठी किंतु मुस्कराकर बैठी, "आप भी मानव हैं आर्य ?"

अशोक ने कहा, "अवश्य। क्या मानव किसी सम्राट से कम प्रतिष्ठित है ? देवता भी तो मानव-पद प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं।"

तिष्यरक्षिता फिर भी नहीं समझ सकी और बोली, "आप सम्राट हैं।"

अशोक ने शांत स्वर में कहा, "यही कारण है कि जनता के द्वारा सर्वोच्च सम्मान प्राप्त होता है और सबसे भयानक दंड भी मुझे ही भुग पड़ेगा। जनता जितना ऊंचा उठाती है उतने ही ऊपर से पटक भी देती है इसीलिए जनता में श्रेष्ठ हूं कि जनता का सबसे अधिक स्नेह और क्रोध मुझ सहना है।"

तिष्यरक्षिता का मन जब थक गया तो वह बोली, "सम्राट का कहना उ है किन्तु जो उत्सव होने वाला है···।"

अशोक बोले, "महामंत्री जी से मैंने परामर्श कर लिया है। नगर-समिति निर्णय अनिंदनीय है। मैं समिति के निर्णय का सम्मान करता हूं।"

महादेवी का पारा फिर ऊपर चढ़ गया। मूर्ख की तरह सोचना और शैतान की तरह सवाल करना तिष्यरक्षिता-जैसी महिलाओं का प्रधान गुण गया है। उसने पूछा, "तो हम क्या हैं आर्य ?"

अशोक अचानक सम्राट की तरह गंभीर हो गए। तिष्यरक्षिता डर इतनी देर तक वे एक सहृदय पति की तरह तिष्यरक्षिता से बातें कर रहे उन्होंने कहा, "हम क्या हैं ? जनता ने हमपर जो दायित्व का भार दिया है उ श्रद्धापूर्वक और सब-कुछ होम कर पालन करना ही हमारा धर्म है—यही हम आप भूल गईं महादेवी, कि जनता ने ही मुझे सिंहासन पर बैठाया और आप भी भूल गईं कि मैंने देवता, गुरु, अग्नि और जनता-जनार्दन के सामने क्या ली थी ! हमारे पास जो कुछ भी है वह जनता की धरोहर है—शक्ति, सम्मान, साम्राज्य, सब-कुछ।"

तिष्यरक्षिता सन्नाटे में आ गई। सम्राट को क्या हो गया है जो वे अब आपको भूलकर इस तरह सोचने लगे हैं ! तिष्यरक्षिता के प्रज्वलित स्वाभि पर एक ज़ोरदार आघात लगा। वह भीतर ही भीतर छटपटाने लगी। स

गम्भीरता और भी बढ़ गई, उनकी विशाल भौंहों में तनाव पैदा हो गया। वे र फेरकर दूसरी ओर देखने लगे। तिष्यरक्षिता ने भांप लिया कि अब सम्राट नचीत करने को इच्छुक नहीं हैं तो वह कसमसाकर आसन से उठी और बोली, ाज्ञा चाहती हूं आर्य ! आप विश्राम करें।"

सम्राट की मौन सम्मति पाकर वह महाभिमानिनी नारी विदा हुई। अशोक मन जब स्वस्थ हो गया तो वे बोले, "महादेवी, तू अपना भ्रम छोड़।

१४

शशिमित्र ने फूलों का जो गुच्छा उस रहस्य से भरी एकान्त रात को किसी ायामूर्ति से स्वीकार किया था वह गुच्छा मुरझा गया, उसके फूलों की पंखरियां ाखर गई। एक-एक दिन करके एक सप्ताह बीत गया और फिर दूसरा मास भी रू हो गया किन्तु शशिमित्र ने उस छायामूर्ति को फिर नहीं देखा। वह नित्य ठीक मय पर गंगातट पर जाता, कुछ दूर तक टहलता चला जाता और अन्धकार में ांखें गड़ाकर यह कल्पना करता कि वह आ रही है, किंतु मनचाही मूर्ति के बदले प्रत्येक बार उसे निराशा की ही घिनौनी छाया से मुलाकात होती रही।

शशिमित्र का मन कुछ इतना अस्त-व्यस्त-सा रहने लगा कि वह पूर्व की तरह तो विचारों में डूब पाता और न पढ़े हुए जटिल ग्रंथों का रहस्यार्थ ही उसे अना- ास उपलब्ध हो पाता। वह बहुत ज़ोर मारकर भी अपने को पुरानी धुरी पर टका नहीं पाता।

एक रात को जब महामंत्री किसी आवश्यक कार्य से सम्राट की सेवा में चले ए थे और शशिमित्र कुटिया के बरामदे में बैठा छटपट कर रहा था कि सामने वही मूर्ति आती हुई नज़र आई। शशिमित्र का हृदय धड़क उठा—भय से नहीं, ल्लास से। वह भी अपनी जगह से उठा और इधर-उधर देखता हुआ आगे बढ़ता ला गया। अब वह मूर्ति के सामने खड़ा था। मूर्ति ने अस्फुट स्वर में कहा—मराई के भीतर चलो। शशिमित्र बिना कुछ सोचे-समझे मूर्ति की छाया की तरह ागे बढ़ गया। अमराई में एक ऐसा स्थान था जिसे मालती और माधवी की ताओं ने कुंज का रूप दे रखा था। वहीं पर एक छोटा-सा बाग भी था जिस बाग फूल नित्य महामंत्री के देवार्चन के लिए जाते थे। शशिमित्र को आश्चर्य हुआ

कि यह मूर्ति इस घनी अमराई के प्रत्येक कोने को कैसे जानती है। जब शशिमि
वहां पहुंच गया तो मूर्ति बैठ गई और उसने अपना चेहरा खोला। शशिमित्र
देखा—एक अत्यन्त सुन्दरी नवयुवती तो वह है ही, किंतु उसकी मदविह्वल आं
तो इतनी घातक हैं कि उन आंखों की ओर आंखें भरकर देखना असंभव है। शि
मित्र हक्का-बक्का-सा खड़ा रहा, तब उस अभिसारिका ने कहा, "बैठो भी। तुम्ह
गुरुजी दो घण्टे बाद आएंगे, डर क्यों रहे हो?"

शशिमित्र बोला, "डरने की कोई बात नहीं है, किंतु···"

वह नवयुवती मुस्कराकर बोली, "पगले, किंतु, परन्तु, यदि आदि शब्द अप
गुरुजी के लिए छोड़ दो। ये शब्द विश्वासघाती राजनीतिज्ञों की रक्षा करनेवा
हैं।"

शशिमित्र अब सचमुच घबरा उठा, 'अरे, यह नारी तो साधारण नहीं है
निश्चय ही इससे सावधान रहना उचित है···'

जब तक शशिमित्र दिमाग के चरखों पर विचारों का बारीक तार निकाल
का प्रयास करता रहा तब तक उस अधीरा ने हाथ पकड़कर उसे अपने निकट बै
लिया और कहा, "उस सूखे हुए साखू के ठूंठ के निकट रहने का यह फल है कि
तुम भी बिल्कुल ही भावनाशून्य पशु बन गए। मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर सकती
परिणाम चाहे जो हो।"

शशिमित्र जब बैठ गया तो उसने अनुभव किया कि चाक की तरह धरती घू
रही है।

पत्तियों से छन-छनकर आनेवाली चांदनी के प्रकाश में शशिमित्र ने देखा कि
वह रमणी उसे इस तरह देख रही है मानो उसे आंखों में ही रख लेगी।

शशिमित्र में इतनी शक्ति भी नहीं थी कि वह खिसककर बैठता।

कुछ देर तक सन्नाटा रहा, फिर उस रमणी ने एक मदभरी अंगड़ाई ली औ
दूसरे ही क्षण शशिमित्र के गले में बांहें डालकर कहा, "यह जीवन बहुत दुर्लभ
मेरे जीवन-साथी! राधगुप्त तुम्हें कुछ भी नहीं देगा। वह बूढ़ा दो-चार साल औ
जीकर जब चला जाएगा तो तुम अपने को पाटलिपुत्र की सड़कों पर आवारा कुत्त
से घिरे हुए पाओगे। तुम-जैसा बाहर और भीतर से पथराया हुआ व्यक्ति न तो
अपने उपयोग का रह जाता है और न दूसरे के उपयोग का। तुम्हें फिर पूछेगा
कौन!"

शशिमित्र के दिमाग के भीतर घटाएं घिरने लगीं और बिजलियां भी कौंधने ीं—वह शून्यवत् बैठा रहा।

एकाएक वह रमणी मुस्कराई और शशिमित्र को अपनी ओर खींच लिया— निर्जीव तकिया की तरह अभागा शशिमित्र आगे खिसक गया।

शशिमित्र ने कहा, "तुम कौन हो ? मैं कुछ भी समझ नहीं सका।"

वह नारी बोली, "आदि युग में नारी नारी थी, पुरुष पुरुष था—आज भी यहां दोनों बैठे हैं। तुम पुरुष हो और मैं तुम्हारी युग-युग की संगिनी नारी। ा इतना परिचय पर्याप्त नहीं है ?"

शशिमित्र बोला, "है क्यों नहीं, किन्तु···"

उस रहस्यमयी ने अपनी नरम हथेली से शशिमित्र का मुंह बन्द कर दिया और हा, "फिर तुमने किन्तु, परन्तु का राग छेड़ा ?"

उस नारी की गरम सांस शशिमित्र के होंठों से टकरा रही थी। उसने शशि- त्र को और भी अपने निकट खींच लिया और अच्छी तरह बाहुपाश में उसे धकर कहा, "मेरे जीवन-संगी, फिर कभी मिलूंगी। प्रतीक्षा करो।"

इसके बाद उसने शशिमित्र को हौले से पीछे हटा दिया और स्वयं मुस्कराती ई उस अमराई में इस तेज़ी से घुसी कि गायब हो गई। कुछ क्षण बाद जब शशि- त्र को अपना बोध हुआ तो वह जहां पर बैठा था वहीं पर लेट गया।

उसके सिर के भीतर गरम तेल मानो खौल रहा था। उसका शरीर इतना वश हो गया था कि वह यदि उठकर चलना चाहता तो दो कदम के बाद चक्कर ाकर गिर जाता।

जीवन के इस प्रथम और झकझोर डालनेवाले ज्वालामय अनुभव ने उस सरल नवयुवक को इस तरह रौंद डाला कि वह कराहने की शक्ति भी गंवा बैठा।

शशिमित्र उठा और अर्धविक्षिप्त की तरह सारी अमराई में उस जादूगरनी को खोजता रहा। 'फिर कभी मिलूंगी', कहकर वह चली गई। हाय, इस सीमाहीन प्रतीक्षा को किस तरह पार किया जाए ! यदि वह समय दे जाती तो दिन गिन- गिनकर आशा को कायम रखना आसान था।

अब शशिमित्र के लिए जैसे संसार में कहीं स्थान नहीं रह गया। वह ज्यों-ज्यों अपने को संभालने का प्रयास करता उसे ऐसा लगता कि वह अपने को और बिखे- रता जा रहा है। वह डगमग पैरों से चलता हुआ कुटिया में लौटा। कुछ देर बाद

महामंत्रीजी का रथ आया।

रात समाप्त हो रही थी। पीला चन्द्रमा थका हुआ-सा पच्छिम छोर का का प्रयास कर रहा था।

शैवाल ने खाट से उठकर प्रदीप को बुझा दिया। वह फिर खाट पर पैर लट कर बैठ गई और बोली, "यह बहुत ही निष्ठुर खेल है। मैं उस भोलेभाले नवयु की हत्या ही कर रही हूं। जिसे सर्वस्व देकर प्यार करना चाहिए उसका सब लूटकर, खून कर देना बहुत ही नृशंस व्यापार है, किन्तु मुझे यही करना है।"

शैवाल के सामने तरह-तरह के विचार उभरते और मिटते गए। अंत में उ कहा, "मैंने सदा यह प्रयास किया कि मेरे भीतर स्नेह, दया, ममता आदि दुर्गु पनपें, किन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि प्यार करना नारी का स्वाभाविक गुण इस गुण को दबाया नहीं जा सकता—शेरनी भी तो अपने मृगराज को प्यार क है।"

शैवाल खाट से उठी और खुली छत पर आकर खड़ी हो गई। अब चन्द्र सोन के उस पार धुंधली बन-रेखा के पीछे जाने को प्रस्तुत था। उषा की प्र विभा चन्द्रमा की मटमैली चांदनी से मिलकर धरती पर स्वर्ग को उतारने का प्र कर रही थी। शैवाल ने अच्छी तरह भोर की हवा में स्नान किया और जब उ मन की थकावट मिट गई तो बोली, 'शशिमित्र एक अच्छा खिलौना है। देखूं, कितना घुला सकती हूं, कितना मसल सकती हूं। पुरुष का यह मिथ्या दम्भ कि नारी-स्नेह की उपेक्षा करके तत्त्वचिंतन में अपने को लीन कर देगा, कितना खो है, यह मैं देखूंगी। मैं जानती हूं कि नारी की एक हल्की मुस्कान एक ओर हजार साल की तपस्या एक ओर—यदि दोनों को तोला जाए तो हमारी मुस्क ही वजनी ठहरेगी।'

शैवाल ने एक बार शीशे के सामने खड़ी होकर अपने दुर्दान्त यौवन अजेय सौंदर्य को देखा। उसे सन्तोष हुआ।

शक्ति अपने-आपको जितना अधिक उग्र रूप में देखती है उतना ही उसे सं होता है।

शैवाल बोली, 'महादेवी का यौवन संध्याकाल के निकट पहुंच रहा है कि वह अभी भी किसी सुपुरुष को पागल बना सकती है। और मैं?'

उसने एक बार फिर अपने रूप को शीशे में देखा और मुस्कराकर कहा,

सरलहृदय विद्यार्थी का खून करने चली हूं जो बेचारा कुछ भी नहीं जानता यह दुनिया क्या है और नारी-महिमा किसे कहते हैं। मैं शिकारी का नहीं बहेलिया का काम कर रही हूं।'

शैवाल छत पर घूमने लगी।

दिन का प्रकाश फैल गया और सर्वत्र एक दबी-सी भनभनाहट भी फैल गई जो भनभनाहट मधुमक्खी के छत्ते से प्रकट होती है।

शैवाल बोली, 'जी चाहता है कि मैं नित्य शशिमित्र के निकट जाऊं, किंतु दुष्टा तिष्यरक्षिता से आदेश लेते नहीं बनता, लज्जा और भय, उफ्!'

दोपहरी का समय भी नित्य की तरह उदासी और थकान के साथ कटा। महल में केवल एक ही घटना हुई और वह यह कि तिस्स वहां पधारे। महादेवी ने अत्यंत उल्लासपूर्वक उनका सत्कार किया। उन्होंने कुछ उपदेश-वाक्य कहे जिसे किसीने भी मन लगाकर सुनना आवश्यक नहीं समझा। आध घंटा ठहरकर आचार्य तिस्स विदा हो गए। यह पहली बार वे महल में पधारे थे—यह एक नई बात थी।

तिस्स के जाने के बाद तिष्यरक्षिता ने शैवाल से कहा, "यह बुड्ढा मुझे कुछ सनकी जैसा दिखलाई पड़ता है। यह मत करो, वह मत करो, जीवन नाशवान है, सदा यह सोचते रहो कि यह शरीर रोग, शोक, दुःख, वृद्धता का घर है—इन बेहूदी बातों को सुनना सम्राट भले ही पसंद करें, किंतु मैं नहीं सुन सकती।"

तिष्यरक्षिता की झुंझलाहट सीमा तक पहुंच गई थी। वह दांत पीसकर कहने लगी, "इस सारे साम्राज्य को एक दरिद्र ब्राह्मण निगलकर गंगा-सोन के संगम पर बैठा हुआ है, इसकी चिंता किसे है! सेनापति भी उसीके आदेश की प्रतीक्षा में तलवार लिए खड़े रहते हैं और प्रजा भी उसीका रुख देखकर आगे बढ़ती या पीछे हटती है। वह इस साम्राज्य का राहु है। तिस्स को मैं उपयोगी और बुद्धिमान व्यक्ति मानती थी। यह भी थोथे दिमाग का एक मरणोन्मुख स्थविर है जिसने सिर मुड़ाकर केवल भीख मांगने की ही सिद्धि पाई।"

शैवाल खड़ी-खड़ी सुनती रही और तिष्यरक्षिता आग उगलती रही—वह एक-एक शब्द अपनी घृणा के विष में डुबाकर मुंह से निकालती और दांत पीसती जाती थी।

इस तरह अन्तःपुर की दोपहरी समाप्त हुई। मल्लिका ने आकर जब यह सूचना दी कि सम्राट पधार रहे हैं तब तिष्यरक्षिता को होश आया—यह सूचना उसे

प्रातःकाल ही मिल गई थी ।

अशोक अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री मित्रा के साथ प्रसन्नवदन पधारे । सच देखने में पौरुष के पुंज जैसे मालूम होते थे । उनके अंदर का तेज बाहर फूटा पड़ था । पुरुष-सौंदर्य के सम्राट मानो आधार थे ।

जैसे ही सम्राट महल में पधारे, सर्वत्र सन्नाटा-सा छा गया । शताधिक दासि एकसाथ ही तस्वीरों की तरह जहां की तहां स्थिर हो गईं । केवल शैवाल अ मल्लिका महादेवी की सेवा में रह गई ।

महेन्द्र अब किशोर हो चुका था । अपने यशस्वी पिता की तरह वह भी द नीय था । शरीर तो सगमरमर की मूर्ति जैसा था, किंतु सुंदर चेहरे पर मानो स्व की विभा चमकती थी और मित्रा ?

मित्रा का बचपन भी अपने विदाई-समारोह में भाग ले रहा था । उस समार का नेतृत्व यौवन कर रहा था । जो हो किंतु मित्रा की आंखें ऐसी शांत थीं जै आंखें किसी साधक की होती हैं । वह गम्भीर और बहुत कम बोलनेवाली किशो थी । किसीने भी उसे मुस्कराते नहीं देखा था और न किसीने उसे कभी किसी ब के लिए उत्सुक देखा था । वह धीर-गम्भीर और स्थिर थी ।

सम्राट ने कहा, "महादेवी के दर्शनार्थ आज ये भी आए हैं । इन्हें पिता आशीर्वाद तो मिलता ही रहता है, माता का प्यार भी मिल जाए तो इनका जीव सहस्रदल कमल की तरह विकसित हो जाए ।"

तिष्यरक्षिता को बड़ा आश्चर्य हुआ कि बोलने में कृपण सम्राट इतना कै बोल गए । तत्काल ही उसे बोध हो गया कि सम्राट कम बोलते हैं, किंतु पिता अपनी स्नेहमयी भावनाओं से संतान को सदा सराबोर करते रहना चाहता है । य मगध-सम्राट नहीं महेन्द्र और मित्रा के पिता पधारे हैं । तिष्यरक्षिता स्नेह से महे और मित्रा के ललाट चूमकर पुलकित हो उठी । उसने बहुत दिनों पर अपने भीत मातृत्व का अनुभव किया जो उसे रुचिकर नहीं लगा । वह अपने को तनाव स्थिति में रखना चाहती थी ।

कोमल भावनाओं का सदा तिष्यरक्षिता ने तिरस्कार ही किया था । उस भीतर का स्त्रीत्व मर चुका था या कुचल चुका था । उस दिन जैसे ही उसके भीत मातृत्व का कोमल कंपन पैदा हुआ वह घबरा उठी और अपने गले से अमूल मोतियों की माला उतारकर मित्रा को पहना दी ।

अशोक ने मुस्कराकर कहा, "महादेवी, इस स्वर्ग की विभूति को रत्नों के बंधन क्यों बांध रही हैं ? इसे उस मार्ग पर चलने का बल दें जिस मार्ग पर चलने से जीवन की सार्थकता प्राप्त होती है।"

तिष्यरक्षिता इस रहस्यवाद को नहीं समझ सकी। सदा राजनीति की बातें सोचते रहने के कारण वह राजनीति से ऊपर उठकर सोचने और समझने की शक्ति गंवा चुकी थी।

कुछ देर ठहरकर प्रसन्नवदन अशोक विदा हुए। महादेवी द्वार तक उन्हें पहुंचाकर जब लौटीं तो मल्लिका ने कहा, "सम्राट की ओर देखने से आंखें झुलसती हैं। ऐसा प्रज्वलित प्रताप मैंने कहीं भी नहीं देखा था।"

तिष्यरक्षिता मुस्कराकर रह गई, कुछ बोली नहीं।

चलते समय अशोक ने कहा था कि आचार्य तिस्स को उन्होंने ही भेजा था। वे चाहते हैं कि प्रत्येक सप्ताह महल में उनका स्वागत हो। उनके उपदेश हों और महल में जो भी रह रहे हैं वे श्रद्धापूर्वक सुनें। तिष्यरक्षिता ने इसे एक मानसिक दण्ड माना। वह झुंझलाकर रह गई। तिस्स को वह राजनीति का एक हथकंडा बनाना चाहती थी, उपदेशक नहीं। वह चाहती थी कि तिस्स के प्रभाव का वह उपयोग करे तथा फिर से यहां बौद्धों का शासन आरम्भ हो, न कि राधगुप्त का कुचक्र चलता रहे और सारा साम्राज्य उनके इशारे पर नाचे।

१५

न तो राधगुप्त ने और न सम्राट ने ही सोचा था कि धीरे-धीरे शासन परस्पर दो विरोधी केंद्रों में बंटता जा रहा है।

तिस्स का प्रभाव अपना काम कर रहा था तथा राधगुप्त का प्रभाव भी अपनी पूरी ऊंचाई पर था। तिस्स का प्रभाव सम्राट पर था, किंतु राधगुप्त के साथ जनबल था। जनता अपने तपस्वी महामंत्री को अपना सर्वस्व मानती थी। जनता महामंत्री का न केवल आदर ही करती थी बल्कि उनके प्रति उसके हृदय में अशेष श्रद्धा भी थी। जहां शुद्ध श्रद्धा रहती है वहां अनन्त विश्वास तो रहता ही है। अपने निस्पृह आचरणों से राधगुप्त ने किसीको यह सोचने का अवसर ही नहीं दिया था कि इस साम्राज्य के लिए उनके हृदय में तनिक-सा भी मूढ़ मोह है या अपने पद के

प्रति जरा भी आकर्षण है। कर्तव्य की प्रेरणा से राधगुप्त कठोरता भी करते थे किंतु जनता उनके लोहे-जैसे कठोर शासन को फूल-जैसा प्रिय मानती थी, क्योंकि उनकी कठोरता के भीतर जो ईमानदारी और शुभसंकल्प की झांकी जनता को मिलती थी वह उसे ऊबने नहीं देती थी, झल्लाने नहीं देती थी। जिस तरह चिकित्सक की छुरी कसाई की छुरी नहीं कही जा सकती, उसी तरह ईमानदार और त्यागी शासक की कठोरता को जुल्म नहीं कहा जा सकता।

राधगुप्त से जब सम्राट ने कहा कि वे तृतीय संगीति बुलाना चाहते हैं तो वे प्रसन्न हुए किंतु कुछ बोले नहीं। सम्राट अपने महामंत्री की प्रसन्नता से प्रसन्न नहीं हुए क्योंकि वे जानते थे कि एक सिद्ध कूटनीतिज्ञ अपना सर्वस्व गंवाकर भी मन की बातों को प्रकट नहीं कर सकता। वह अपने अशेष क्षोभ को भी मीठी मुस्कान में छिपाकर प्रकट करने की कला का माहिर होता है।

महामंत्री चले गए और उन्होंने सभा की बैठक बुलाने की सूचना सभ्यों की सेवा में भिजवाने का आदेश जारीकर दिया। सम्राट ने भांप लिया कि महामंत्री पूरी सभा के सामने यह प्रश्न रखना चाहते हैं। निश्चय ही महामंत्री के इस निश्चय से सम्राट कांप उठे। पता नहीं सभा का क्या निर्णय हो और सभा का जो निर्णय होगा वह तो मानना ही पड़ेगा, चाहे वह अशोक को राज्य से बाहर निकाल देने का या फांसी दे देने का ही फैसला करे। सभा से अधिक शक्ति ईश्वर में ही है और किसीमें नहीं।

सम्राट ने डरते-डरते महामंत्री से पूछा, "आपने सभा की बैठक क्यों बुलाई? वैसा कोई प्रयोजन तो हमारे सामने नहीं है।"

महामंत्री ने कहा, "मैं यह देखना चाहता हूं कि सभा का मेरे प्रति विश्वास है या नहीं, दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है।"

अशोक घबराकर बोले, "आप यह क्या कह रहे हैं महामंत्री? आपके प्रति विश्वास? यह तो आपने भयानक निश्चय किया।"

राधगुप्त शांत स्वर में कहने लगे, "महाराज, किसी भी महामंत्री के लिए उचित है कि वह सभा के सम्पर्क में बराबर रहे। लोकमत बदलता रहता है। आज जनता कुछ चाहती है, कल कुछ सोचेगी। जब तक जन-प्रतिनिधियों के सम्पर्क में मैं नहीं रहूंगा, जन-भावना का पता कैसे चलेगा। साथ ही मुझे इस पद पर रहते बहुत वर्ष गुजर गए। एक बार यह भी जानना चाहूंगा कि जनता का मेरे प्रति पूर्ववत्

विश्वास है या नहीं। जनता से मेरा सीधा सम्बन्ध तो रहा नहीं। यह बहुत संभव कि मैं जन-मत से दूर पड़ गया होऊं।"

अशोक का हृदय फिर भी शांत नहीं हुआ। महामंत्री सभा से क्या निर्णय प्राप्त करना चाहते हैं, यह तो बतलाया ही नहीं जा सकता है।

शताधिक व्यक्ति सभा-भवन को अलंकृत करने में लग गए तथा प्रतिनिधियों के आवास आदि की व्यवस्था में ही अनगिनत व्यक्ति व्यस्त हो गए। राज्य के सच्चे शासक पधारनेवाले थे फिर उनके सम्मान और सुख की तो पूरी व्यवस्था होनी ही चाहिए। स्वयं सम्राट अपनी आंखों से एक-एक व्यवस्था को देखने लगे— मंत्रिमंडल के साथ महामत्री तो रात-दिन व्यस्त थे ही। नगर का भी शृंगार किया गया क्योंकि जनता के प्रतिनिधि आ रहे थे— अपने प्रतिनिधियोंका स्वागत जनता क्यों न करे ?

वातावरण भी अत्यन्त गम्भीर हो गया था, सभी एक-दूसरे से पूछते थे कि असमय में सभा क्यों बुलाई जा रही है ? साम्राज्य पर बाहर या भीतर से ऐसा कौन-सा संकट आनेवाला है जिसके लिए सभा का आदेश प्राप्त करना आवश्यक हो गया ?

समय बीतता गया और जनता की चिन्ता भी बढ़ती गई। तिष्यरक्षिता ने जब यह संवाद सुना तो वह बारूद की तरह भड़क उठी और बोली, "यह उस बूढ़े की चालबाजी है। सरलहृदय सम्राट ने जो सांप पाल रखा है वह अब डसने के लिए फन उठा रहा है।"

सम्राट ने कहा, "महादेवी, शंका तो अपराधी के हृदय में रहती है, भय पापी का खून सुखाता रहता है, चिन्ता तो झूठों को मारती है। हम तो निश्चिंत हैं। राधगुप्त साम्राज्य का हृदय है, प्राण और आत्मा है। आप उस महातपस्वी को सही-सही पहचानने की कृपा करें महादेवी !"

महादेवी के मन को सम्राट के शब्दों से तनिक भी तोष नहीं मिला। वह बोली, "आर्य, यदि सभा यह आदेश दे दे कि आप सिंहासन का त्याग कर दें तो ?"

अशोक बच्चों की तरह खिलखिलाकर हंस पड़े और दृढ़ स्वर में बोले, "तो मैं मान लूंगा कि सिंहासन को कलंकित करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। सभा कभी भी अन्यायपूर्ण निर्णय कर ही नहीं सकती, वह जो कुछ करेगी वह सर्वमान्य होगा—मेरे लिए भी और प्रजा के लिए भी।"

इतना बोलकर सम्राट अपनी गहरी दृष्टि से महादेवी के चेहरे पर उठनेवा भावों को पढ़ने लगे। महादेवी सिहर उठी सम्राट को इस तरह देखते देखकर।

महादेवी का मन सुस्त हो गया। वह कहने लगी, "आर्य ने जो कुछ कहा व तो ठीक ही है, किंतु मैं सोचती हूं कि आप सर्वशक्तिमान सम्राट हैं। आपकी शक्ति पर किसीकी शक्ति का निर्णायक प्रभाव पड़े यह कैसे हो सकता है! शक्ति अवि भाज्य बनी रहे, यही मैं चाहती हूं।"

अशोक ने उत्तर दिया, "यह बहुत ही सुन्दर शंका महादेवी ने प्रकट की। भी एक साधारण मनुष्य जैसा ही हूं जैसे लाखों व्यक्ति इस महानगर या दूसरे जगह देखे जाते हैं। जनता ने मुझे असीम अधिकार दे रखा है जिसे लोग मेरे प्रता के रूप में जानते हैं। मैं स्वयं प्रकाश तो नहीं हूं—जनता स्वयं प्रकाश है। उसीक तेज मैं धारण करता हूं जैसे चन्द्रमा सूर्य का तेज धारण करके चमकता है। जब जनता अपना तेज समेट लेगी तो मेरी स्थिति तो एक साधारण व्यक्ति जैसी ह रह जाएगी। यदि सूर्य अपना तेज समेट ले तो क्या महादेवी, चांद के चमकने की कल्पना कर सकती हैं? और यह सभा? यह सभा जनता के विश्वासपात्रों की है। जिन्होंने अपने गुणों से जनता का ठोस विश्वास प्राप्त किया है, वे ही हमारी इस सभा के सभ्य हैं। अतः सभा का निर्णय पूरे साम्राज्य का निर्णय है यानी सारी प्रजा का निर्णय है। आप इस सत्य को सदा स्मरण रखें कि शासक प्रजा का एक सेवक है और प्रजा के ही आदेश से प्रजा के हितार्थ प्रजा पर शासन करता है।"

तिष्यरक्षिता सुनती तो अवश्य रही किन्तु वह विषय की गहराई तक नहीं जा सकी। वह कुछ इतने हीनता-मूलक निम्नस्तर की व्यवहारप्रिय थी कि उसका मन विश्लेषण और विवेचन की ओर कभी नहीं जाता था—वह सदा ऊपर-ऊपर की बातें सोचा और समझा करती थी।

महादेवी को चुप देखकर अशोक का मन कुछ खिन्न हो गया। वे चाहते थे कि विशाल मगध सम्राज्य की महादेवी होने के कारण तिष्यरक्षिता को खुले दिमाग से सोचना और निर्णय करना चाहिए, न कि साधारण स्त्रियों की तरह छिछलेपन को अपनाना चाहिए। पद-गौरव के अनुकूल ही मानसिक गठन यदि नहीं हुआ तो फिर वह अपने पद पर अपनी उपयोगिता सिद्ध नहीं कर सकेगा। चिंतन ही किसी-का श्रेष्ठता और हीनता प्रदान करता है।

अशोक अचानक उठ खड़े हुए और चले गए। वे इतनी तेजी से उठकर चल

1327

कि अंगरक्षकों को भी सूचना नहीं दी जा सकी कि सम्राट आ रहे हैं। महादेवी दौड़कर स्त्री-प्रहरियों को इसकी सूचना दी और उन्होंने तुरही बजाकर इस सूचना को पूरे महल-भर में फैला दिया।

तिष्यरक्षिता जब अपने कमरे में लौटी तो सम्राट के इस अप्रत्याशित व्यवहार से घबरा उठी, "वे कभी भी अचानक आसन का त्याग नहीं करते थे।"

तिष्यरक्षिता का मन तत्काल शांत हो गया क्योंकि वह एक उद्धत स्वभाव की रमणी थी। उद्धत स्वभाव का व्यक्ति बहुत ही लापरवाह होता है—वह कभी भी यह नहीं सोचता कि क्या होगा।

तिष्यरक्षिता क्रोध से उबलती हुई अपने आसन पर बैठकर बोली, "मैं किसी की परवाह नहीं करती, सम्राट हो या ईश्वर। मैंने तो कुछ कहा भी नहीं कि उनका मन खिन्न हो गया—मेरे सामने वे सम्राट नहीं हैं, एक साधारण पुरुष-मात्र हैं।"

एक गिलास शीतल तथा सुगंधित जल पी लेने के बाद जब महादेवी का मन कुछ नरम पड़ा तो शैवाल को स्मरण किया।

शैवाल अपनी कोठरी में पड़ी छटपटा रही थी। उसकी आंखों के सामने शशिमित्र की सुहावनी मूर्ति नाच रही थी। शैवाल कभी-कभी अपने सिर के बालों को दोनों मुट्ठियों से पकड़कर ज़ोर से खींच लेती थी और कहती थी, 'मुझे क्या हो गया है ? आज तक किसी भी पुरुष को मैंने पुरुष नहीं समझा—मैं इस जाति से घृणा करती थी। मेरा दर्प इतना उग्र था कि कोई भी पुरुष हो, मुझे ऐसा लगता था कि वह मेरी दृष्टि में एक मेमना-मात्र है जिसकी गरदन मैं हंसी-हंसी में ही मरोड़ दे सकती हूं, किंतु शशिमित्र ?···"

मल्लिका ने घर में प्रवेश करते ही कहा, "महादेवी स्मरण कर रही हैं।"

शैवाल ने मल्लिका की बातों को सुना ही नहीं। वह सोचने लगी, 'शशिमित्र पुरुष नहीं पुरुष-सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। मैं उसकी दासी···।'

मल्लिका बोली, "शकुंतले, यदि मैं दुर्वासा होती तो ज़रूर शाप दे देती। तू जिसका चिंतन कर रही है, वह तुझे ठुकरा देगा।"

मल्लिका की अन्तिम बात शैवाल के कानों में वज्र की तरह घुसी। वह बिजली की तरह तकिया के नीचे से चमकता हुआ छुरा निकालकर मल्लिका की ओर झपट पड़ी।

मल्लिका दरवाज़े पर हो थी। छुरे की चमक देखते ही वह हरिणी की तरह

उछलकर भागी। दो-चार कदम आगे बढ़कर शैवाल रुक गई और बोली, "अ
शाप देनेवाली, तेरा कलेजा इसी छुरे से चीरकर मैं अपने मन की आग बुझाऊंगी

मल्लिका हांफती हुई महादेवी के निकट पहुंची। जब शैवाल के इस भयान
उत्पात का समाचार महादेवी ने सुना तो वह मन ही मन प्रसन्न हुई। वह नृशंस
और उग्रता को पसन्द करती थी। कुछ देर बाद शैवाल भी आई। मल्लिका
देखते ही उसकी उग्रता उबलने लगी, किंतु उसने उसे रोका। महादेवी ने पूछ
"क्यों री, तू मल्लिका की हत्या करना चाहती थी ?"

शैवाल ने कहा, "हां।"

इस शोख उत्तर को सुनकर क्षण-भर के लिए महादेवी भी स्तम्भित हो गई
शासिका के स्वर में उसने फिर पूछा, "तू होश में है या नहीं ? तू किसके साम
खड़ी है, जानती है ?"

शैवाल ने कहा, "होश में हूं और जानती हूं कि अपनी मौत के सामने खड़
हूं, किंतु मेरे शरीर में यमन का खून है। इस अभागी दासी ने मुझे शाप क्य
दिया ?"

महादेवी यह अत्यन्त उद्धत उत्तर सुनकर घबरा गई। जब सारा किस्स
शैवाल ने कह सुनाया तो महादेवी का मन शांत हो गया। वह बोली, 'तू इस
परिहास मत कर, यह विदेशी छोकरी नहीं जानती कि हास्य-परिहास किसको कह
हैं। इसका स्वभाव भी रूक्ष है।"

फिर उन्होंने शैवाल से कहा, "यदि फिर तूने इस तरह उत्पात किया तो ते
दोनों हाथ कटवा लूंगी और पाटलिपुत्र की गलियों में भीख मांगने के लिए छुड़व
दूंगी।"

शैवाल ज़रा भी नहीं डरी, वह और अधिक उग्र होकर बोली, "आज ही मेरे
हाथ कटवा लीजिए, किंतु इस जैसी चुहिया जब भी मुझे छेड़ेगी तो मैं उसे जीवित
नहीं लौटने दूंगी।"

महादेवी ने कहा, "मैंने मना कर दिया है, कोई तुझे कष्ट नहीं देगा। तू अपने
मन को शांत रख।"

शैवाल चुपचाप खड़ी रही, किंतु उसकी दोनों आंखें अंगारे की तरह जल रही
थीं।

मन ही मन तिष्यरक्षिता शैवाल की भूरि-भूरि प्रशंसा करती जाती थी किंतु

पर से भौंहों पर हल्का-सा बल डाले उसे कड़ी नज़रों से देख रही थी मानो कच्चा चबा जाना चाहती हो। जब मल्लिका चली गई तो शैवाल को लक्ष्य करके तिष्यरक्षिता ने कहा, "उसने क्या शाप दिया था ?"

शैवाल बोली, "तू जिसका चिंतन करती है वह तुझे ठुकरा देगा।"

तिष्यरक्षिता ने फिर प्रश्न किया, "तू किसका चिंतन करती है, वह कौन ?"

धूर्ततापूर्वक शैवाल ने जवाब दिया, "मैं अपनी महामहिमामय देवी का चिंतन करती रहती हूं जिनकी दया से जीवन को सुखी पा रही हूं।"

शैवाल के इस उत्तर से तिष्यरक्षिता मगन हो गई और मुस्कराकर बोली, "तू मुझे इतना आदर देती है यह मैं नहीं जानती थी।"

एक चोर जिस तरह दूसरे चोर की नाक पर चूना लगाकर उसके घर को अच्छी तरह साफ कर देता है, उसी तरह एक छतीसी दूसरी को भी आसानी से मूंड डालती है। शैवाल ने भी यही किया और महादेवी की अधिक निकटता प्राप्त करके शताधिक दासियों से ऊपर उठ गई।

सम्राट अपने एकांत भवन में लौटे और मित्रा महेन्द्र के साथ राजगृह चली गई जहां बहुत-से विख्यात बौद्ध विद्वान पधारे थे।

सम्राट खुले बरामदे में बैठकर सोचने लगे, 'साम्राज्य का शासक कौन है ? शासन-विधि के अनुसार सम्राट के हाथों में राजदंड है, किन्तु वह मंत्रिपरिषद् के मत की सीमा को लांघ नहीं सकता। मंत्रिपरिषद् भी तो सभा का आदेश पालन करती है और सभा पूर्णतः जनता की सभा है। जनता कहती है कि हम तो प्रजा हैं, राजा जो चाहे सो करे। यह एक विचित्र चक्र है। पूर्व के आचार्यों ने इस तरह की शासन-विधि बनाई है कि वह एक पूर्ण रेखा बन गई है, जिसके बाहर कोई जा ही नहीं सकता।'

दौवारिक ने संवाद दिया, 'महामंत्री जी पधार रहे हैं।"

सम्राट ने मौन सम्मति दी। सफेद बालोंवाले, दुर्बल शरीर और इस्पात की तरह कठोर राधगुप्त ने प्रवेश किया।

सम्राट ने प्रश्न किया, "महामंत्री ने किस प्रयोजन से कष्ट उठाया ?"

महामंत्री बोले, "सम्राट के दर्शनार्थ आया, साथ ही यह संवाद भी देना था कि कल दोपहर को सभा बैठेगी। सभी सम्माननीय सदस्य आ गए हैं, जिन्हें पूर्ण

सम्मान के साथ ठहराया गया है। मैंने स्वयं उनके आवासों में जाकर उनसे मुल कात कर ली है, सभी प्रसन्न हैं।"

सोचकर सम्राट ने कहा, "मैं भी चलूंगा। वे साम्राज्य के संरक्षक और भाग विधाता हैं।"

१६

आज के पटना में एक स्थान है कुम्हरार।

यह कुम्हरार वर्तमान नगर से दूरी पर है तथा गंगा और सोन से तो मील की दूरी पर है। कुम्हरार की खुदाई हुई और हो भी रही है। महान सम्राट अशो का सभा-भवन खोदकर निकाल लिया गया, जो चमकदार खम्भों पर था। खम्भे भी टूटी हालत में निकले हैं। यही सभा-भवन था जिसमें जनता के प्रतिनिधि बैठ थे और वहां जो निर्णय होता था उसे सम्राट भी सिर झुकाकर मानते थे। जो सभा भवन धरती के नीचे से निकाला गया है वह बहुत ही शानदार है। देखने से ऐस जान पड़ता है कि विशाल मगध-साम्राज्य के शासन का चक्र यहीं बैठकर जनता के समर्थ प्रतिनिधि दो सवा दो हजार साल पूर्व चलाते रहे होंगे तो इसकी शान निराल रही होगी।

अब हम कथा-प्रवाह की ओर ध्यान देंगे।

भोर से ही पाटलिपुत्र की जनता राजपथ पर दो कतारों में अपने श्रेष्ठ पुरुषों के दर्शनार्थ खड़ी हो गई। राजपथ क्या, सारी नगरी की सजावट दर्शनीय थी। ठीक समय पर तेजस्वी महामंत्री का रथ ध्वजा फहराता हुआ सभा-भवन के मुख्य-द्वार पर पहुंचा। मूल्यवान वस्त्र पहने और अस्त्र लिए सेना के उच्चपदाधिकारी उस दिन द्वार-रक्षक का गौरवपूर्ण कार्य कर रहे थे। महामंत्री रथ से उतरकर मुख्य द्वार पर खड़े हो गए। फिर प्रतिनिधियों के रथ आने लगे। प्रत्येक प्रतिनिधि का स्वागत करके उसे योग्य आसन तक महामंत्री स्वयं पहुंचा देते थे।

मंत्रिपरिषद के सदस्य तो दौड़-दौड़कर प्रतिनिधियों को रथ से उतारने में ही गौरव का अनुभव करते थे।

कुछ ही देर में सभा-भवन जगमगा उठा। साम्राज्य के शक्तिशाली और श्रेष्ठ पुरुषों के एकसाथ दर्शन करके जनता भी तृप्त हो गई। सभी प्रतिनिधि अपने-

पने विषय में अद्वितीय थे—कोई महापंडित था तो कोई परम कूटनीतिज्ञ, कोई
ना-कौशल का आचार्य था तो कोई धुरंधर अर्थशास्त्री, कोई अन्तर्राष्ट्रीय विषयों
। चूड़ांत ज्ञाता था तो कोई संधि-विग्रह आदि विषयों का निष्णात। इस तरह
ाम्राज्य के सभी दर्शनीय महापुरुषों ने जब आसन ग्रहण कर लिया तो सम्राट
शोक सैनिक वेश में आए। किसीने भी उठकर उनका अभिनंदन नहीं किया,
योंकि परम्परा के अनुसार सभा से श्रेष्ठ केवल ईश्वर ही है जिसकी वह उठकर
ना कर सकती है। सम्राट का वहां कोई सम्मानपूर्ण स्थान तो था नहीं—वे तो
भा की वंदना करने आए थे और सभा-अध्यक्ष के आदेश से बैठ गए थे। उन्हें न
ावाद-विवाद में भाग लेने का अधिकार था और न मतदान करने का।

सभा के नेता के रूप में महर्षि राधगुप्त वंदनीय माने जाते थे।

सभा के अध्यक्ष आचार्य अग्निप्रभ ने सभा को धन्यवाद दिया और महामंत्री
ो आदेश दिया कि वे अपना निवेदन प्रस्तुत करें।

अचानक वातावरण अत्यन्त शांत हो गया जैसे कोई बहुत बड़ी घटना होने-
ाली हो। सम्राट का वीरहृदय भी धड़कने लगा—महामंत्री के मुंह से कैसे शब्द
निकलते हैं। सभा में सम्राट की स्थिति गौण थी, वहां के नेता तो महामंत्री ही थे
ो बोलने के लिए उठ रहे थे। गौर शरीर, तेजोमय रूप, श्वेत धोती और उत्तरीय,
ांखों में शांत किन्तु कठोर शासक की आंखों जैसी चमक, घुटनों तक लटकनेवाली
विशाल बांहें—सम्राट अपने महामंत्री को देखकर मन ही मन बोले, "मैं कितना
ौभाग्यशाली हूं, जो मुझे ऐसा ऋषिकल्प महामंत्री प्राप्त हुआ है। ओ मगध-
ाम्राज्य, तू धन्य है!'

महामंत्री का तेज और नम्र स्वर गूंज उठा, "महामहिम के आदेश से मैं अपना
निवेदन सभा की सेवा में नम्रतापूर्वक उपस्थित कर रहा हूं। मैं तब से महामंत्री-पद
र हूं जब से हमारे न्यायी और पराक्रमी सम्राट राजदंड की गौरव-वृद्धि कर रहे
हैं। अब मैं शांत हो गया हूं और चाहता हूं कि पवित्र हिमालय की छाया में बैठकर
आत्मोद्धार की चिंता करूं···।"

सारे नियमों को भूलकर एकाएक सम्राट उठकर बोल उठे, "यह वज्रपात है।
सभा इस साम्राज्य की रक्षा करे।"

एक प्रकार से हल्का-सा शोर मच गया। अध्यक्ष ने आदेश दिया, "सम्राट
अपनी सीमा से आगे बढ़ रहे हैं।"

बैठते हुए सम्राट ने कहा, "मुझे क्षमा करें, मैं भूल कर बैठा।" सभा फिर श हो गई। महामंत्री ने यह कहकर अपना संक्षिप्त वक्तव्य समाप्त किया, "मैं स के अधीन हूं, किन्तु सभा मेरी वृद्धावस्था को अपने ध्यान में रखकर आदेश दे ऐसी मेरी सांजलि प्रार्थना है।"

महामंत्री के बाद वाद-विवाद का सूत्रपात हुआ। अत्यन्त संतुलित भाषा सदस्य अपने-अपने विचार रखने लगे। अन्त में अध्यक्ष ने निर्णय दिया कि इ बड़े प्रश्न का निबटारा शलाका द्वारा होना चाहिए। महामंत्री अवकाश ग्र करना चाहते हैं और सभा एकमत नहीं है।

जब मत-विभाजन आरम्भ हुआ तो सम्राट ने अध्यक्ष के आदेश से कहा यदि सभा ने महामंत्रीजी की प्रार्थना को ही उचित माना तो मुझे भी अपनी प्रा सभा के सम्मुख उपस्थित करने का आदेश मिलना चाहिए।

अध्यक्ष ने कहा, "फलाफल को देखकर मैं अपना निर्णय दूंगा। सम्राट प्रार्थना अभी सभा के सामने अनिर्णीत अवस्था में रहेगी।" सम्राट ने सोच कि कि यदि महामंत्री पदत्याग करेंगे तो वे भी 'त्रिरत्न' की शरण में चले जाएंगे। साम्राज्य को अपना खून बहाकर उन्होंने स्थिर किया है वह उन्हींके सामने बि यह वे देख नहीं सकते।

महामंत्री प्रसन्न मुद्रा में बैठे रहे और बारी-बारी से सदस्य अपनी-अ शलाका मत-पेटिका में डालते चले गए। सभा-सचिव ने परिणाम की घोषणा "महामंत्री कार्यमुक्त नहीं किए जा सकते।" उल्लास की एक ज़ोरदार लहर गई। अध्यक्ष ने कहा, "सम्राट ने सभा की सेवा में कुछ निवेदन करने की अ चाही थी। सभा अपना आदेश दे।"

आदेश प्राप्त होने पर सम्राट ने खड़े होकर निवेदन किया, "मैं सभा के अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हूं। महामान्य महामंत्रीजी साम्राज्य के एक स रक्षक हैं। मगध साम्राज्य आज इन्हें पुनः प्राप्त करके अपने को भाग्यशाली मा है।"

हर्ष-ध्वनि के बीच महामंत्री ने सभा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की निवेदन किया कि सम्राट की यह आकांक्षा है कि यहां तृतीय संगीति बुलाई क्योंकि महात्मा बुद्धदेव के दिव्य उपदेशों का संपादन और संकलन संसार के क णार्थ होना आवश्यक है।

फिर वाद-विवाद आरम्भ हो गया। अत्यन्त उच्च स्तर के तर्क समर्थन और ोध में उपस्थित किए गए। जब वाद-विवाद उस दिन समाप्त नहीं हो सका तो रे दिन के लिए सभा स्थगित कर दी गई। प्रश्न यह था कि राज्य धर्म-निरपेक्ष वह किसी विशेष धर्म के लिए आग्रह क्यों प्रकट करे ? मगध साम्राज्य में सभी ह के धर्म-विचारों को समान रूप से अवसर मिला है किंतु राज्य स्वयं किसी भी ं के प्रति आग्रही नहीं है।

जब सभा स्थगित हो गई और सदस्य अपने-अपने आवास में चले गए तो ाट चिंता और आनन्द के समान हिलोरों में पड़कर अपने भवन में पहुंचे। उन्होंने र-रक्षकों को आदेश दे दिया कि महामन्त्री के अतिरिक्त और किसीके आने की ना भी नहीं दी जाए। महामन्त्री तो कभी भी किसी समय पधार सकते हैं।

एकांत कमरे में पहुंचकर सम्राट लेट गए। राधगुप्त का मन्त्रित्व रह गया यह परम आनन्द की बात थी, किंतु तृतीय संगीति का प्रश्न जो उलझ गया वह भारी ता की बात पैदा हो गई। सारी रात सम्राट सो न सके और उन्होंने बहुत ही कलता से रात बिताई। जो सेवक या पार्श्वचर थे वे भी भय से कांप रहे थे—होंने कभी भी सम्राट को इतना चिंताकुल नहीं देखा था।

संध्या के बाद महामन्त्री की कुटिया पर सभा के सभी सदस्य जमा हुए। उन्होंने लग-अलग महामन्त्री की वंदना की। वहां किसीने भी सभा के उपस्थित प्रश्न की र्चा नहीं की—सभी तपस्वी, महामन्त्री तथा अपने स्थविर नेता के दर्शनार्थ पधारे । वे आए और महामन्त्री के निकट कुछ देर बैठकर चले गए। शशिमित्र ने मन मन कहा, 'हे भगवान, देखने से तो ऐसा लगता है कि स्वर्ग के देवताओं की ली धरती पर पधारी है। ये वे हैं जिन्होंने मगध साम्राज्य को महानता का गौरव दान किया है। ऐसे दिव्य चरित्र के वंदनीय पुरुषों के ज्ञान और पुण्य के बल से मगध साम्राज्य आज अजेय बना हुआ है।'

जब वे चले गए तो शशिमित्र ने आचार्य से कहा, "प्रभो, जी चाहता है कि न नर-रत्नों के चरणों की धूल बटोरकर उसे नित्य सिर पर रखूं। मैं कल्पना भी हीं कर सकता कि मानव भी इतना श्रेष्ठ हो सकता है।"

मुस्कराते हुए महामन्त्री बोले, "आयुष्मान, यह तो सम्राट का सौभाग्य है जो ऐसे पृथिवी-पुत्रों से घिरे रहकर साम्राज्य की सेवा कर रहे हैं। निश्चय ही इनमें प्रत्येक व्यक्ति अपने शुभ चरित्र और ज्ञान के कारण प्रातःस्मरणीय है।

निश्चय ही इनकी वन्दना करने से पुण्य को बल मिलता है। ये न्यायी और वि
वान हैं तथा जनता की इनपर अशेष श्रद्धा है—ये जनता के प्रतिनिधि हैं।"

शशिमित्र सिर झुकाए श्रद्धापूर्वक अपने आचार्य के एक-एक शब्द को
हृदयंगम करता रहा। उसने यह पता पा लिया कि महामन्त्री के रूप में उसके आ
इतने शक्तिशाली क्यों हैं। आचार्य जन-शक्ति का आदर करते हैं और वे जन
के रूप में जनता की पूजा करते हैं। जन-भावना और जनमत पर सम्यक् दृष्टि
कर वे साम्राज्य पर इस तरह शासन करते हैं जैसे काल जीवन पर शासन क
है। यह बात जब शशिमित्र को मालूम हो गई तो आचार्य के प्रति उसकी
बहुत बढ़ गई। कुछ देर चुप रहकर आचार्य फिर बोलने लगे, "ऐसी परम्परा
है कि जनता के रूप में ही जनार्दन धरती पर निवास करते हैं। मैंने सदा अपने
जनता का एक अनुगत सेवक माना है।"

शशिमित्र ने सहमते हुए पूछा, "भगवन्, जनता पर आपका बहुत ही क
शासन होता है, दया, क्षमा की ओर कभी नहीं जाते।"

आचार्य ने गम्भीर स्वर में कहा, "कुम्हार घड़े को ऊपर से तो अच्छी
ठोंकता है किंतु भीतर से हाथ का सहारा भी दिए रहता है। मैं शासक हूं। उ
से कठोर दण्ड देता हूं किंतु भीतर से सहारा भी देता हूं। यदि ऐसा न करूं
जनता चूर-चूर हो जाएगी, वह मार सह नहीं सकेगी।"

दिन समाप्त हो गया और आचार्य संध्या-वन्दन करने गंगा-तट की ओर च
सभा की बैठकों के कारण उन्हें शायद ही कभी यज्ञादि कर्म करने की छुट्टी मि
हो। कभी-कभी तो वे संध्या भी नहीं कर पाते थे, किंतु उनका मन प्रसन्नता
विभोर रहता था। आचार्य प्रायः कहते थे कि, अपने शुभ कर्मों को ही ईश्वर
अर्चा मानो। वे तो हमारे सामने प्रत्येक क्षण उपस्थित ही रहते हैं। कर्मस
नारायण हैं—हमारे कर्मों का वह अदृश्य द्रष्टा है तब न वह उसका फल
देता है।

शशिमित्र चौंका। हमारे कर्मों का अदृश्य द्रष्टा नारायण है—यह कैसी भ
नक बात है! वह घबरा उठा। वह जो एक अज्ञात सुन्दरी आकर उसके मन
अस्तव्यस्त कर जाती है, उसका द्रष्टा भी नारायण है। नारायण खड़ा-ख
देखता होगा कि मौन समर्थन देकर शशिमित्र उस ज्वालामयी नारी को अपने कु
आलिंगन में बांधने के लिए उत्साहित करता है। नारायण देखता होगा कि इस प

म की एकान्त लताकुंज में शशिमित्र उस यक्षिणी की प्रतीक्षा में घंटों व्यग्रता-
क बैठा रहता है, नारायण देखता होगा कि जब वह सांप की तरह निःशब्द गति
हां प्रवेश करती है तो शशिमित्र पुलकित हृदय से उसकी ओर बढ जाता है और
उससे लिपट जाती है। यह भी नारायण देखता होगा कि वह नारी बार-बार
शिमित्र से आग्रह करती है कि वह उसे सदा के लिए अपना ले और उसके पतित
न को अपने जीवन के साथ मिला ले।

शशिमित्र अधिक नहीं सोच सका। वह इतना उत्तेजित हो गया कि उसकी
री मानसिक स्थिरता गायब हो गई। वह बार-बार सोचने लगा कि माता गंगा
शीतल गोद में सदा के लिए सो जाना ही उसके लिए परम श्रेय है। गुरुदेव से
ने छल किया और अपने-आपको भी धोखा दिया।

मन पश्चात्ताप से जब धू-धू कर जलने लगता है तब उस आग को शान्त करने
क्षमता ज्ञान में भी नहीं रह जाती।

दूसरे दिन जब महामंत्री सभा की बैठक में भाग लेने की तैयारी करने लगे तो
शिमित्र ने नम्र स्वर में निवेदन किया, "यदि आदेश हो तो मैं भी सेवा में चलूं?"

महामंत्री ने मुस्कराकर कहा, "मैं भी यही सोच रहा था। चलो, देख लो,
से हमारे माननीय सदस्य विचार-विमर्श करते हैं।"

ठीक समय पर महामंत्री सभा-भवन के द्वार पर पहुंचे और अपने आसन पर
ठ गए। दर्शकों में शशिमित्र भी जा बैठा। उस दिन राजपरिवार की महिलाएं
भी आनेवाली थीं। उनके लिए बैठने का अलग प्रबन्ध था। कुछ देर में सभा-भवन
भर गया। नगर के संभ्रांत नागरिक, व्यापारी आदि भी बड़ी सख्या में आए तथा
आचार्य तिस्स भी कुछ भिक्षुओं के साथ पधारे। उसी दिन यह निर्णय होना था कि
संगीति का क्या भविष्य होगा।

शशिमित्र ने देखा, सम्राट आए और अध्यक्ष की मूक वन्दना करके चुपचाप
एक ओर बैठ गए। वे अपना समस्त तेज समेटे इस तरह बैठे थे मानो भस्म में छिपा
अंगारा हो। एक हल्की-सी हलचल मची और महादेवी तिष्यरक्षिता अपने स्थान
पर आकर बैठ गई। उसकी बाज जैसी लम्बी और खूंखार आंखें इधर-उधर घूमीं
और फिर महामंत्री से टकराकर वहीं स्थिर हो गईं। शशिमित्र ने देखा, उन्नत
शरीर वाली महादेवी यौवन की दुपहरी में पहुंच चुकी हैं किन्तु उनके भरे हुए गौर
शरीर को त्यागकर न तो सौंदर्य जाना चाहता है और न यौवन। महादेवी भूखी

शेरनी की तरह महामंत्री को घूर रही थीं।

और भी बहुत-सी महिलाएं पधारीं जिन्होंने उन सारे गहनों को उत डाला था जो शब्द करनेवाले थे, क्योंकि वे सभा में बैठी थीं।

एकाएक शशिमित्र ने देखा, पागल बना डालने की क्षमता रखनेवाली वह न युवती भी आई जिसने उसे झकझोर डाला था और उसकी समस्त चेतना को अप ज्वालामयी स्मृतियों से भर दिया था। वह महादेवी के चरणों के निकट बैठ ग दिन के प्रकाश में शशिमित्र ने देखा, वह नवयुवती अभारतीय है, उसके शरीर रंग, उसकी चेष्टाएं सभी अभारतीय हैं। शशिमित्र घबरा उठा और उसके मुंह धीरे से निकल पड़ा, "अरे, यह तो वही है!"

निकट बैठे हुए एक सज्जन ने शशिमित्र के कान में कहा, "कौन है?"

शशिमित्र ने लज्जित होकर उत्तर दिया, "मुझे धोखा हुआ।"

सभा की कार्यवाही आरम्भ होते ही तर्कों का तूफान उठ खड़ा हुआ।

१७

बहुरूपता प्रकृति का प्रधान गुण है। कहीं वह फूल बनकर खिलती है तो व तूफान बनकर गरजती है, कहीं जन्मोत्सव की शहनाई के सुर में अपने को व्य करती है तो कहीं विधवा के आंसू बनकर बूंद-बूंद टपकती है—कहने का तात यह कि प्रकृति का ही दूसरा नाम माया है और इस मायामय संसार में यदि प्रत्ये क्षण को गहराई से देखें तो पता चलेगा कि विचित्रता का अन्त नहीं है।

सभा ने महामंत्री का प्रस्ताव मान लिया। अब तीसरी संगीति राजगृह अशोकाराम में होगी जिसकी व्यवस्था का भार राज्य उठाएगा—यह तो ति रक्षिता और आचार्य तिस्स के लिए आनन्द का संवाद था, किन्तु शशिमित्र ने बा बार निकट से शैवाल को देखकर अपने भीतर जिस मंथन का अनुभव किया वह अपना महत्त्व रखता था क्योंकि शशिमित्र जब आंखें बन्द करके ध्यानस्थ होने प्रयत्न करता तो उसके सामने सुन्दरी शैवाल आकर खड़ी हो जाती, जब वह स्वाध्य के लिए मन को एकाग्र करता तो गंगातट या उस दिन की कुंज की बातें ह तेज़ी से उसके सामने उभरने लगतीं कि वह व्याकुल होकर, उठकर टहलने लगत बहुत बार निकट से देखने के बाद उसका यह रोग और भी बढ़ गया था। अब

ते-बैठते, सोते-जागते शैवाल की उत्तेजना-वर्धक स्मृतियां उसे इस तरह दंशन रती रहतीं कि वह कराह उठता। अपने आचार्य के शांत और सौम्य आश्रम से उसे ुचि-सी होने लगी और वहां की पवित्र निर्जनता उसे श्मशान की निर्जनता जैसी लगने लग गई। दस साल का अभ्यास दो-चार सप्ताह में नष्ट हो गया। शशिमित्र पने भीतर के इस असहनीय परिवर्तन का अनुभव तो करता था किंतु इस स्थिति से टकारा कैसे हो यह नहीं सोच पाता था। धीरे-धीरे उसका मन इतना निर्बल हो या कि वह स्वयं अपने को ही बात-बात में धोखा देने लगा।

एक रात को वह चुपके से उठा और उस कुंज की ओर चल पड़ा जिस कुंज में क ज्योत्स्नास्नात विभावरी को शैवाल वहां आई थी। वह एक ऐसा मनोद्वेगकारी श्य था जिसे शशिमित्र भूल नहीं सकता था।

वह अनमान-सा टहलता हुआ उस कुंज के निकट पहुंचा और उसी स्थान पर ठ गया जहां पन्द्रह दिन पूर्व शैवाल बैठी थी। शशिमित्र कुछ क्षण बैठकर सोचने गा कि, यदि किसी ओर से वह आ जाए।

धीरे-धीरे रात समाप्त होने लगी। आत्मविस्मृत-सा शशिमित्र वहीं बैठा रहा और आंखें बंद किए शैवाल का चिंतन करता रहा।

अंत में वह उठा और अपने उत्तरीय से आंखें पोंछता हुआ कुटिया की ओर चला। उसने देखा कि आचार्य बैठे हरिस्मरण कर रहे हैं। उषा की फीकी विभा गंगा की शांत शोभा को और भी विकसित कर रही है।

शशिमित्र ठिठककर दूर ही खड़ा रह गया--हिम्मत नहीं हुई कि आगे बढ़े, किंतु आचार्य ने कुछ देर के बाद पुकारा, "शशि, वहां क्यों खड़ा है ?"

शशिमित्र सिर से पांव तक कांप उठा। वह भूल गया था कि उसके आचार्य केवल तपस्वी ही नहीं हैं, एक सिद्ध राजनीतिज्ञ भी हैं, जिसकी आंखें गीध की तरह तेज होती हैं।

अब शशिमित्र के लिए छिपने की कोई जगह नहीं बची। वह घबराकर आगे बढ़ आया और बोला, "प्रभो, मैं कुंज में बैठा था। वहां मुझे बहुत ही शांति मिली।"

आचार्य ने पूछा, "तेरे मन में किसी तरह की अशांति है क्या जो तू शांति की खोज में सारी रात कुंज में बैठा रहा ?"

शशिमित्र बेंत की तरह थर-थर कांपने लगा। उसे भ्रम हो गया कि आचार्य

ने सब-कुछ जान तो नहीं लिया। यह अत्यंत सावधान रहनेवाला व्यक्ति शायद
कभी धोखा खाए। पक्का राजनीतिज्ञ अपनी दो आंखों से ही भगवान शेष की बी
हज़ार आंखों से अधिक काम लेता है।

शशिमित्र के उत्तर की बिना प्रतीक्षा किए आचार्य आसन से उठे और गंग
तट की ओर चल पड़े। शशिमित्र आसन आदि सामान लेकर पीछे-पीछे दौड़ा।
तो मितभाषी आचार्य सदा कम बोलते थे, किंतु उस दिन की उनकी चुप्पी शशिमि
के लिए भयावह थी। उसे ऐसा लगता था कि आचार्य उसकी सारी हरकतों
जानकर बहुत ही खिन्न हुए हैं और इसीलिए उन्होंने चुप्पी साध ली है। मानव जि
रंग में स्वयं रहता है दूसरे को भी प्रायः उसीके आधार पर देखता है। शशिमि
अपराधी था अतः उसे ऐसा लगता था कि उसके आचार्य उससे नाराज़ हो गए
किंतु बात ऐसी न थी। आचार्य को किसी घटना की भी खबर नहीं थी यद्यपि शशि
मित्र के स्वभाव में जो फ़र्क पड़ रहा था उसे वे समझ रहे थे।

आंखों की तुला से बढ़कर आज तक कोई दूसरी तुला नहीं बन सकी। म
जिस तुला से तोला जा सके उसे अत्यंत सधा हुआ होना चाहिए। राधगुप्त जै
व्यक्तियों की निगाहों की तुला भ्रांति-रहित परिणाम प्रकट करती है—एक रत्त
के करोड़वें हिस्से का भी फर्क नहीं रह सकता।

शशिमित्र ने अपने मन की शांति गंवाकर बदले में जिस व्यग्रता का रोग लिय
वह उसके सारे जीवन को गलीज़ बना देने के लिए पर्याप्त था।

एक रात को जब आचार्य मंत्रिपरिषद की आवश्यक बैठक में भाग लेने सम्रा
के प्रासाद में चले गए थे, शशिमित्र अनमना-सा घूमता हुआ उस घने आम्रवन
भीतर चला गया। उसने देखा, पतली और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी को पार करती हु
वह आ रही है—वह कौन ?

शशिमित्र चौंक उठा, मन के भीतर आनंद उबलने लगा और वह स्वयं आग
बढ़ गया। कुछ क्षण बाद उसने अपने को अपनी आशा की रानी के आलिंगन
पाया।

शशिमित्र ने कहा, "मैं तुम्हें पहचान गया। महादेवी के साथ कई बार मैंने
देखा था।"

वह बोली, "और मैंने भी तो देखा था, ऐसा जी चाहता था कि सबके सामने
जाकर तुम्हारा हाथ पकड़ लूं। जब हृदय ही दे दिया तो कितने दिनों तक अपने को

भुलैया में रखूं।"

उत्तेजनापूर्ण आनंद के उद्वेग का यह फल होता है कि मन के सारे बंधन तो थिल हो ही जाते हैं, वाणी का संयम भी नष्ट हो जाता है। शशिमित्र ने उल्लत स्वर में कहा, "आह, मैं भी यही चाहता था। शताधिक नवयुवतियों के बीच तुम्हें देखकर मेरा मन कितना अधीर होता था यह कैसे बतलाऊं।"

रात खिसकती चली गई किंतु विरह के दिनों का वर्णन ज़रा भी फीका नहीं ड़ा। वह सुन्दरी, जिसे शैवाल कहना ही उचित होगा, चौंकी और बोली, "महात्री का रथ वह आ रहा है। मैं चली। फिर कभी···"

शशिमित्र ने शैवाल का हाथ पकड़कर नटखट बच्चे की तरह कहा, "नहीं, हीं रहो या कल फिर आने का भरोसा देकर जाओ।"

शैवाल ने शशिमित्र के भरे हुए गाल पर एक हल्का चांटा मारकर कहा, "मुझे हां रखोगे जी ? उस फूस की झोंपड़ी में ? पागल तो नहीं हो गए ? जैसा चलता , चलने दो। जिस दिन यह बूढ़ा सम्राट की सेवा में चला जाएगा उसी दिन फिर ुलाकात होगी।" वह इतना बोलते ही वृक्षों की छाया में जाकर छाया बन गई। शिमित्र अपने आचार्य को मन ही मन कोसता हुआ कुटिया की ओर चला गया, योंकि उसके मत से वे बहुत जल्दी लौट आए थे किंतु समय के हिसाब से दोपहर रात को लौटे थे सात घंटे बाद। शशिमित्र जैसे ही कुटिया के निकट पहुंचा कि आचार्य आए और उन्होंने आते ही सोने की इच्छा प्रकट की, क्योंकि थक गए थे।

शशिमित्र को यह भी रुचिकर नहीं जान पड़ा। सदा का यह नियम था कि आचार्य उससे बातें करते थे और कुछ आदेश भी देते थे, किंतु उस दिन तो वे दो शब्द भी नहीं बोले।

जब अपने मन में, अपनी ही भूलों के कारण, भय का प्रवेश हो जाता है तब पत्ते का हिलना भी चौंका देता है, अपनी छाया भी पागल बना देती है, अपने पदशब्द भी अधमरा बना डालते हैं। शशिमित्र सारी रात बैठकर रोता रहा। उसका वह आनंद क्या हुआ, वह शांति कहां गई, उस निर्भयता और निर्भरता ने उसे कब और कैसे छोड़ दिया।

वह अपने अतीत पर विचार करता और वर्तमान से उसका संबंध स्थापित करता तो उसे ऐसा लगता कि वह एक बार मरकर दूसरी बार धरती पर आया है। न तो वह पुरानी दुनिया रही और न पुराना आकाश ही रहा। अपनी जन्म-

भूमि से वह बहुत दूर पर भी कितना आह्लादपूर्ण जीवन व्यतीत करता था- कभी घर की याद भी नहीं आती थी ।

शशिमित्र का यह पश्चात्ताप उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया, किंतु जब शैवाल मह मंत्री के आम्रवन से लौटकर अपनी कोठरी में घुसी तो उसने खाट पर बैठकर कु क्षण तो विश्राम किया और फिर लेटकर योजना बनाने लगी, 'तिष्यरक्षि चाहती है कि मैं अपने को गंवाकर उसके लिए महामंत्री के गुप्त रहस्यों का प लगाऊं। मैं उस सीधे-सादे सुंदर नवयुवक की आत्मा की हत्या करूं, अपनी आत की हत्या करके। इसके बाद मैं उसे जूठे पत्तल की तरह कुत्ते के आगे डालक निश्चिंत हो जाऊं। मेरे दरिद्र और पतित पिता ने मुझे बाज़ार में यमन से लाक यहां बेच दिया—मैं एक दासी-मात्र हूं, इसीलिए न तो मुझे सम्मान प्राप्त कर का अधिकार है और न स्नेह करने का। पति-पुत्र से वंचित रहकर मुझे जीना है इस गर्हित जीवन का अंत कब होगा यह पता नहीं है, किंतु इसका आरंभ कब हुआ यह तो मैं जानती ही हूं।'

वह खाट पर से उछलकर खुली छत पर आ गई। उसने देखा, अंधेरी रात संसार की रंगीनियों को घेर रखा है। हवा सांय-सांय चल रही है और दूर-दूर कुत्तों के भोंकने की आवाज़ भी आ रही है—उस ओर वधस्थल या श्मशान र होगा।

उसने मुरेड़े के निकट खड़े होकर देखा—अंधकूप की तरह उसे एक डरावन दृश्य-मात्र दिखलाई पड़ा और कुछ नहीं। वह मानो किसी अंधकूप में झांक र हो।

शैवाल फिर लौटकर छत पर टहलने लगी। वह रह-रहकर पसीने से भी जाती थी और उसका सिर चकराने लगता था।

उसने सोचा, 'कुछ भी हो, मैं शशिमित्र को सावधान कर दूंगी और उसे कहूं कि हम इतनी दूर चले जाएं कि वहां तक हमारी स्मृतियां भी हमें खदेड़ न सकें दूर, बहुत दूर, चांद और ताराओं से भी बहुत दूर, आकाश की ऊंचाई के अंति पर्दे पर जाकर हम आराम से बस जाएं और कभी भी नीचे झांककर नहीं देखें।

अर्थहीन कल्पनाओं से उलझती हुई शैवाल सो गई और भोर को जब व उठी तो उसने अपने सामने एक दासी को मौत की तरह देखा जो कह रही थी "महादेवीजी स्मरण कर रही हैं।"

शैवाल के मुंह से अचानक निकल गया, "उन्हें रात को भी नींद नहीं आती क्या ?"

दासी मुस्कराकर चली गई। उसका मुस्कराना शैवाल को बहुत ही मनहूस जान पड़ा।

शैवाल हाथ-मुंह धोकर महारानी की सेवा में पहुंची जो आनन्द में डूब-उतरा-सी रही थीं।

शैवाल को प्यार से अपने निकट बैठाकर महादेवी धीरे-धीरे बोली, "एक शुभ संवाद है। तू आज पता लगाना कि महामंत्री क्या सोच रहा है। कल मंत्रिपरिषद की बैठक में सम्राट ने यह विचार रखा कि संगीति जब समाप्त हो जाएगी तो वे त्रिरत्न की शरण में चले जाएंगे। महामंत्री ने सम्राट के इस विचार का विरोध बहुत ही निर्भयतापूर्वक किया। महामंत्री ने कहा कि बिना जनता का आदेश प्राप्त किए आप यह नहीं कर सकते।

"इसके बाद सम्राट ने कहा कि बुद्धगया का मंदिर और विहार मैं बनवा देना चाहता हूं, मैंने आचार्य तिस्स को वचन दिया है, तो उस दुष्ट महामंत्री ने विरोध कर दिया। वह बोला—राज्य का कोष ऐसे कार्यों के लिए नहीं है। यह धर्मनिरपेक्ष राज्य है और सदा से आर्यावर्त धर्मनिरपेक्ष रहा है। मैं इस पवित्र परंपरा का नाश नहीं होने दूंगा। मैं इसलिए महामंत्री नहीं बनाया गया कि हमारे यहां जितने भी गुण हैं उन्हें मिटा डालूं।

"सम्राट चाहते तो वहीं राधगुप्त का सिर काट लेते, किंतु वे भी उससे भय खाते हैं, फिर भी इस अपमान को सम्राट नहीं सहेंगे।"

इतना बोलकर तिष्यरक्षिता मुस्कराने लगी।

तिष्यरक्षिता का मुस्कराना शैवाल को अच्छा नहीं लगा। दुर्भाग्य को अपना सहायक माननेवाला कितना बड़ा मूर्ख होता है यह शैवाल को विदित था। वह बोली, "यह तो बहुत ही भयानक संवाद है आर्ये !"

महादेवी ने कहा, "भयानक ? यह तूने कैसे समझा ? अरी मूर्खे, राधगुप्त एक बनावटी संत है। वह सम्राट के कोप को क्षण-भर भी नहीं सहन कर सकता। उस राक्षस से पिंड छुटते ही मेरे अच्छे दिन लौट आएंगे। आचार्य तिस्स निश्चय ही महामंत्री का पद ग्रहण करेंगे और सारा आर्यावर्त एक बार फिर बौद्ध धर्म के जय-नाद से गूंज उठेगा। ये जो मंदिरों में शंखनाद किया करते हैं फिर अपनी

पुरानी जगहों पर लौट जाएंगे। मैं इनके प्रभाव का अन्त होते देखना चाहती हूं।

शैवाल के दिमाग में महादेवी की बात जगह नहीं पा सकी। वह जानती नहीं थी कि ब्राह्मण और अ-ब्राह्मण क्या बला है। उसके रक्त में यह संस्कार ही नहीं। महादेवी की प्रसन्नता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। अन्त में उन्होंने कह "तू उस छोकरे से पता लगा कि वहां क्या हो रहा है। निश्चय ही वह बूढ़ा च नहीं बैठा होगा। मैं जानती हूं, वह चुप रहकर चुटकनेवाले विषधर से कम घात नहीं है।"

१८

महामंत्री सदा की तरह उषा-काल में हरि-स्मरण करते हुए उठे तो उन्हों शशिमित्र को तैयार पाया। इधर-उधर निगाहें घुमाकर देखने से महामंत्री को य पता चल गया कि शशिमित्र का बिछावन जहां पर रखा था वह वहीं पर है— तो क्या वह सारी रात बैठा ही रहा ? महामंत्री क्षण-भर रुके और फिर गंगा-त की ओर चल पड़े। सदा की तरह पीछे-पीछे शशिमित्र चल रहा था जैसे धर्म पीछे-पीछे शुभ फल। स्नानादि से निश्चिन्त होकर महामंत्री प्रसन्नमुद्रा में बोले "आयुष्मान, तेरा शरीर स्वस्थ तो है न ? मुझे ऐसा लगता है कि तू सारी रा जागता ही रहा।"

शशिमित्र को जैसे सनाका मार गया। वह किंचित् घबराकर बोला, "प्रभ शरीर तो स्वस्थ है किन्तु न जाने क्यों मन बहुत ही उद्विग्न रहता है।"

तपस्वी आचार्य बोले, "वत्स, अपने मन में खोज तो सही, कहीं कोई विका तो छिपकर नहीं बैठ गया है। मन को सदा झाड़बुहारकर साफ करते रहन चाहिए। ज़रा-सा आलस्य किया न कि वह दुनिया-भर की गन्दगी लाकर जम कर देता है।"

१. प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ 'तेविज्जसुत्त' के अनुसार ब्राह्मण आलसी, स्वार्थी, घमंडी और द्वेषी नहीं कर्मी भी माना गया है।
स्व० डॉ० बेनीप्रसाद ने अपनी विख्यात पुस्तक 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' के पृ २७८ पर लिखा है, '''''जो खेती करते थे या तीरन्दाज़ थे, या शिकारी या मछुए थे या पहिये बनाते थे, या ऐसे ही और किसी व्यवसाय से निर्वाह करते थे।"
यह दशा थी बौद्धयुग के ब्राह्मणों की।

शशिमित्र की आंखें खुल गईं। वह निश्चय ही अपने प्रति असावधान रहता ा जिसका फल यह हुआ कि उसका सारा मनोमय जगत् गन्दे कूड़ों से भर गया। सने अनुभव किया कि कूड़ों को साफ करना अब उतना आसान काम नहीं रहा। हुत परिश्रम करना पड़ेगा, फिर भी सफलता मिलेगी ही यह नहीं कहा जा कता।

दोपहर को मंत्रिपरिषद के सभी सदस्य जमा हुए। महामंत्री की कुटिया राजनीति के तूफान में भी अचल बनी रही।

विचार हो रहा था कि राज्य का प्रभु कौन है, सम्राट या जनता। गहराई से छानबीन की गई और राज्य के कर्णधार इस निश्चय पर पहुंचे कि राज्य का प्रभु सम्राट कभी भी नहीं हो सकता। जनता ने उसे अपनी ओर से शासन करने का अधिकार दिया है। सिंहासन और छत्र जनता का है और सिंहासन पर बैठने के बाद राजा का कोई व्यक्तिगत जीवन रह ही नहीं जाता, उसका सब-कुछ जनता का है—यहां तक कि उसके बच्चों पर भी उसका अधिकार नहीं है। यदि जनता चाहे तो राजा को रानी के निकट जाने से भी रोक सकती है।

कल की मंत्रिपरिषद में जो विचार हुआ था उसकी भी पुष्टि की गई और निश्चित हुआ कि सम्राट को धर्म-परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है और न वह राज्यकोष का मनमाना उपयोग ही कर सकता है।

इसके बाद तृतीय संगीति पर विचार किया गया और व्यापक रूप से गुप्तचरों का प्रसार किया जाए यह तर्क भी मान लिया गया। यह व्यवस्था की गई कि भिक्षुओं की हलचलों पर बारीकी से ध्यान दिया जाए।

महामंत्री ने अंत में कहा, "जहां तक धर्म का सम्बन्ध है मैं संगीति का उतना ही भक्त हूं जितना आचार्य तिस्स हैं, किंतु मुझे ऐसी आशंका है कि बाहर से आने-वाले भिक्षु धर्म की आड़ में अपना रूप छिपाने का प्रयास करेंगे। साम्राज्य के कल्याण का प्रश्न मेरे सामने सभी तरह के प्रश्नों से अधिक महत्त्व रखता है। मैं किसी भी मूल्य पर साम्राज्य का हित करूंगा ही। हमारी दृष्टि उदार किंतु सशंक होनी चाहिए।

मंत्रिपरिषद की बैठक समाप्त हो गई और वातावरण शांत हो गया।

'उदार किंतु सशंक दृष्टि', शशिमित्र इस वाक्य को सुनकर चौंक उठा। उसने आचार्य से अवसर देखकर प्रश्न किया, "प्रभो, सशंक दृष्टि उदार कैसे हो सकती

है ?"

आचार्य ने हंसते हुए जवाब दिया, "तू भी बच्चों की तरह प्रश्न करता है राजनीति में यही विशेषता है कि सदा चौकन्ना रहते हुए भी उदार व्यवहार ह करते हैं। वह राजनीतिज्ञ, जो उदार व्यवहार करने की कला नहीं जानता, मा जाता है और वह राजनीतिज्ञ, जो सशंक नहीं रहता, कभी संकटों से मुक्त नह होता। भीतर से हम सशंक रहते हैं, किंतु बाहर से सिंह की तरह निर्भय औ आकाश की तरह उदार दिखलाई पड़ते हैं।"

शशिमित्र सिर से पांव तक कांप उठा, 'हे भगवान, यही राजनीति है त राक्षसनीति कैसी होगी !'

वह मन ही मन विकल होकर बोला, "आचार्य के चरणों में निवेदन है कि यदि मुझे आदेश दें तो मैं देवतात्मा हिमालय की शांत तलहटी में बैठकर मन को विश्राम दूं। साहस नहीं होता कि मैं आचार्य-श्री से भी निवेदन करूं कि वे भी पाटलिपुत्र को आशीर्वाद देकर उसी ओर चलें।"

बच्चों की तरह खिलखिलाकर हंसते हुए महामंत्री ने कहा, "ऊब गया रे ! यह तो राजनीति का छोटा-सा सूत्र है, अभी पूरा ग्रंथ बाकी है। तू डरता क्यों है ?"

शशिमित्र ने आचार्य के चरण पकड़ते हुए कहा, "आप महापुरुष हैं, समर्थ तपस्वी हैं, आप परिस्थितियों पर अधिकार रखते हैं, किंतु यह दास तो सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। मुझे आपका आदेश चाहिए।"

महामंत्री स्नेह-भरे स्वर में बोले, "तू मुझे छोड़कर नहीं जा सकता।"

महामंत्री की कुटिया से तीन कोस की दूरी पर बैठकर आचार्य चंडाचार्य अपने अनुयायियों को समझा रहे थे, "हम सम्राट की प्रतिष्ठा डूबने नहीं दे सकते। वह बूढ़ा राधगुप्त पागल हो गया है। उसे गद्दी से खदेड़ना ही होगा और···"

शीलभद्र बोला, "आप महामंत्री बनेंगे क्या ? बुद्धदेव ने भिक्षुओं को पदग्रहण करने से रोक दिया है।"

गरजकर चंडाचार्य बोले, "तू क्या जानता है रे अभागे, जो बीच में कूद पड़ा ? मैं जानता हूं धर्म के सारे रहस्यों को। मैं सात-सात भाषाओं का ज्ञाता हूं और मैं जो कुछ कहता हूं वह बुद्धवचन से ज़रा भी कम महत्त्व नहीं रखता।"

जो बैठे थे वे उठ खड़े हुए और एकसाथ ही बोल उठे, "यह तो हम सहन नहीं कर सकते। आपने भगवान का अपमान किया है।"

चंडाचार्य भी उठकर खड़े हो गए और बोले, "होश की दवा करो। शोर वाने से नगर-रक्षक की सेना धमक पड़ेगी।"

डरकर सभी बैठ गए, किंतु चंडाचार्य जैसे थे वैसे ही रह गए और बोले, साधारण धर्म से आपद्धर्म बहुत कठोर होता है। मैं जो कुछ कह रहा हूं वह आपद्धर्म की बात है। आज हमारे सामने भगवान नहीं हैं, किंतु मैं जानता हूं कि किस तरह सोचते थे। मैंने तपस्या की है और जन्म-मरण के बंधनों से मुक्त होकर धर्म की रक्षा के लिए यहां बैठा हूं। स्वर्ग के देवता मेरी राह देख रहे हैं।"

बगल की कोठरी से चूड़ियों की हल्की खनखनाहट सुन पड़ी तो पिप्पलाद धीरे से बोला, "और वहां कौन प्रतीक्षा कर रही है भगवन्?"

जरा-सा सुस्ताकर चंडाचार्य ने प्रवचन जारी रखा, "धर्म की रक्षा संगीति से नहीं होगी। धर्म की रक्षा कठोर व्रतों और शरीर को गला देनेवाली तपस्या से भी नहीं होगी। मैं जानता हूं कैसे धर्म का पुनरुत्थान होगा, उसकी रक्षा होगी। मुझसे तिस्स पूछें भी तो, मैं उन्हें सारा रहस्य बतला दूं।"

इस जोश में चंडाचार्य बोले कि वे हांफने लगे और वहीं पर धम्म से बैठ गए। एक भद्दी-सी चुप्पी ने उनके प्रवचन का समर्थन किया और जब उन्होंने चारों ओर निगाह दौड़ाई तो दो-तीन भिक्षुओं को ऊंघते भी पाया। वे फिर गरज उठे, "तुम ऊंघ रहे हो। मैं शाप देता हूं कि सात जन्म तक अर्हत-तत्त्व का ज्ञान तुम्हें नहीं होगा।"

इस शाप का फल भी उलटा हुआ—चारों तरफ हल्की-सी मुस्कान की लहर दौड़ गई। इस दृश्य ने चंडाचार्य को और भी उत्तेजित किया। वे बैठे ही बैठे कहने लगे, "धर्मद्वेषियो, चले जाओ यहां से! मैं अकेला ही सब-कुछ कर लूंगा। मैंने यदि तपस्या की है तो उसका अजेय तेज भी मेरे शरीर में विद्यमान है। राधगुप्त उस तेज के सामने अंधा हो जाएगा।"

अर्धविक्षिप्त की तरह हाथों को इधर-उधर फेंकते हुए जब चंडाचार्य की प्रखर वाणी ने विश्राम लिया तो एक भिक्षु बोला, "हम धर्मद्वेषी नहीं हैं। आप असंभव बातें बतला रहे हैं तो क्या करें? इतना विशाल साम्राज्य और इतना बलशाली प्रधान मंत्री राधगुप्त और आप कहते हैं कि संगीति से कुछ नहीं सधेगा तो हम क्या करें?"

चंडाचार्य ने कहा, "मर मिटना होगा, अपने को खून की नदी में डुबा देना

होगा, इस पापी देश को लाशों से पाट देना होगा तब सिद्धि मिलेगी। दरवा दरवाज़े भीख मांगने से धर्म की रक्षा नहीं हो सकती, सिर मुंड़ाकर छछूंदर तरह दौड़े फिरने से धर्म का उद्धार नहीं होगा—यह मैं अच्छी तरह जानता हूं

दूसरा भिक्खु बोला, "राधगुप्त एक ही झपट्टे में सभी बचे-खुचे बौद्धों पार लगा देगा महोदय, वह जैसे ही मुंह खोलेगा कि हम अनायास ही उसके भी घुस जाएंगे। वह कितना विकराल व्यक्ति है ! हे भगवान !"

तीसरा भिक्खु बोला, "वररुचि ठीक ही कह रहे हैं। आप तो हमें सदा लिए समाप्त कर देना चाहते हैं। न रहेगा बांस और न बजेगी वंशी।"

चंडाचार्य शांत स्वर में कहने लगे, "यह कायरता है। पतित पुरुष ही का होता है। एक चिनगारी सारे बन को खाक में मिला देती है, हम तो अनगिनत चि गारियां है। राधगुप्त को तुमने बहुत-कुछ समझ लिया है। वह बूढ़ा चंद दिनों ही टांगें सीधी करके चल बसेगा। ज़रा साहस से काम लो।"

इसी समय बाहर किसीके चलने-फिरने की आहट मिली। एक भिक्खु ने द वाज़े की दरार से देखा—कुछ अपरिचित शकलें आंगन में घूम रही हैं। उस भि ने इशारे से जब चंडाचार्य को यह सूचना दी तो वे तुरंत विनय-पिटक का प करने लगे और ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगे, "हमारे भगवान ने कहा था कि" इत्यादि।

धर्मउद्धारक सभा शुद्ध धर्म-सभा बन गई। कुछ देर के बाद फिर जब बा ताक-झांक की गई तो वहां कोई न था। वररुचि बोला, "महोदय, यह संकट प्रथम दर्शन है। सावधान हो जाइए, नहीं तो धर्म का उद्धार हो या न हो इस शर का उद्धार राधगुप्त कर डालेगा।"

चंडाचार्य को चुप देखकर पिप्पलाद ने कहा, "हमारे आचार्य किसीसे भी न डरते; वे न तो पुण्य से डरते हैं और न पाप से।"

शीलभद्र बोला, "जो सिद्ध महापुरुष होता है, जिसने अर्हतपद प्राप्त क लिया, वह पुण्य और पाप दोनों से ऊपर उठ गया, स्वर्ग से भी ऊपर, निर्वाण भी ऊपर, बहुत ऊपर।"

शीलभद्र की बातों का स्वागत फिर व्यंग्य-भरी मुस्कान के द्वारा हुआ। चंड चार्य नरम स्वर में बोले, "हम बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाले हैं, अतः शक्ति संचय करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। अपने को बचाकर हम तब तक रखें ज

2323

: खुली चुनौती देने की शक्ति प्राप्त न हो जाए। फिर भी मैंने जो कुछ कहा है
ो हमारा लक्ष्य होना चाहिए।"

इसके बाद गुप्त परिषद समाप्त हो गई। एक-एक करके भिक्खु बाहर निकले
र भय से दाहिने-बायें देखते हुए बिखर गए—कोई नगर के बाहर चला गया तो
ई बगल की किसी सुरंग जैसी गली में घुसकर घोर अंधकार में छिपकर आगे
ा गया।

चंडाचार्य ने अच्छी तरह दरवाजा बन्द करके धीरे से पुकारा, "कौन है—
वर्णप्रभा या मणिमाला ?"

जूड़े में फूलों की माला लपेटे मद्य के रंग में सराबोर मणिमाला इस तरह
गल की कोठरी से निकल आई जैसे चंडाचार्य की तपस्या सदेह पधारी हो।

अपनी शांत कुटिया में बैठे हुए आचार्य तिस्स का मन भी शांत न था। चंडा-
ार्य पाटलिपुत्र की एक गंदी गली में बैठकर आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाने में
स्त थे तो राजगृह में बैठकर आचार्य तिस्स भी व्यग्र थे, यद्यपि मंत्रिपरिषद और
भा का रुख उनके प्रति बहुत ही उदार था।

तिष्यरक्षिता के गुप्त दूत ने तिस्स को सारा समाचार पहुंचा दिया था। किंतु
ह एक नया सवाल उठ खड़ा हुआ था कि राज्य का प्रभु कौन है।

राधगुप्त जनता के विश्वासप्राप्त प्रतिनिधि थे, अतः उन्होंने यह मत व्यक्त
किया कि राज्य जनता का है।

तिस्स का माथा ठनका। परम्पराओं पर आधारित मगध का शासन-विधान
इतना कठोर था कि उसे बदला नहीं जा सकता। शासन-विधान बदलने का मत-
लब होता, सारी परम्पराओं को नष्ट कर देना। जनता अपनी परम्पराओं की रक्षा
पूरी शक्ति लगाकर करती है क्योंकि उन्हीं परम्पराओं की आधार-शिला पर उसके
जीवन का गठन होता है, वे परम्पराएं उसका विकास करती हैं और बिखरने से
बचाती हैं। यह बात तिस्स से छिपी न थी कि किसी भी बलवान राष्ट्र के लिए
उसकी विकासप्रद परम्पराएं क्या महत्त्व रखती हैं।

इन सारी बातों पर विचार करके तिस्स निराश हो गए और उन्हें इस बात
का खतरा नजर आया कि कहीं ऐसा न हो कि सम्राट और महामन्त्री में उग्र मत-
भेद पैदा हो, जिसका निश्चित परिणाम यही होगा कि सम्राट की हार होगी और
जनता के विश्वासपात्र राधगुप्त की बात रह जाएगी। अब तिस्स इस चिंता में पड़े

कि चाहे जैसे भी हो, इस संघर्ष की स्थिति को न आने दिया जाए। सम्राट शक्ति नष्ट हो जाने का अर्थ होगा भारत में बौद्ध धर्म के पुनरुद्धार तथा उ विश्वव्यापी होने की संभावना का अन्त हो जाना। दूर तक सोच लेने के बाद ने यही निश्चय किया कि वे मध्य मार्ग ग्रहण करेंगे। भगवान बुद्ध ने कभी भी प्रयास नहीं किया कि अजातशत्रु का प्रभाव नष्ट हो जाए यद्यपि वह कट्टर वै धर्मावलंबी था। उन्होंने प्रतीक्षा की और अंत में अजातशत्रु उनकी शरण में गया।

राजा संगठित शक्तियों का पुंज है, उसके प्रभाव को नष्ट करने का फल होगा कि उग्र शक्तियां बिखर जाएंगी और बहुत-से अनधिकारियों में वे आ ग्रहण करेंगी। यहीं से शक्तियों का दुरुपयोग आरंभ होता है—इस रहस्य को वि जानते थे।

उन्होंने निश्चय किया कि प्रियदर्शी अशोक की शक्तियों को उसीमें के रखने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहेंगे और वह भी महामन्त्री को बिना चुन दिए—जैसा चल रहा है उसी तरह चलता रहे, बस। इधर शीलभद्र, पिप्पल वररुचि आदि भिक्खु अंधकार में गायब होकर फिर अनन्तसेन की पानशाला में हुए। यह पानशाला नगर के अन्तिम छोर पर थी और खजूर तथा ताड़ के वृक्ष घिरी हुई थी। चोर और अपराधकर्मी वहीं जमा होते थे। स्वयं अनन्तसेन दोनों कान कटे हुए थे क्योंकि उसने अपनी जवानी के दिनों में चोरी करने साहस किया था—कान काटकर उसे नगर-रक्षक ने छोड़ दिया था। शीलभद्र अ भिक्खुओं ने वहां अपनी सभा जमाई तो अनन्तसेन बोला, "अरे अभागो, यहां ब मत करो। एक दण्ड पहले नगर-रक्षक के कई प्रहरियों को मैंने जाते देखा था। अ दो चुल्ल् पीना हो तो पीकर चलते बनो, सभा करके दिमाग चाटा तो अच्छ होगा।"

पिप्पलाद ने भी वैसा ही गरम जवाब दिया, "इस बूढ़े की सामत आई है पागल गीदड़ की तरह उछल रहा है।"

अनन्तसेन दांत पीसने लगा यद्यपि उसके मुंह में एक भी दांत न था।

भिक्खुओं ने अपनी सभा जमा ली क्योंकि वे संख्या में तीस-चालीस थे।

दो स्वर्ण-मुद्राएं पाकर अनन्तसेन शांत होकर बोला, "जरा धीरे-धीरे हुज्ज करना। रात को वृक्ष भी सुनने लगते हैं। राधगुप्त का राज्य है।"

१९

राजगृह की सुनसान और उदास गोद में संध्या उतरी।

जो वहां तृतीय संगीति आठ मास से चल रही थी वह समाप्ति पर थी। देश
होने-कोने से और बाहर से भी करीब एक हज़ार साधक और चोटी के बौद्ध-
ान आचार्य तिस्स के निमंत्रण पर पधारे थे, जिन्होंने अपार परिश्रम और
न से त्रिपिटक का संकलन संपन्न कर डाला था। पूर्व में दो ही विमान थे—
नय और धम्म। त्रिपिटक जब अस्तित्व में आ गया तो बौद्ध वाङ्मय एक प्रकार
संपन्न हो गया, जो कमी थी वह मिट गई।

प्रियदर्शी अशोक ने जिस श्रद्धा और उदारता से इस तृतीय संगीति को सफल
ाने में योग दिया उसका फल यह हुआ कि भारत में बौद्ध धर्म का पुनर्जन्म हो
या—एक लुप्तप्राय धर्म में उठ खड़े होने की सात्त्विक क्षमता पैदा हो गई।

आचार्य तिस्स ने 'कथावत्थु' नाम के एक सर्वमान्य ग्रंथ का भी प्रणयन किया।
द्ध विद्वानों से उस ग्रंथ को भी मान्यता मिल गई और उसे बौद्ध धर्म के ग्रंथों में
ान दे दिया गया। तिस्स की यह सबसे बड़ी सेवा थी बौद्ध वाङ्मय की।

बुद्धदेव के महापरिनिर्वाण के २३६ वर्ष के अनंतर यह तृतीय संगीति अशोका-
ाम में हुई थी।

कथा-प्रवाह को सुनिश्चित मार्ग देने के लिए इतना निवेदन करना पड़ा,
न्यथा उपन्यास तो आगे बढ़ता ही—पाठक क्षमा करेंगे।

आठ मास के घोर वाद-विवाद और दिमाग को थकानेवाले विचारों के आघात-
तिघात से वे विद्वान भी मानो ऊंघने लग गए थे जिन्होंने एक तूफान खड़ा कर
दिया था। अभी ज्ञान-यज्ञ की पूर्णाहुति बाकी थी किंतु बाहर और भीतर जो श्रांति
र गई थी वह बढ़ती ही जा रही थी। धीरे-धीरे झोंपड़े खाली होने लगे, नगर के
ो दर्शनार्थी आते थे उनका आना भी घटने लगा तथा संगीति में बैठकर जूझने-
ालों की प्रखर वाणी भी हौले-हौले प्रकट होने लगी। कभी नहीं माननेवाले तुरंत
समझौता कर लेने पर उतारू नज़र आने लगे। यह हाल हुआ उस संगीति का,
जब आठवां महीना समाप्त होकर नवां महीना आरंभ हो गया। एक हज़ार विद्वान
भिक्खुओं में से दो-चार सौ-मात्र रह गए और उनमें से भी बहुत-से खिसक गए।

चहल-पहल समाप्त हो गई और झोंपड़े उजाड़े जाने लगे। भिक्खुओं के आरा

के लिए जो-जो व्यवस्थाएं की गई थीं उनमें भी काफी सुस्ती पैदा हो गई।

एक दिन संध्या समय प्रियदर्शी अशोक अपने रत्नखचित रथ पर पध उजड़े झोंपड़ों और निर्जन बाजारों के बीच से होकर वे पैदल ही आचार्य ति की कुटिया तक आए। वे अकेले ही थे। जब तक संगीति चलती रही वे दूर पर रथ का त्याग कर देते थे। तिष्यरक्षिता के प्रश्न करने पर उन्होंने कहा था। विद्वानों और तपस्वियों के निकट सेवक बनकर जाने में लाभ है। सम्राट बन उनके निकट जाना उनको नहीं, ज्ञान और तपस्या को अपमानित करना है।

तिष्यरक्षिता इस गंभीर बात को नहीं समझ सकी, क्योंकि वह भावना नारी थी बाहर से, और भीतर से बिलकुल ही पत्थर की तरह ठोस।

आचार्य तिस्स ने प्रियदर्शी का स्वागत किया। आसन ग्रहण करके सम्राट बो "आचार्य को किसी तरह की असुविधा तो नहीं है? संगीति तो शांतिपूर्वक रही है न? जो विद्वान और तपस्वी पधारे थे वे सम्मानपूर्वक विदा हुए?"

आचार्य तिस्स ने उत्तर दिया, "प्रियदर्शी सम्राट, हम सर्वस्वत्यागी हैं हमारे लिए सबका स्नेह ही बहुत है। सो तो जनता ने हृदय खोलकर हमारे रख दिया। संसार के सभी भागों से विद्वान आए थे और वे अत्यंत तृप्त हो विदा हुए। आपके ऋषिकल्प महामंत्रीजी का हृदय कितना विशाल है यह मैं जानता था। वे वंदनीय हैं।"

अपने महामंत्री की प्रशंसा सुनकर सम्राट का गला भर आया। वे कहने ल "भगवन्, महामंत्री तो पूरे साम्राज्य के प्रतीक हैं। वे यहां पधारे तो इसका यह हुआ कि सारा मगध साम्राज्य यहां उपस्थित हो गया।"

तिस्स ने कहा, "अकेले महामंत्री महोदय ही नहीं पधारते रहे, अपने स मंत्रियों के साथ पधारते थे—नगर का श्रेष्ठिन तो नौ मास से यहीं टिका हुआ उसीने सारी व्यवस्थाओं को सफल बनाया है।"

दिन समाप्त हो गया और गोधूलि की धूमिल विभा में राजगृह की नि पहाड़ियां बहुत ही उदास दिखालाई पड़ने लगीं। सम्राट अपलक आंखों से प ड़ियों को देख रहे थे और तिस्स ने सम्राट को उधर एकाग्र देखा तो वे भी चुप ल गए। ध्यानावस्थित-से सम्राट उन पहाड़ियों को देखते हुए दीर्घ निःश्वास त्याग बोले, "भगवन्, इन पहाड़ियों को यदि बोलना आता तो मैं इनसे भगवान बुद्ध के सबध में कुछ पूछता—इनपर कभी उनके चरण-चिह्न उभरे होंगे जिन्हें का

ाह ने धो-पोंछकर साफ कर दिया।"

इतना बोलकर सम्राट चुप लगा गए और तिस्स ने देखा कि उनकी बाज़ जैसी खी आंखें सजल हो गई हैं।

तिस्स चौंक पड़े। अशोक जैसा कठोर शासक भी इतना भावना-प्रधान हो कता है। जिसने दाहिने हाथ में तलवार रखकर बायें हाथ से भोजन करने का भ्यास युद्धक्षेत्र में किया है, जिसकी सेना कभी भी पीछे नहीं हटी और जिसने रा जीवन शत्रुओं की लाशों पर ही अपना रथ चलाया, वह कठोर सम्राट कितना ृदय है, सहृदय और द्रवणशील तत्त्वों का बना है! तिस्स का दिमाग चकरा या—मानव कितना रहस्यपूर्ण होता है इसका बोध उन्हें उस दिन हुआ जब न्होंने महायोद्धा अशोक की आंखों में करुणा की गंगा को उमड़ते देखा।

सम्राट फिर एकाग्रचित्त से धुंधली नज़र आनेवाली पहाड़ियों को देखने लगे ौर जब अंधकार छा गया तो कहने लगे, "आचार्य देव, अब तो वे दिखलाई भी हीं पड़तीं।"

तिस्स ने कहा, "प्रियदर्शी, भगवान तो हमारे भीतर हैं प्रज्ञा के रूप में और ाहर हैं हमारे शुभकर्मों के रूप में, हम सत्य की ओर जाएं, प्रकाश की ओर ाएं।"

सम्राट ने सहसा चौंककर तिस्स के शांत चेहरे की ओर देखा और कहा, 'मैं सत्य को पा गया भगवन्, अब प्रकाश तो आपसे-आप प्रकट हो जाएगा।"

इतना बोलकर सम्राट एकाएक उठे और इस तरह चले जैसे कोई आत्म-विस्मृत व्यक्ति जाता हो। तिस्स को उन्होंने आगे जाने से रोक दिया। सम्राट आगे बढ़ते चले गए। कुछ ही देर में उन्होंने घने वन में प्रवेश किया। बसेरा लेने-वाले पंछियों के कलरव से सारा वन प्रमुदित और मुखरित हो रहा था। पंछी डालियों पर अब भी फुदक रहे थे। पूर्व की ओर से हल्का पीला चांद प्रकट हुआ, वनजूही की महक से सनी हुई हवा हौले-हौले डोलने लगी। अशोक पतली पगडंडी पर खोए-खोए-से आगे बढ़ते चले गए। दोनों ओर घने वृक्ष खड़े थे और हरी-हरी तृणावलियों के बीच से पगडंडी टेढ़ी-मेढ़ी आगे बढ़ती हुई सामने की पहाड़ी की ओर चली गई थी।

सामने छोटा-सा मैदान था और अशोक मैदान के किनारे खड़े होकर चंद्रोदय का दृश्य देखने लगे। किसी अज्ञात आनंद के स्पर्श से उनका हृदय पुलकित हो

उठता था। हवा के मधुर कोमल स्पर्श से उनके पुष्ट कंधों पर से उत्तरीय खि
पड़ता था और सिर के रेशम जैसे घुंघराले बाल चौड़े और चिकने ललाट पर बि
पड़ते थे। मगध का महान शासक और संसार का प्रख्यात योद्धा निसर्ग की
लीला-निकेतन में बच्चे की तरह सब कुछ भूलकर जैसे खेलने लगा।

ज्यों-ज्यों चांद ऊपर उठने लगा पहाड़ियों की शोभा निखरने लगी मानो
पर दूध की वर्षा हो रही हो।

अशोक ने जीवन में पहली बार धरती के इस सुंदर रूप को देखा, जीव
पहली बार उन्होंने यह अनुभव किया कि विपुल संपत्ति और शक्ति के द्वारा
चाहे जितना सुख बटोर लें किंतु वह आनंद, जो मन के अंतराल से उठकर र
रोम में अकारण फैल जाता है, न तो धन से प्राप्त किया जा सकता है औ
शक्ति से, न तलवार के ज़ोर से। क्षणस्थायी भौतिक साधनों के बल पर जो
हम प्राप्त करते हैं वह तो और भी जीवन को दरिद्र बना डालता है, विपथग
बना डालता है, हाहाकारमय बना डालता है और अंत में अनंत नरक की आग
सदा के लिए झोंक देता है। कागज़ की नाव को लोहे-लक्कड़ का जहाज़ स
लेना क्या है? अपने को काल की दया पर छोड़ देना है, विनाश को जलती
गोद में डाल देना है।

अशोक खड़े-खड़े विचारों के शीतल जल में डूबने-उतराने लगे और
खिसकती हुई आगे बढ़ने लगी।

वे लौट चले क्योंकि एक सम्राट होने के कारण उन्हें अपने को खतरे में र
का कोई अधिकार न था, कल जनता उनसे पूछ सकती थी, 'हमारे द्वारा
गए अंगरक्षकों की उपेक्षा करके तुम क्यों वन की ओर गए, क्यों तुमने अपने
संकट में डाला?'

अशोक लौट पड़े। वे लौटे तो अवश्य किंतु उनका मन वहीं रह गया। उन्हें
कहा, 'मेरा शरीर सम्राट है जिसपर जनता का अधिकार है किंतु मेरी आत्मा
स्वतंत्र है, मन तो मुक्त है।'

रथ पर बैठते ही सम्राट ने आदेश दिया, "महामंत्री के आश्रम की ओ
चलो।"

सारथी घबरा गया, अंगरक्षक भी आकुल हो उठा। रथ चला और वह नग
पार करता हुआ गंगा-सोन के संगम के पास आकर रुका। अशोक रथ पर इत

त्मविस्मृत-से बैठे थे कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कितना समय बीता। जब
ा रुका तो अंगरक्षक नीचे कूद पड़ा और बोला, "प्रभो, इसी आम्रकुंज के भीतर
य्य महामंत्रीजी का निवासस्थान है। उनके आश्रम के निकट हम पहुंच गए।"

आश्रम की प्रतिष्ठा ही ऐसी थी कि कोई भी रथ या किसी भी सवारी पर
ढ़कर वहां तक नहीं जाता था। सम्राट रथ से उतर पड़े और अंगरक्षक आगे-
ागे चला रास्ता दिखलाता हुआ।

उस आम के घने वन के भीतर घुसते ही सम्राट को ऐसा लगा कि वे किसी
व-मन्दिर में प्रवेश कर रहे हैं। जब वे कुटिया के निकट पहुंचे तो होम के धुएं की
ुगन्ध हवा के साथ आई। वह हवा गंगा को स्पर्श करके आ रही थी जिसमें
ीतलता थी, पवित्रता थी और निर्मलता भी थी। सम्राट आगे बढ़े तो उन्हें माधवी
ता से आच्छादित वह कुटिया नजर आई जिसके छोटे-से बरामदे के कोने में
दीप का मन्द प्रकाश फैल रहा था। कुछ आगे बढ़ने पर उन्हें तुलसी के चौंतरे पर
बैठा हुआ एक मोर दिखाई पड़ा और हरिण का एक जोड़ा नीचे बैठा था।
आकाश से शांति की वर्षा हो रही थी मानो स्वर्ग अपनी सारी विभूतियां उस
आश्रम पर बरसा रहा हो। ज्यों-ज्यों सम्राट आगे बढ़ते जाते थे उन्हें ऐसा बोध
होता था कि वे धरती का त्याग करके ऊपर उठते चले जा रहे हैं, सत्यलोक की
ओर।

अब वे महामंत्री की कुटिया की ओर नहीं, तपोधन आचार्य राधगुप्त की
कुटिया के सामने खड़े थे। उन्होंने देखा, महर्षि ध्यानावस्थित अवस्था में बैठे हैं
और उनका चेहरा ब्रह्मतेज से प्रकाशमान है। यद्यपि यह उचित न था किंतु सम्राट
ने दोनों हाथ जोड़कर और झुककर उस पुण्यमूर्ति को नमस्कार किया और कहा,
"तुम साक्षात धर्म हो, मैंने आज तक तुम्हें अपना महामन्त्री ही माना था। आज
स्पष्ट हुआ कि इस सौभाग्यवान साम्राज्य के हृदय पर तुम कैसे शासन करते हो।"

इसी समय शशिमित्र किसी ओर से आया। उसने सम्राट को हाथ बांधकर
सिर झुकाए देखा तो वह अवाक् हो गया—वह यह क्या देख रहा है? महान मगध
सम्राट अपने महामंत्री की वंदना कर रहा है। शशिमित्र आश्चर्य और भय से दूर
ही खड़ा रह गया।

कुछ क्षण में ही जब महामंत्री ने आंखें खोलीं तो शशिमित्र झपटता हुआ
उनके निकट पहुंचा और बोला, "भगवन्, सम्राट···प्रियदर्शी···पधारे हैं, वे वहां

खड़े हैं।"

महामंत्री आसन से उठ खड़े हुए और उन्होंने देखा कि महान मगध का अ
शासक श्रद्धा से सिर झुकाए कुटिया के सामने खड़ा है।

अकचकाकर महामंत्री ने सम्राट की वन्दना करके कहा, "स्वामी, आप !
समय यहां, इस कुटिया में ! कारण क्या है ?"

सम्राट ने पवित्र मुस्कान के द्वारा सब कुछ प्रकट कर दिया। महामंत्री के
हुए दर्भासन पर बैठकर वे बोले, "महर्षे, एक महामंत्री के रूप में आपको
प्रासाद में ही जाना चाहिए, यही परम्परा भी है, किंतु इस समय मैं न तो सम्र
हूं न आप महामंत्री। आप तो ज्ञान और तपस्या के धन हैं तथा मैं एक सोने
जाल में फंसा हुआ महामत्स्य। याचक को दानी के निकट जाना ही पड़ता है अ
मैं आज याचक बनकर आया हूं—मुझे शांति चाहिए, संतोष चाहिए, असत्य
सत्य की ओर मुझे जाना है, अंधकार से प्रकाश की ओर मैं जाना चाहता हूं, मृ
से अमरत्व का वरदान प्राप्त करने को मैं व्यग्र हूं।"

आचार्य मुस्कराए और बोले, "महाराजाधिराज, आपके प्रश्न ऐसे नहीं
जिनका उत्तर शब्दों से कोई दे सके। जीवन की गति को सही-सही पहचान
और उसपर नियंत्रण रखना आसान काम नहीं है—पचास साल से साम्राज्य
सेवा करता हुआ मैं यही जानने का प्रयास कर रहा हूं।"

सम्राट ने कहा, "आप मेरे पूज्य आचार्य भी हैं। आपने ही मुझे ज्ञान
दीक्षा दी थी और आज तक आप राजनीति की शिक्षा मुझे देते ही रहते हैं। मैं पि
लौटकर अपने आचार्य के चरणों में आया हूं और चाहता हूं कि मुझे अविद्या
दूर हटने की शक्ति आचार्य दें। मैं सुखी होना चाहता था और आज पूर्ण सुखी
किंतु राजगृह की संध्या की पवित्र शोभा ने आज मुझे बतला दिया कि सुख
पशुओं को भी पेट भरकर खा लेने के बाद प्राप्त होता है, किन्तु आनन्द किसी-किस
के भाग्य में बदा होता है। क्षणिक और नाशवान सुख के लिए मैंने क्या-क्या न
किया ! धरती को उसीके लाड़लों की लाशों से पाट दिया, असंख्य मांगें धो
असंख्य गोदों को सूना कर डाला, धरती का कलेजा चीरकर स्वर्ण और रत्न
अंबार लगाया, आर्यावर्त को इस ओर से उस छोर तक तलवार से माप डाल
पर अन्त में यही पता चला कि मैं सुखी तो हुआ, किंतु आनन्द मुझसे बहुत दूर है
मैं आनन्द चाहता हूं आचार्य देव, शुद्ध आनंद, जो आपको सहज ही उपलब्ध है।"

सम्राट का हृदय बोल रहा था और शांत बैठे आचार्य सुन रहे थे। दूसरे ा जब तिष्यरक्षिता को यह समाचार मिला कि सम्राट आधी रात तक महा- ो की कुटिया पर बैठे रहे तो उसने अधीर होकर कहा, "कोई भयानक षड्यंत्र, ागत आचार्य तिस्स की रक्षा करें। उस मायावी ने हमारे आर्य को अपना अनु- ा दास बना लिया—अरी शैवाल, तू अब तक क्या करती रही ? उस राक्षस से ारी रक्षा कैसे होगी ?"

शैवाल बोली, "आप क्यों चिंता करती हैं ? हमारे सम्राट ऐसे नहीं हैं। मैं ाज पता लगाऊंगी।"

शशिमित्र के निकट जाने का एक और अवसर प्राप्त करके शैवाल प्रसन्न हो ई। उसे तो अपने ही मन के आनन्द से मतलब था—यह भी सत्य है।

२०

संगीति समाप्त हो गई और प्रायः सभी विद्वान और भिक्खु विदा हो गए किंतु चंडाचार्य का रोष शांत नहीं हुआ, क्योंकि उन्हें उच्च स्थान देकर आचार्य तिस्स ने उतना सम्मानित नहीं किया जितना वे चाहते थे। अपने गुण, कर्म के अनुसार चंडाचार्य ने संगीति के सम्बन्ध में सोचा। वे इस निश्चय पर पहुंचे कि यह सब ढकोसला था, धर्मध्वजियों ने पेट पालने का एक तरीका संगीति के नाम पर निकाला था।

तिष्यरक्षिता का भी यही मत था। वह उग्र विचारों को पसंद करती थी—ऐसे विचारों को जो महामंत्री राधगुप्त के प्रभाव का अन्त कर सकें। एक हज़ार शांत, विद्वान, स्थविर जमा हुए और अत्यन्त मंथन के बाद 'त्रिपिटक' को अस्तित्व में लाए। इससे धर्मरक्षा का क्या संबंध ? तिष्यरक्षिता ने गुप्तचर के द्वारा अपना सन्देश चंडाचार्य के यहां भेजा। चंडाचार्य ने उत्तर में कहलवाया कि हज़ारों सच्चे भिक्खु राधगुप्त के प्रभाव को चूर करने के लिए परिकरबद्ध हैं—बस, संकेत-भर की देर है और वे देखते-देखते टूट पड़ेंगे। महामंत्री के खिलाफ विद्रोह पैदा होते विलम्ब न लगेगा यद्यपि सम्राट महामंत्री के भक्त बनते जा रहे हैं।

तिष्यरक्षिता उस दिन की राह देखने लगी जब राधगुप्त का अन्त होगा और कोई बलशाली बौद्ध भिक्खु महामंत्री के आसन को सुशोभित करेगा—अब उसका

मन तिस्स की ओर से भी हट गया था क्योंकि वे नरम नीति का पालन कर रहे

चंडाचार्य की गुप्त सभा आधी रात को फिर बैठी और बहुत-से नामध भिक्खु पानशाला और 'बदनाम-घरों' से निकल-निकलकर वहां जमा हुए। इ से बहुतों को तो नगर-रक्षक आदि खोजते फिरते थे।

सभा गरम हो गई। चंडाचार्य कहने लगे, "महादेवी क्यों राधगुप्त को पर नहीं करतीं ? कारण स्पष्ट है। यहां से पतित ब्राह्मणों का प्रभाव मिट गया थ जब हमारे तथागत ने अपनी वाणी का वैभव प्रकट किया तो यहां के वे ब्राह्म जो भावुक जनता को झूठा भय दिखलाकर अपना पेट भरते थे, भाग खड़े हुए यह केवल तीन सौ साल की बात है। अब वे फिर अपना जाल फैलाकर धर्म हत्या कर रहे हैं।"

एक भिक्खु बोला, "ज़रा स्पष्ट कीजिए। हमारे शास्त्र ने कभी भी कि वर्ग के विरोध को नहीं उकसाया।"

चंडाचार्य पूरी शक्ति लगाकर उछले और खड़े होकर हांफते हुए बोले, "र कोई गुप्तचर है, दलाल है, ब्राह्मणों की जूठन खानेवाला है।"

वह भिक्खु भी दैत्य की तरह खड़ा हो गया और चिल्लाया, "आप आर्यावं के शत्रु हैं और धर्म के तो महाबैरी। गलत बातों का प्रचार न कीजिए।"

चंडाचार्य ने देखा कि मामला बिगड़ना चाहता है तो मुस्कराकर बोले "आपने अपने विकारों का अब तक दमन नहीं किया है। क्रोध करने से बुद्धि क नाश होता है और जब बुद्धि का नाश हो जाता है तो नरक के सभी द्वार खुल जा हैं—धर्मपद में ऐसा ही वचन है।"

वह भिक्खु बैठ गया। चंडाचार्य बोलते गए, "सार्वभौम सत्ता केवल सम्रा में ही केन्द्रित रहनी चाहिए। महामंत्री अपने को जनता का सच्चा प्रतिनि मानता है, यह गलत बात है। दूसरी बात यह है कि ब्राह्मण अपने को धर्म क अवतार मानते हैं ; धर्म का अवतार भी सम्राट ही है। जिसके हाथ में राजनीति की शक्ति हो वही धर्म की शक्ति को धारण करे। शक्ति के दो परस्पर विरोधी दिशाओं में बंट जाने का परिणाम यह होगा कि धर्म की राजनीति से सदा टक्कर होती रहेगी। यदि हमारे सम्राट धर्माध्यक्ष भी रहें और शासक भी, तो फिर धर्म का अभ्युदय अनायास ही हो जाएगा। इसीलिए राधगुप्त को बीच से हटाना ही होगा।"

सभी श्रोता चंडाचार्य के अनर्गल तर्क सुनते रहे। अन्त में धर्मसेना का संगठन
और जिस तरह भगवान बुद्ध के समय आनन्द धर्मसेनापति थे, उसी तरह
चार्य ने अपने को धर्मसेनापति के नाम से नामजद कर दिया और फिर तत्काल
यह फरमान जारी किया कि हमारी सेना महादेवी के प्रति वफादार रहेगी और
का काम होगा राधगुप्त को रास्ते से हटाना—यह कंटकशोधन कार्य होगा।
सभा समाप्त हो गई और इसकी सूचना महादेवी को भेज दी गई। महादेवी
इस संवाद को बहुत ही तोष के साथ सुना और कहा, "अब सफलता नज़र आने
ी है। सम्राट की बुद्धि राधगुप्त के कारण मोहयुक्त हो गई है।"
महामंत्री को भी इस सेना के संगठन का मूर्खतापूर्ण संवाद मिला। महामंत्री
रहे किंतु उनके ललाट पर चिंता की रेखाएं स्पष्ट हो गईं।
एक सप्ताह के बाद फिर गुप्तचरों ने संवाद दिया कि महादेवी गुप्त रूप से
न सेना की सहायता करती हैं। महामंत्री ने मुस्कराकर कहा, "ईश्वर महादेवी
सत्य का प्रकाश दें।"
सम्राट के आदेशानुसार तथा महादेवी की इच्छानुसार महात्माओं और
थविरों को महलों में जाने दिया जाता था। संन्यासी तो सदा से जाते ही थे किंतु
ब से प्रत्येक सप्ताह तिस्स उपदेश देने महलों में जाने लगे और भिक्षा के लिए बीच-
ीच में भी उन्हें शिष्यों के साथ बुलाया जाने लगा, नियम ढीले कर दिए गए।
खलीगोशाल की शिष्य-परम्परा में जो सिद्ध जीवनमुक्त थे वे भी प्रायः अपनी
डली के साथ महलों में जाते थे और आदर पाते थे, किंतु तिष्यरक्षिता के महल
में उनका प्रवेश न था।
महामंत्री चिन्ता में पड़ गए और संध्या के उपरान्त श्रेष्ठिन को बुलाकर कहा,
"महाशय, तुम नगर की सुरक्षा की ओर कम ध्यान देते हो।"
महामंत्री का इतना कहना था कि श्रेष्ठिन को जैसे गश आ गया। वह पीला
पड़ गया और अर्धमूर्छित की तरह बोल उठा, "नहीं तो···महामंत्री ही को···मैं
विश्वास दिलाना·· चाहूंगा कि···जो आदेश हो।"
महामंत्री ने उसकी घबराहट की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और रूक्ष
स्वर में कहा, "राज्य में ऐसे लोग बढ़ते जा रहे हैं जिनका लक्ष्य राज्य-शक्ति का
नाश करना है। शांति और समृद्धि प्राप्त होने का फल यही हुआ है कि सभी जैसे
सो गए हैं। सोनेवालों में तुम भी हो श्रेष्ठिन!"

श्रेष्ठिन घबराकर महामंत्री के चरणों की ओर झुका और भर्राए हुए
में बोला, "आप मेरा सिर कटवा लें आर्य, किंतु मुझपर सन्देह न करें। मैं अ
कर्तव्यों के प्रति निष्ठुरतापूर्वक सजग रहता हूं।"

महामंत्री ने आदेश की भाषा में कहा, "मुझे ऐसी ही आशा है। तुम
सकते हो।"

इतना बोलकर महामंत्री कठोर मौनावलम्बन कर बैठे रह गए। श्रेष्ठिन उ
चरणस्पर्श करके चला—वह लटपट पैरों से चल रहा था।

नगर-रक्षा का जिस मंत्री पर भार था उसे बुलाकर महामंत्री ने परामर्श कि
और कहा कि वे सावधान रहें। षड्यन्त्र तिष्यरक्षिता के महल से आरम्भ हु
है। ध्यान रखें कि वहां कौन-कौन जाता है। और भी बहुत-सी बातें उन्होंने बता

नगर-रक्षामंत्री ने कहा, "मुझे सब कुछ पता है। मैं सावधान हूं। तिस्स
भी मुझे संदेह है।"

महामंत्री ने कहा, "अरे, ऐसा न सोचो! आचार्य तिस्स एक सन्त पुरुष है
वे केवल धर्म की ही बात सोचा करते हैं और उनका प्रत्येक कार्य संतुलित हो
है। ऐसा व्यक्ति दूसरा नहीं हो सकता। ऐसे विद्वान और स्वभाव से सन्त क
ही मिलेंगे।"

नगर-रक्षामंत्री ने अपनी भूल के लिए खेद प्रकट किया और कहा, "मैं
आचार्य को समझने में भूल की थी।"

महामंत्री बोले, "वे बौद्ध धर्मावलम्बी स्थविर हैं। हम बौद्ध धर्म के उतने ह
भक्त हैं जितने भागवत-धर्म के। भगवान बुद्ध को हम श्रीराम और श्रीकृष्ण क
तरह ही अपना आराध्य देव मानते हैं—बौद्ध धर्म तो हमारे आर्य धर्म की एक
शाखा-मात्र है फिर उससे विरोध कैसा!"

नगर-रक्षामंत्री बोला, "आपका कथन सर्वमान्य है। मैं भी ऐसा ही सोचत
हूं।"

महामंत्री ने कहा, "जो राज्य में अशान्ति पैदा करने में रस लेते हैं वे दुर्भाग्य
से बौद्ध धर्मावलम्बी हो सकते हैं, इससे बौद्ध धर्म पर हम आक्षेप क्यों करें? बौद्ध
धर्म आज लुप्तप्राय है और मैं चाहता हूं कि वह अपने गुणों के साथ उचित स्थान
प्राप्त करे जिसे उसने गंवा दिया है। हम विचारों की स्वाभाविक गति को दब
देंगे तो ज्ञान का बहुमुखी विकास रुक जाएगा।" शशिमित्र सब कुछ सुनता रहा और

महामंत्री विश्राम करने गए तो उनके पैर दबाता हुआ वह बोला, "आचार्य हा था कि विचारों की स्वाभाविक गति को यदि दबा देंगे तो ज्ञान का बहुमुखी ाम रुक जाएगा, इसका मर्म क्या है ?"

आचार्य बोले, "वत्स, विचारों के द्वारा ही हम संचालित होते हैं, जैसा सोचते सा ही बन भी जाते हैं। गहराई में न जाकर संक्षेप में यही जान लो कि विचार र होते हैं। मैं बुरे विचार की बात नहीं कर रहा हूं, सात्त्विक विचार जानो। ारों को दबाने का फल अच्छा नहीं होता, हम यही देखें कि अकल्याणकर ार तो नहीं उभर रहे हैं। ऐसे विचारों को तो सिर कटाकर भी रोकना हमारा है, किन्तु जिन विचारों से जनता को अभ्युदय, श्रेय और सिद्धि का प्रकाश मिलता ह विचार त्रिकाल-पूजित हैं। जितने भी ज्ञान-ग्रंथ आज संसार में हैं और जितने गुण ससार में हैं वे विचारों की ही देन हैं।

आचार्य सो गए और शशिमित्र सोचने लगा कि मैंने अपने कुविचारों के थ नरमी बरती है, जो मेरे जीवन को अन्धकार से भरते जा रहे हैं। दूसरी त, जो उसके दिमाग में हलचल मचाने लगी, वह यह कि शैवाल तिष्य-क्षिता की दासी है और वह जो उससे इतना दुर्दान्त प्रेम करती है, उसके भीतर छ विष अवश्य है। वह अनिंद्य सुन्दरी नारी क्या नहीं कर सकती ?

शशिमित्र ने अपने को धिक्कारा और कहा, 'तब तो मैंने गुरुद्रोह भी किया, किया नहीं तो पाप का प्रकारान्तर से साथ तो अवश्य दिया, यह तो स्वत्वनाश से ी बुरा पाप मैंने कमाया। मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी और आश्रमनिवासी एक पतिता में लिप्त हो गया तो इससे मेरा ही नाश होगा, किंतु अब देखता हूं कि मेरे चलते रे आचार्य, और मेरी मातृभूमि पर भी आफत आ सकती है। शैवाल का प्रेम किसी संगठित षड्यन्त्र का ही एक पुष्ट अंग है।

चिंता के आघात-प्रतिघातों के कारण शशिमित्र सो न सका। रह-रहकर उसका सारा शरीर जल उठता था।

अब शैवाल उसके सामने एक पिशाची की तरह थी, अप्सरा की तरह नहीं। ज्यों-ज्यों शशिमित्र गहराई से विचार करता उसे ऐसा लगता कि शैवाल के शरीर का रंग, चमड़ी, मांस, सब कुछ हवा में उड़ता जा रहा है, अन्त में एक भयानक ककाल के रूप में वह रह गई। चीखकर शशिमित्र उठ बैठा और बोला, "तू यही है, यही है !"

उसने अनुभव किया कि सड़े-गले मांस की दुर्गंध चारों ओर से उसे घेरती
रही है। शशिमित्र का जी मतलाने लगा। वह अपने बिछावन से उछलकर
आकाश के नीचे खड़ा हो गया और बोला, "अरे तू इतना भयानक है, इतना दुर्ग
पूर्ण, इतना···इतना।'

अपने ही विचारों और कल्पनाओं के आघात-प्रतिघात को न सह सकने
कारण शशिमित्र छटपट करता हुआ इधर-उधर चक्कर काटने लगा। उसने देख
रात समाप्त हो रही है और कृष्ण पक्ष की पीली चांदनी गंगा की अमल-धव
धाराओं पर अलसाई-सी पड़ी सो रही है। आकाश में ताराओं का अभाव था। कु
रात्रिचर पंछी तेज़ी से अपने घोंसलों की ओर जा रहे थे। वातावरण में सात्त्वि
शान्ति थी। ऐसा लगता था कि वृद्धा रात्रि आशीर्वाद देकर विदा हो रही है। मौलश्
के वृक्ष के नीचे बैठकर फिर शशिमित्र विचारों में डूबा, किंतु इसी समय आचार्य
हरिस्मरण किया। वह चौंका और दौड़कर उनकी सेवा में उपस्थित हो गया।

आचार्य तिस्स भी उषःकाल में उठे।

उनका शिष्य पद्मसंभव पहले ही से तैयार बैठा था। तिस्स ने कहा, "आय
ष्मान, सारी रात मुझे नींद नहीं आई।"

पद्मसंभव ने प्रश्नसूचक दृष्टि से अपने आचार्य की ओर देखा तो आचा
कहने लगे, "मैं चाहता था कि राजगृह में उस शांति को बटोरकर अपने सा
तक्षशिला ले जाऊंगा जो यहां की धूल में मुझे मिलेगी, किंतु आयुष्मान, परिणा
उलटा नज़र आता है। मैं यहां की अशांति का ही सिर पर भार लादने आया हूं।

इतना बोलकर तिस्स मौन हो गए। पद्मसंभव समझ नहीं सका कि उस
आचार्य शांति और अशांति की चर्चा उठते ही क्यों करने लगे। महादेवी तिष्य
रक्षिता भी इसी समय अपनी नरम शय्या से उठी और एक मदभरी अंगड़ाई लेक
उस दासी से बोली जो रात-भर शय्या के सामने खड़ी थी, "अरी, नगरद्वार खुल
ही तू आचार्य चंड के निकट चली जाना और कहना कि वे शीलभद्र को भेज दें
न जाने क्यों मैं सारी रात सो न सकी।"

दासी ने निवेदन किया, "महादेवी का स्वास्थ्य तो ठीक है न ?"

तिष्यरक्षिता ज़ोर से तकिये पर हाथ पटककर बोली, "चुप रह। मैंने ज
कहा तू उतना ही सुन और वही काम कर। आचार्य का घर तू जानती है न ?"

दासी भयाकुल होकर बोली, "महादेवी के आदेश से बहुत बार गई।" इतन

ते ही उस युवती और सुन्दरी दासी का चेहरा घृणा से विवर्ण हो गया। यदि महादेवी के सामने खड़ी नहीं होती तो वहीं फर्श पर ही थक देती।

उस दासी के सामने एक डरावने जंगली भैंसे की तस्वीर उभरकर मिट गई र फिर तत्काल ही उसकी नाक में सड़ी हुई सस्ती शराब के साथ सड़े हुए दांतों कारण मुंह से निकलनेवाली बदबू भी घुस पड़ी। क्षण-भर में ही चंडाचार्य गली से लेकर उनके पूरे घर, उनकी सील-भरी बदबूदार कोठरी और उनके से आनेवाली बास के साथ ही उनका जघन्य व्यक्तित्व उस दासी के सामने ट हो गया। वह अपने भाग्य को धिक्कारने लगी कि ऐसा दंड दुर्भाग्य ने उसे ों दिया।

शैवाल की भी आंखें उषःकाल में ही खुलीं। अत्यधिक मद्यपान करके विचारों आघातों से आत्मरक्षा करने का जो प्रयास उसने पिछली रात किया था उसके लस्वरूप उसका सिर फटा पड़ता था। वह उठी और दोनों नरम हथेलियों से पना सिर दबाकर बोली, "अब सहा नहीं जाता। महादेवी मुझे पेर रही हैं। न जैसी दुष्टा स्त्रियों का हृदय पत्थर का होता है जिसपर वे अपनी कुबुद्धि की ुरी तेज़ किया करती हैं।"

शशिमित्र की लुभावनी और उन्मादक तस्वीर उसके सामने उभर पड़ी और ह बोल उठी, "मैं तो चाहती हूं अभागे, कि तेरे चरणों पर अपने वर्तमान और विष्य को न्योछावर कर दूं, किंतु इस राक्षसी ने मुझे कैद कर रखा है। अब सहा नहीं जाता। क्या करूं, उफ!"

२१

धर्म के मर्मज्ञों का मत है कि इसका उपयोग अभ्युदय, श्रेय और सिद्धि के लिए करना चाहिए, किंतु मानव धरती का ही एक जीव है और वह ऊपर उठना नहीं चाहता है, धरती का मिथ्या मोह उसे इस तरह ग्रसे रहता है कि मत पूछिए।

धन के लिए, अधिकार के लिए, सुख और ऐश-भोज के लिए वह इतना ललचता रहता है कि चाहे जिस उपाय से ही क्यों न हो, मानव यश, धन, अधिकार और ऐश-मौज प्राप्त करने का प्रयास किए बिना नहीं रह सकता---उचित-अनुचित का सवाल ही उसके आगे पैदा नहीं होता, यह ज़ाहिर है।

चंडाचार्य भी धर्म की आड़ में बैठकर जो जाल फैला रहे थे वह भले शुद्ध का गला घोटनेवाला ही क्यों न हो, किंतु वे न तो अपनी हरकतों से बाज आ चाहते थे और न उचित क्या है यह जानने के लिए ही तैयार थे।

आचार्य तिस्स से वे निराश हो चुके थे क्योंकि उनके विचार से धर्म का अभ दय षड्यन्त्र द्वारा होना संभव नहीं था। आचार्य का मत था कि तथागत ने जि धर्म की स्थापना की है वह स्वयं इतना बलवान है कि उसके लिए उत्पात क की आवश्यकता नहीं है। आज नहीं तो कल जनता उस धर्म के महत्त्व को स भेगी ही और अपना समर्थन उसे शुद्ध हृदय से देगी, किंतु चंडाचार्य का विश्व था कि लाठी के रहते तर्क का आश्रय ग्रहण करना मूर्खता है और उनकी दृष्टि सबसे प्रचंड मूर्ख आचार्य तिस्स थे जो चंडाचार्य की लाठी के महत्त्व को धर्म-विरो मानते थे।

चंडाचार्य ने अपने अनुयायियों को जमा किया। रात आधी से अधिक बी चुकी थी। पाटलिपुत्र की गलियां सूनी हो गई थीं तथा नगर-रक्षकों की टोलि सतर्कतापूर्वक घूम रही थीं जिनके साथ बड़े-बड़े भयावने कुत्ते भी थे जिनका क था भागते हुए अपराधी को झपट्टा मारकर बेकाबू कर देना।

चंडाचार्य का गुप्त घर नगर के एक कोने मे था और वहां आसानी से व पहुंच सकता था जो दिन को कहीं छिपकर रहने का अभ्यासी हो और रात अंधकारपूर्ण जीवन को अपना जीवन मानता हो।

जब चंडाचार्य के विश्वासी साथी जुट गए तो शीलभद्र ने दो-तीन बदबूद जंभाइयां लेकर कुछ बोलना चाहा। चंडाचार्य ने शीलभद्र को अपनी जगह से बा बार उचकते देखकर कहा, "अबे, नाच क्यों रहा है? क्या कहना चाहता है बोल भी

शीलभद्र को चंडाचार्य का यह व्यवहार बहुत ही भद्दा जान पड़ा। उसने कह 'कहूं क्या, आप तो सुनते ही नहीं। मामला गंभीर हो गया है।"

चंडाचार्य अपने भारी शरीर को बिल्कुल सीध में रखकर गरजे, "गलत बा है। मामला गंभीर नहीं है, हमारे अनुकूल है। तू मिथ्या भय फैलाकर हम साहस की कमर तोड़ना चाहता है।"

एक भिक्खु बोल उठा, "भगवन्, जब मैं आ रहा था तो नगर-रक्षकों ने मु देख लिया। मैं एक घने पीपल के वृक्ष पर चढ़ गया फिर···"

चडाचार्य ने गुर्राकर कहा, "काम की बात कर। हम यह जानकार क्या करें

तू किस वृक्ष पर चढ़ा था।"

एक दूसरा भिक्खु बोला, "वह दिन दूर नहीं है, जब नगर-रक्षक हमारे चीवर र भिक्षापात्र की चौकसी करने में गौरव का अनुभव करेंगे। वे हमारे दासानु- ब बन जाएंगे। हम सफलता के निकट पहुंच रहे हैं।"

चंडाचार्य बोले, "मगर कांटा है वह मनहूस बूढ़ा राधगुप्त। इसने समस्त ाध साम्राज्य को जैसे उदरस्थ कर लिया है। चंड अशोक भी इसीका दास है। दे राधगुप्त रास्ते से हट जाए तो···"

शीलभद्र ने कहा, "सारा साम्राज्य रसातल को चला जाएगा—एकदम रसा- ल। ऐसा योग्य महामंत्री मिलना क्या संभव है भगवन् ?"

चंडाचार्य ने शीलभद्र के इस वक्तव्य को अपना अपमान समझा। क्या राध- प्त उनसे अधिक योग्य है ? कभी नहीं। विधर्मी में योग्यता हो कैसे सकती है !

चंडाचार्य अपना सारा बल समेटकर आसन पर से उछले किंतु कमर में दर्द रहने के कारण थोड़ा-सा उचककर ही रह गए और वाणी में अभूतपूर्व प्रखरता आ गई। उन्होंने शीलभद्र के पूर्वजों का संबंध कुत्ते और गधे जैसे हीन पशुओं से स्थापित करते हुए कहा, "अरे मैंने अहिंसा का पवित्र व्रत धारण किया है नहीं तो तेरा खून पी लेता।"

शीलभद्र ने भी उसी स्वर में कहा, "जैसी भाषा आप बोल रहे हैं उसी भाषा का प्रयोग करके मगध साम्राज्य का महामंत्री बनिएगा ? हिंसा तलवार से ही नहीं वाणी के दुरुपयोग से भी होती है।"

एक भिक्खु ने चंडाचार्य को शांत करते हुए कहा, "आप उबल क्यों पड़ते हैं ? सभी तरह के विचारों को शांत मन से सुनिए। यह तो शीलभद्र की ईमानदारी है जो अपने मन के भाव छिपाता नहीं। इसकी भी दल को ज़रूरत है, क्या आप ऐसा नहीं समझते ?"

चंडाचार्य हांफते हुए बोले, 'यह छोकरा धर्मद्रोही है। हम जब यहां धर्म की रक्षा के लिए मारने-मरने को उद्यत हो रहे हैं यह ऐसी बातें बोलता है कि दल में निराशा फैल जाने का संदेह है।"

उसी भिक्खु ने फिर कहा, "आचार्य, यह बच्चों का खेल नहीं है। एक सुग- ठित और सर्वश्रेष्ठ शासन से उलझना है। राधगुप्त निश्चय ही जनता का आदमी है। अशोक यदि साम्राज्य के शरीर पर शासन करता है तो महामंत्री साम्राज्य

की आत्मा पर शासन करता है।"

चंडाचार्य बोले, "तथागत आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानते थे।"

भिक्खु बोला, "यहां इस नियम पर तर्क-वितर्क करना व्यर्थ है। आप आत्म का अस्तित्व नहीं मानते किंतु जिस साम्राज्य का प्रश्न यहां उपस्थित है, आत्म के अस्तित्व को मानकर ही चलता है।"

चंडाचार्य ने झल्लाकर कहा, "हमें धर्म के लिए मर मिटना चाहिए।"

वह भिक्खु बोला, "धर्म स्वयं शाश्वत तत्त्व है। उसके नाम पर मरने व आवश्यकता नहीं है। मैं गलत तर्क से घृणा करता हूं।"

चंडाचार्य फिर हवा में दोनों हाथ उछालकर बोले, "मुझे तुम्हारी सूरत घृणा है। क्या मैं कुतर्की हूं या तुम्हारी तरह मूर्ख ?"

वह भिक्खु शांत स्वर में कहने लगा, "आप मुझसे ज्येष्ठ हैं और ज्ञान तथ तपस्या में भी श्रेष्ठ हैं। मैं आपकी बातों का आदर करता हूं। किंतु राजनीति क रास्ता बहुत ही खतरनाक होता है। जिस चूल्हे को बहुत ही यत्न से जलाते हैं वह हमारे घर को भी फूंक दे सकता है। प्रेम से पाला हुआ विषधर भी ज़रा-सा चूकते ही काट खाता है, उसी तरह राजनीति भी ज़रा-सी गफलत होते ही अपने संचालक को कुचल डालती ही नहीं, उसका सवंश नाश कर देती है।"

चडाचार्य ने नरम स्वर में कहा, "मैं उस ज़िद्दी और मूर्ख राधगुप्त से अधिक ही राजनीति को समझता-बूझता हूं। घबराने की ज़रूरत नहीं है।"

इतना बोलकर चंडाचार्य ने ऊंघते हुए भिक्खुओं की ओर देखा। उन्हें आशा थी कि उनके इस परम सारवान वक्तव्य का ज़ोरदार समर्थन होगा, किंतु भद्दे और मूर्खतापूर्ण सन्नाटे में उनकी बातें जैसे डूबकर समाप्त हो गईं।

खिन्न मन से चंडाचार्य फिर बोलने का प्रयास करने लगे किंतु शीलभद्र बोल उठा, "आखिर हम यहां जमा किसलिए हुए, यह तो पता ही नहीं चला। बेकार बातों में फंसे रहने से तो सोना अच्छा है।"

चंडाचार्य को बोलने का विषय मिल गया। वे छाती तानकर मुर्गे की तरह इधर-उधर देखने लगे और उनके काले और मोटे-मोटे होंठों के बीच से वाणी-वैभव प्रकट होने लगा।

कुछ देर तक असबद्ध वाक्यों की झड़ी लगी रही और फिर एकाएक उठने की चेष्टा करते हुए चंडाचार्य गरजे, "बस अब सहा नहीं जाता। रात को स्वयं

ागत प्रकट हुए और बोले···"

एक भिक्खु बोला, "यह सरासर झूठ है। तथागत अब कहीं नहीं रहे। निर्वाण ा अर्थ है शून्य में विलीन हो जाना। मैं झूठी बातों से घृणा करता हूं और शायद ाचार्य भी मेरी सूरत से घृणा करते होंगे।"

चंडाचार्य नरम पड़ गए और बोले, "तुम्हारा कहना सत्य हैं कि अब बुद्ध कहीं ो नहीं रहे—शून्य बन गए किन्तु हमारे भीतर वे उसी रूप में हैं।"

गरमागरम बहस के बाद यह तय हुआ कि अब तथागत कहीं नहीं रहे, किंतु यह य नहीं हो सका कि राधगुप्त को कैसे मार भगाया जाए और किसी सद्धर्मी को वशाल मगध साम्राज्य का महामंत्री बनाया जाए। इस बात में भी सभी सहमत थे क राधगुप्त के रहते मगध साम्राज्य की शक्ति को लुप्तप्राय बौद्ध धर्म के पुनरुद्धार की दिशा में नहीं लगाया जा सकता।

शीलभद्र ने कहा, "जब भगवान धरती पर विहार करते थे उस समय तो यहां अबौद्ध-शासन था, फिर उन्होंने ज्ञान की ज्योति कैसे फैलाई ?"

इस सवाल का जवाब यही था कि शीलभद्र को पछाड़कर खूब पीटा जाए किन्तु कमर में तेज़ दर्द रहने के कारण चण्डाचार्य पराक्रम प्रकट करने की स्थिति में नहीं थे। यदि वे अच्छी तरह उछल-कूद मचा सकते तो उस दिन अभागे शीलभद्र का मुंह वे ढोल की तरह पीटकर ही दम लेते।

रात भी अधिक व्यतीत हो रही थी। नगर-रक्षकों का खतरा भी बढ़ रहा था। साथ ही चण्डाचार्य भी एकांत की कामना कर रहे थे।

ठीक इसी समय एक भिक्खु ने आकर चण्डाचार्य के कान में कुछ कहा, और वे एक झटके में उठ खड़े हुए।

इसके बाद ?

बुद्धदेव की तरह चीवर को अच्छी तरह लपेट, और दाहिने हाथ को अभय-मुद्रा का रूप देकर अत्यन्त धीर-गम्भीर स्वर में बोले, "धर्म की जय हो ! अब आप लोग जाएं। एक अत्यन्त आवश्यक संवाद आया है जिसे जानकर ही भविष्य की कल्पना हम कर सकते हैं। महामहिमामयी मगध-माता का कल्याण हो !"

शीलभद्र ने पूछा, "यह मगध-माता कौन है ?"

चण्डाचार्य निर्मल मुस्कान के साथ बोले, 'जान लोगे आयुष्मान, जान लोगे। अतिप्रन करना वर्जित है। हम अत्यन्त गम्भीर स्थिति में हैं, अतः शांत बने रहो।

देखो, सफलता का सूर्य गंगा के उस पार प्रकट होने ही वाला है।"

कराहकर चण्डाचार्य बैठने का प्रयास करने लगे और इधर भयभीत भिक्खु सिर पर पैर रखकर भाग खड़े हुए।

एक अंधकारपूर्ण पानशाला के पिछले द्वार से भीतर घुसते हुए शीलभद्र ने अपने एक साथी भिक्खु से पूछा, "अरे यार, चण्डाचार्य इतना सोना कहां से लाता है?"

वह भिक्खु बोला, "तुम नहीं जानते क्या? सुनो, किसी सिद्ध ने उन्हें सोना बनाना सिखलाया है।"

शीलभद्र बोला, "और वह सिद्ध था तुम्हारा बाप जो चोरी के अपराध में जीवित जला डाला गया था—क्यों, यही बात है न?"

वह भिक्खु बोला, "तुम्हें गाली देने का पूर्ण अधिकार हैं क्योंकि तुम चण्डाचार्य के सत्संग में बराबर रहते हो।"

शीलभद्र खिलखिलाकर हंस पड़ा और बोला, "पहले गला सींचने की बात सोचो फिर सोना-चांदी पर विचार करेंगे।"

पानशाला का पुराना और सड़ा-सा दरवाज़ा खुला और एक व्यक्ति ने दोनों को अन्दर करके फिर से दरवाज़े को बन्द कर दिया। अब जिस कमरे में दोनों भिक्खु थे वहां पहले से कई व्यक्ति अर्धचेतावस्था या अचेतावस्था में फर्श पर दखल करके आराम कर रहे थे। मदिरा की तेज़ और उन्मादक बदबू उस घर के गन्देपन में चार चांद लगा रही थी। दीपाधारों में जो दीपक जल रहे थे उनके मटमैले प्रकाश में मद्यपों के सूजे हुए चेहरे भूत की तरह नज़र आते थे। शीलभद्र भी अपने साथी के साथ एक कोने में बैठ गया। इसके बाद भिक्षापात्र में भर-भरकर सोमसुधा का पान वे 'ज्ञानपूर्वक' करने लगे। अज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म बन्धन बन जाता है किंतु ज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म अपना कोई असर नहीं छोड़ता यदि यह बात नहीं होती तो वे भिक्खु मद्यपान जैसे गर्हित कर्म में प्रवृत्त हो ही होते? दो-चार घूंट पेट में जाते ही उन दोनों की संस्कार-ग्रस्त बुद्धि सीधे प्रज्ञा में बदल गई और प्रज्ञा ने उन्हें सत्य का प्रकाश दिया। शीलभद्र ने झूमते हुए कहा, "तुम जानते नहीं रे भिक्खुकुल-कलंक, तिष्यरक्षिता ने अपने अघट स्वर्ण-कोष की चाभी हमारे आचार्य के चरणों पर···"

उस भिक्खु ने गुर्राकर कहा, "तिष्यरक्षिता भी ज़रूर दो-चार घूंट पीती हो स्वयं

ही मूर्खता शराबी ही कर सकता है···धत्तेरे की !"

उन दोनों में से किसीको भी पता न था कि उनकी बातों को एक 'बेहोश' व्यक्ति मन लगाकर सुन रहा है।

शीलभद्र ने कहा, "अब वह दिन दूर नहीं है जब हमारे प्रातःस्मरणीय परम उपोधन आचार्य···अरे, तू ऊंघ रहा है क्या ?"

सचमुच दूसरा भिक्खु झपकियां ले रहा था। वह चौंककर बोला, "नहीं जी, एकाएक निर्विकल्प समाधि लग गई। कितना आनंद आता है जब शाश्वत ज्योति में अपने को डूबते हुए देखता हूं और—अरे बाप रे !"

जब वह भिक्खु समाधि-सुख का वर्णन कर रहा था शीलभद्र ने संभलकर उसके गाल पर एक ज़ोरदार तमाचा जड़ दिया। पटाखा छूटने जैसे शब्द के साथ 'अरे बाप रे' का आर्तनाद गूंज उठा।

मद्यपों के ऐसे आचरण से किसी मद्यप को आश्चर्य क्यों होने लगा ? इसके बाद दोनों भिक्खुओं ने मल्लविद्या का प्रदर्शन किया। जो मद्यप होश में थे उन्होंने जी खोलकर दोनों त्यागी पुरुषों को सराहा, किंतु बार-बार पटके जाने के कारण शीलभद्र का बुरा हाल था। दूसरा भिक्खु भी मार खाकर भिन्ना उठा था।

मद्यशाला की एक गंदी कोठरी में यह दृश्य उपस्थित था और एक मील की दूरी पर आचार्य चंड के गढ़ में दूसरा ही दृश्य अपना विस्तार कर रहा था।

तिष्यरक्षिता की भेजी हुई दूती आई थी, वह भोर को भी आई थी तथा आवश्यक संवाद लेकर आधी रात को भी आई। चंडाचार्य अपनी गुप्त कोठरी में बैठकर तिष्यरक्षिता का संदेश सुनते रहे। जब उनके कान तृप्त हो गए तो दासी के कंधे पर अपना भारी हाथ रखकर कहा, "तू स्वर्ग की देवदूती-सी जान पड़ती है।"

दासी झटका देकर उस मोटे हाथ से अपने कंधे को मुक्त करके बोली, "दूर हटिए, मैं मागधेश्वरी से सारी बातें कह दूंगी तो···" चंडाचार्य की आंखें उसी तरह चमक रही थीं जैसे शिकार को सामने देखकर अजगर की आंखें चमकने लगती हैं।

चंडाचार्य ने कहा, "अरी अभागी, तू अनार्य जाति की दासी है और मैं हूं परम आर्य। यह तेरे परमोद्धार का अवसर है जिसका महत्त्व तू नहीं समझ सकी। चाहे हूं, यह तेरी रानी जानती है। जा दुष्टे, मरने पर तुझे वही नरक मिलेगा

जिसमें अनार्य कर्मफल भोगने जाते हैं। तू अभागी···"

चंडाचार्य ने जब अपना वाक्य पूरा करके इधर-उधर देखा तो दासी नहीं थी—वह थी या नहीं यह चंडाचार्य नहीं तय कर सके। वे भय से व्यग्र हो उठे। उन्हें ऐसा लगा कि कोई यक्षिणी दासी का रूप धारण करके आई होगी। अब कौन रक्षा करेगा!

चंडाचार्य थके हुए बैल की तरह ज़ोर-ज़ोर सांस लेने लगे। बात यह थी कि अत्यधिक मद्यपान कर लेने के कारण चंडाचार्य नशे में धुत थे और वे आंखें बंद करके अपना सारवान उपदेश उस अनार्य सुंदरी के कल्याणार्थ प्रदान कर रहे थे। मौका देखकर दासी ऐसे खिसक गई कि चंडाचार्य को पता ही नहीं चला। छोटा-सा प्रदीप दूर कोने में आत्मनिर्वाण की राह देख रहा था। अर्धअंधकारपूर्ण डरावने कमरे में चंडाचार्य इस तरह ठगे गए जैसे किसी भूतनी से पाला पड़ा हो।

वह काले वर्ण की अधेड़ दासी, जिसके आगे के दो दांत गायब थे, उस रात को चंडाचार्य के मुखपर थूककर भागी और इस तेज़ी से भागी कि जाकर एक नगर रक्षक से टकरा गई।

चंडाचार्य उस एकांत कोठरी में पिशाच की तरह खड़े-खड़े झूमते रहे और अंत में एक लोटा पानी पीकर लेट गए। समुद्र की ज़ोरदार लहरों की तरह मद्य का प्रभाव उन्हें कभी सातवें आसमान पर उठाकर धर देता था, फिर दूसरे ही क्षण धरती पर पटक देता था।

रात खिसकती हुई आगे बढ़ती चली गई। धर्म का आवरण अर्थात् चीवर को अच्छी तरह ओढ़कर चंडाचार्य सो गए। उनकी नाक किसी जंगली भैंसे की तरह कोठरी में गूंजने लगी।

इस तरह उस पापागार पर रात्रि का शांतिप्रद पर्दा लटक गया।

२२

सम्राट अशोक आचार्य तिस्स की सेवा में तत्पर रहने लगे, क्योंकि कलिंग-विजय के क्रम में होनेवाले भयानक रक्तपात ने परम योद्धा अशोक के मन को भी दहला दिया था।

आचार्य तिस्स की शांतिदायिनी वाणी और उनका अत्यंत निस्पृह जीवन

था कि कोई भी व्यक्ति, जिसका संस्कार कुछ भी उज्ज्वल हो, उनके निकट में अपार सुख का अनुभव करता था।

अशोक ने कभी यह सोचा भी न था कि वह बौद्ध धर्म ग्रहण करेगा या भागवत धर्म का त्याग, किन्तु सम्राट को आंतरिक शांति की आवश्यकता थी।

सोना चाहे इस खान का हो या उस खान का, उसका मर्म जाननेवाले उसे ही पसंद करेंगे ही। अशोक की दृष्टि में बौद्ध धर्म भी वैसा ही था जैसा भागवत धर्म। भागवत धर्म में भी बहुत-से आचार्य हुए और उनमें भी मतभेद रहा ही तरह भगवान बुद्ध भी एक महापुरुष थे जिन्होंने भागवत धर्म की व्याख्या ने विचारों के अनुसार कर डाली, तो इसमें विरोध का कहां स्थान है! धर्म को के सही रूप में समझनेवाले और परखनेवाले अशोक के सामने शुद्ध धर्म था। वेदों के द्वारा समर्थित हो या भगवान बुद्ध के द्वारा। जिस बहस को पंडित महत्त्व हैं उस बहस की ओर सत्यान्वेषी ध्यान देने की रुचि नहीं रखता। रास्ता चलने-ला यदि मानचित्र को लेकर ही सारा जीवन उत्पात मचाता रहे तो वह एक दम भी चल नहीं सकेगा।

अशोक ने यह बात जब अपने महामंत्री के सामने रखी तो उन्होंने कहा, महाराज, आपको प्रकाश चाहिए। यह कलह बेकार है कि वह प्रकाश सूर्य का हो चंद्र का, दीपक का हो या मशाल का। हां, प्रकाश उतना हो जितना आपके लिए उपयुक्त हो।"

तिष्यरक्षिता जो निकट ही बैठी थी, महामंत्री के विदा होने के बाद सम्राट से बोली, "आर्य, महामंत्री क्या कहते हैं, वह उतना महत्त्व नहीं रखता।"

चौंककर अशोक ने तिष्यरक्षिता की ओर देखा। उनका सुन्दर चेहरा खिन्नता से भर गया था। तिष्यरक्षिता कुछ सहम गई किन्तु उसकी जीभ रुकी नहीं। उसने अपने असम्पूर्ण वाक्य को इन शब्दों के साथ आगे बढ़ाया, "वे क्या करते हैं, यही देखना है।"

अशोक ने प्रश्न किया, "महारानी ज़रा अपने विषय को स्पष्ट करें।"

तिष्यरक्षिता ने अपना साहस बटोरकर कहना आरम्भ किया, "आर्य, महामंत्री निश्चय ही एक ऋषि और पारदर्शी विद्वान हैं। उनका जीवन अत्यन्त पवित्र और निस्पृहतामय है, किन्तु वे जिस पद पर हैं वह तो बहुत ही गम्भीर है।"

अशोक ने कहा, "हां, चुप क्यों हो गईं महारानी? सुन रहा हूं। आप कहना

क्या चाहती हैं ?"

"मैं यही निवेदन करना चाहती थी," तिष्यरक्षिता अपने सूखे होंठ चाटते बोली, "घोर राजनीति में लिप्त रहने के कारण महामंत्रीजी का प्रत्येक शब्द न कुछ गूढ़ार्थ रखता है। वह सीधी-सी बात को भी कुछ इस तरह रख देते हैं वह मकड़ी का जाल बन जाती है। यह उनका नहीं, राजनीति का दोष है जि वे आचार्य हैं।"

अशोक कहने लगे, "मागधेश्वरी, आप यह न भलें कि हम प्रजा के सेवक म हैं और महामंत्रीजी प्रजा के मार्गदर्शक हैं, नेता हैं। आप ऐसा समझें कि बिंदुओं को मिलानेवाली सरल रेखा की तरह हमारे आदरणीय महामंत्री साम्रा का हित कर रहे हैं। प्रजा और राजा के बीच में जो अन्तर है, दूरी है, उस महामंत्री ही तो पुल बनकर सरल बना देता है।"

यद्यपि तिष्यरक्षिता को अशोक का यह तर्क रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ पि भी वह मुस्कराई और कहने लगी, "आर्य का कथन उचित है, किन्तु···"

चौंककर अशोक ने टोका, "किन्तु ? यह किन्तु क्या है महारानी ? आप इ किन्तु-परन्तु से ऊपर उठने की चेष्टा कीजिए। मैं जानता हूं कि इन अभागे शब्द के चलते कितने ही डूब मरे। जो चरम सत्य है वह अद्वय है, वहां किन्तु-परन्त का कोई मोल-महत्त्व नहीं है।"

इतना बोलकर अशोक उठ खड़े हुए। संध्या हो रही थी। सिंहपौर पर बजने वाले मंगलवाद्य से 'ईमन' का सुन्दर स्वर गूंज रहा था।

सम्राट संध्या-वंदन करने चले।

साक्षात् धर्म की तरह तपस्वी पुरोहित ने उपासना-गृह में प्रवेश किया तिष्यरक्षिता खिन्न मन से अपने महल में पहुंची और आसन पर बैठ गई। गंगा और सोन के संगम का दृश्य बहुत ही मनोरम था जो दूर पर था। महल की दीर्घा पर खड़ी होकर यौवन-मदोन्मत्ता तिष्यरक्षिता उस दृश्य को देख रही थी। सूर्यास्त हो चुका था और जल पर आकाश की हल्की ललाई इस तरह चमक रही थी मानो गला हुआ शुद्ध सोना वह रहा हो। शांत, निर्मल आकाश में बसेरे के लिए जाने-वाले पंक्षियों का कलरव गूंज रहा था जिससे यह प्रमाणित होता था कि निश्चय ही आकाश शब्दमय होता है।

हवा के हल्के झोंके से महारानी का अंचल रह-रहकर अस्त-व्यस्त हो जाता था

ा उनके अत्यन्त लुभावने चेहरे पर दो-चार घुंघराली लटें भी खेलने लगती थीं न्हें अपने नरम, भरे हुए और लाल हाथों से वे हटा दिया करती थीं।

दासियां दूर से ताक-झांक करके चली जाती थीं। किसीमें इतना साहस नहीं ता था कि बिजली की तरह क्षण-भर में कौंध उठनेवाली मागधेश्वरी तिष्यरक्षिता निकट जाए।

संध्या ने रात का रूप ग्रहण किया। आकाश ताराओं से भर गया किन्तु महानी दीर्घा पर ही खड़ी रहीं। वे अपने विचारों में उलझी हुई आत्मविस्मृता-सी ड़ी थीं।

जिस समय किसान और मजदूरों की स्त्रियां काम पर से लौटनेवाले पुरुषों के भोजन-आराम की व्यवस्था अत्यन्त स्नेह और उल्लास के साथ करती थीं, दिनभर के कष्टदायक वियोग का सुहावना अन्त उन भोली-भाली नारियों के होंठों पर तरल मुस्कान-विभा फैला देता था, उस समय विपुल गौरव और कुबेर जैसी संपदा की अधिकारिणी मागधेश्वरी चिन्ता के तूफान में पड़कर बाह्य ज्ञान-शून्य-सी हो रही थीं। यह विधि की विडम्बना थी या और कुछ, इसका उत्तर आज तक किसीने भी नहीं दिया।

यदि धन, मान, यश, शक्ति, यौवन में जीवन का सात्त्विक आनन्द छिपा होता तो तिष्यरक्षिता के अधिकार में ये सारे पदार्थ थे, किन्तु वह तो एक गरीब, मजदूर-पत्नी, किसान-ललना जितनी भी सुखी नहीं थी। बाहर का सुख ऐसा ही होता है जैसे किसी भूखे के पेट पर कोई रोटी बांध दे या प्यासे के गले में शीतल जल का मटका बांधकर लटका दे।

शैवाल ने अपनी मदमाती चाल से उस दीर्घा में प्रवेश किया। उस उन्मत्ता का अंग-अंग जैसे यौवन के उद्वेग से फटा पड़ता था। उसने आते ही तिष्यरक्षिता का ध्यान यह कहकर भंग किया कि महामहिमामयी के दर्शनार्थ चंडाचार्य द्वार पर खड़े हैं।

तिष्यरक्षिता तेजी से घूमकर खड़ी हो गई और तेज स्वर में बोली, "कौन आया है ? उसे बाहर निकाल दो। मैं किसीसे मुलाकात नहीं करूंगी। सभी अविश्वासी हैं, बेईमान हैं, चोर हैं।"

शैवाल घबराकर दो कदम पीछे हट गई और धीरे से बोली, "आपके आदेशानुसार चण्डाचार्य पधारे हैं।"

अचानक तिष्यरक्षिता का स्वर नरम हो गया। वह बोली, "आचार्य ? उ ससम्मान बैठाओ। आती हूं।"

शैवाल सिर झुकाकर मुस्कराती हुई धीर-गम्भीर गति से चली गई। चंडाचा अपना भारी-भरकम शरीर का भार ढोकर महल के अन्दर आए और इस तर संभलकर बैठ गए मानो वे सदा सहज समाधि में लीन रहते हों। लगातार प्रया करके अपने अति कुरूप चेहरे को शांत बनाने का उन्होंने प्रयास किया था, अ वह और भी घिनौना बन गया था। जहां पर चंडाचार्य बैठे थे वहां का वातावर अत्यन्त जघन्य बन गया था।

जैसे पुण्य की ज्योति शरीर के बाहर भी फलती है वैसे ही कुकर्मों की बद भी शरीर के बाहर फलती है और वातावरण को बदबूदार बना डालती है।

चंडाचार्य को आसन पर पधरवाकर शैवाल कमरे से बाहर निकली औ इधर-उधर देखकर उसने फर्श पर ही थूक दिया। वह नाक सिकोड़कर आगे बढ़ गई और मन ही मन बोली, 'तिष्यरक्षिता भी अजीब गन्दी औरत है जो ऐसे जंगली भैंसे से बातें करती है। बाहर से देखने में रानी कितनी सुन्दर लगती है किंतु भीतर से यह अत्यन्त कुरूप और गन्दी है।'

शैवाल अपनी कोठरी में घुसी और शीशे के सामने खड़ी होकर बोली, "इस शीशे के सामने जब खड़ी होती हूं अपने-आपको ही देखती हूं। मुझे कितना आनंद मिलता यदि मेरे साथ शशिमित्र का प्रतिबिम्ब भी इसमें आपसे-आप फूट पड़ता— आह !"

वह छटपट करती हुई फिर कोठरी से निकली और प्रासाद के एकांत कोने में चली गई। उधर आम्रनिकुंज था।

शैवाल ने देखा, दो पंछी सटकर संध्या समय जिस डाल पर बैठे थे वह डाल ही अब नजर नहीं आती।

तो क्या दोनों सुखी जोड़ों को दुष्ट अंधकार ने निगल डाला ? शैवाल का मन रोष से भर गया और वह भी अंधकार के प्रति, जिसको दंड देने का कोई भी उपाय उसे मालूम नहीं था।

उसने अपनी कल्पना की आंखों से देखा—दोनों सुखी पंछी नरम पत्तों की सेज पर आराम से मनोहर स्वप्न देख रहे होंगे। उनके स्वप्न-देश में सुंदर खेत, नदी, बाग आदि होंगे, न कि अभागा चंडाचार्य और तिष्यरक्षिता।

शैवाल ने कल्पना की आंखों से गंगा-सोन का वह संगम-स्थल देखना आरंभ जहां पर महामंत्री की कुटिया थी, फिर उसकी आंखों के सामने शशिमित्र स्वीर उभर पड़ी। शैवाल अपने-आपमें इतनी खो गई थी कि वह बोल उठी, , तुम इस महल में ! कहीं प्रहरी देख लेंगे तो···आह, यह तो कोरी कल्पना तुम कल्पना ही बने रहोगे ?"

शैवाल ने अपनी आंखों को अच्छी तरह पोंछकर इधर-उधर देखा—वह महल की छत के एक एकान्त कोने में खड़ी थी। आकाश ताराओं से भरा हुआ हवा में रजनीगन्धा की उन्मादक सुगन्ध भरी हुई थी। यह रात का प्रथम चरण किन्तु सर्वत्र शान्ति छा गई थी। उसने लौटकर देखा, लम्बी-चौड़ी छत भी ा थी—एक ही मानव-हृदय वहां धड़क रहा था और वह हृदय था शैवाल का पे उसने सदा कुचला था। सच्ची बात यह है कि मानव एक अत्याचारी प्राणी कतु आश्चर्य यह है कि वह अपने ऊपर जितना अत्याचार करता है उतना शायद अपने जन्मजात बैरियों पर भी करता हो।

शैवाल ने भी अपने उफनते हुए यौवन को कुचल डालने का ही सदा प्रयास या, उसने कभी भी अपनी भावनाओं की कलियों को फूल बनने नहीं दिया। वह ली धुन में लगी रही कि जैसे ही उसकी तुनुक भावनाएं उभरने का प्रयास करें वैसे ा उन्हें दोनों हथेलियों से सावधानतापूर्वक मसल डाला जाए, फिर भी जवानी ी उमंगें दुर्दान्त होती हैं और उनके विद्रोही स्वभाव को समाप्त नहीं किया जा कता। एक या दस बार बुद्धि या लाचारी उन विद्रोहियों को समझाने का प्रयास करती है किंतु पलक झपकते ही वे फिर उभर पड़ते हैं।

शैवाल ने शशिमित्र को भी अपने ही जैसा पाया—इधर तिष्यरक्षिता का कठोर शासन था तो उधर राधगुप्त की तेज़ दृष्टि थी। यदि शैवाल अपनी स्वामिनी के बंधन में थी तो शशिमित्र आश्रम के बंधन में था—प्रथमाश्रम के बंधन में।

शैवाल लौट पड़ी। वह उस कमरे के दरवाज़े तक पहुंची जिस कमरे में चण्डाचार्य गुप्त परामर्श में लीन थे।

चण्डाचार्य की कर्कश आवाज़ सुन पड़ी, "मैं राधगुप्त से आपके साम्राज्य की रक्षा करने का प्रण कर चुका हूं।"

शैवाल उलटे पैरों लौट पड़ी क्योंकि छिपकर गुप्त बातें सुनना ऐसा अपराध था जिसका दण्ड सिर काट लेने के अतिरिक्त और कुछ न था। शैवाल निःशब्द

चलती हुई अपनी कोठरी में घुसी और खाट पर लेटकर चिंता में डूबने-उ
लगी।

वह जानती थी कि चंडाचार्य एक नीच व्यक्ति है और बौद्धों के भिक्
का कलंक है।

वह चाहती थी, यह भयानक संवाद किसी भी उपाय से शशिमित्र तक
दे, किंतु बाहर जाए तो कैसे। वह अपने ऊपर झुंझला उठी और अनन्योपाय
अपने सिर के बाल नोचने लगी। रोष और बंधन---इन दोनों के थपेड़ों ने उसे क
करीब पागल बना दिया। वह कभी खाट से उठती और फिर थरथराती हु
जाती। उसका सारा शरीर जल रहा था। वह जानती थी कि तपोधन रा
का यह पतित भिक्खु निश्चय ही अहित कर डालेगा।

शैवाल ने सोचा कि जब चण्डाचार्य कोठरी से बाहर निकले तो उसके
हुए पेट में छुरा घोंप दिया जाए। इस प्रयास का फल यही होगा कि शैवा
सिर भी कंधों पर नहीं रहेगा, किंतु इस राक्षस से राधगुप्त की रक्षा तो हो जा

शैवाल जानती थी कि राधगुप्त यदि नहीं रहे तो शशिमित्र भी चला ज
---वह यहां क्यों रहेगा ?

एक बार उछलकर शैवाल ने तकिये के नीचे से चमकता हुआ कटार
अस्त्र निकाला। फिर कुछ सोचकर उसने उसे यथास्थान रख दिया। किंतु
उसकी उग्रता ने सिर उठाया। इसी समय एक दासी ने आकर समाचार दिय
महारानी आर्ये उसे स्मरण कर रही हैं।

शैवाल भग्नमनोरथ हो गई। उसने भांप लिया कि चंडाचार्य चला गया,
तो उसे क्यों बुलाया जाता।

चंडाचार्य चले गए थे।

बात यह थी कि सम्राट राज्य-कोष से बीस लाख स्वर्णमुद्राएं आचार्य
को इसलिए देना चाहते थे कि वे बुद्धगया के नष्ट विहार को फिर से बनव
क्योंकि उसे अशोक ने ही नष्ट करवा दिया था। यह उस पाप का आंशिक प्र
श्चित्त था जो अपनी अत्यधिक उग्रता के कारण उन्होंने विहार को धराशायी क
किया था।

महाबोधि-वृक्ष को नष्ट करवाने का प्रायश्चित अभी बाकी था जिसके
अशोक अपने को तैयार कर रहे थे, 'जैसा घना अंधकार हो उसी अनुपात से प्र

तब न अन्धकार से पिंड छूट सकता है ?' सम्राट ने यह प्रश्न अपने महामंत्री ने रखा। नियमानुसार लिखित आवेदन प्राप्त होने पर मंत्रिपरिषद में र करने का वचन देकर महामंत्री चुप लगा गए। सम्राट के पुनः प्रश्न करने हामंत्री ने कहा, "मैं राज-राष्ट्रभृत हूं। राजा और राष्ट्र—दोनों का उत्तर- व मेरे कंधों पर है, अतः मंत्रिपरिषद के निर्णय की प्रतीक्षा कीजिए।" अशोक र कोई प्रश्न नहीं किया और महामंत्री चलते समय बोले, "न खल्वसौ राजा न्त्रिणोऽतिक्रम्य वर्त्तते।"[१]

(वह राजा राजा नहीं रह जाता जो मंत्रिपरिषद की उपेक्षा करता हो।)

महामंत्री के इस कठोर उत्तर ने अशोक को व्यग्र कर दिया। महाभिमानी क ने मन ही मन राधगुप्त को प्रणाम किया और कहा, "हे भगवान, जब तक मगध-साम्राज्य धरती पर रहे तपोधन राधगुप्त ही इसके रक्षक बने रहें !"

निश्चय ही राज्य का खज़ाना जनता का है, जनता का विश्वासप्राप्त प्रति- ध सम्राट नहीं, महामंत्री है। यदि राधगुप्त ने कठोर रुख अपनाया तो उन्होंने ने गंभीर कर्तव्य का ही पालन किया।

यह खबर किसी तरह तिष्यरक्षिता के कानों तक पहुंची तो उसने अपने अत्यंत खासपात्र चंडाचार्य को बुलाया।

यह तो स्पष्ट ही है कि वैधानिक संघर्ष आरंभ हो चुका था किंतु अशोक किसी तरह अपने महामंत्री के परामर्श का अनादर करने को तैयार न थे।

LIBRARY 2315

२३

क्या यह संभव है कि एक बीज कई जाति के वृक्ष पैदा करने की शक्ति रखता ो, जैसे आम का बीज हम कहीं लगा दें तो एक जगह कटहल तो दूसरी जगह रौंदा और तीसरी जगह नीम का वृक्ष उस एक ही बीज से प्रकट हो जाए ?

कारण का गुण ही उसके द्वारा संभव होनेवाले कार्य और कार्य से प्रकट होनेवाले परिणाम में फैलता चला जाता है—ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है किंतु राजनीति का अपना सिद्धान्तशास्त्र होता है। कपिल, कणाद, गौतम का वहां कोई आदर नहीं है और न इनकी वहा जरूरत ही है। जितने भी नीतिशास्त्र,

१. अर्थशास्त्र (कौटलीय)

धर्मशास्त्र, कर्मशास्त्र आज तक संसार में फैले हुए हैं उन सबसे ऊपर है अर्थशास्त्र स्वार्थशास्त्र। यही अर्थशास्त्र उपयोग-भेद से अनर्थशास्त्र बन जाता है और नीति में शुद्ध अर्थशास्त्र से यह अनर्थशास्त्र अधिक कारगर सिद्ध होता रहा है

महामंत्री राधगुप्त ने सम्राट के आग्रह का जैसा सीधा-सादा उत्तर दिया संवैधानिक था, किंतु इस उत्तर ने विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग असर पैदा कि तिष्यरक्षिता ने कुछ समझा, चंडाचार्य ने कुछ समझा और आचार्य तिस्स ने समझा।

आचार्य तिस्स ने पद्मसंभव से कहा, "आयुष्मान, मगध साम्राज्य तब अजेय ही रहेगा जब तक महामंत्री राधगुप्त की नीति का आदर सम्राट क रहेंगे।"

पद्मसंभव ने प्रश्न किया, "सो कैसे ? यह तो सम्राट का अपमान है। राज्य के खज़ाने का उपयोग यदि नहीं कर सकता तो फिर राजा बने रहने क्या अर्थ है ?"

आचार्य बोले, "वत्स, राजा स्वयं वेतनभोगी कर्मचारी है, वह खज़ाने वेतन पाता है—यह तुम नहीं जानते क्या ?"

"हां, जानता हूं", पद्मसंभव ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "किंतु यह भी सोचना है कि राजा का व्यक्तित्व महान होता है।"

आचार्य बोले, "यह गलत बात है। मंत्रिपरिषद की श्रेष्ठता को कोई व्यक्तित्व चुनौती नहीं दे सकता। महामति शुक्राचार्य का मत है कि—

रोधनं न भवेत्तस्माद्राजस्ते स्युः सुमंत्रिणः॥
न बिभेति नृपो येभ्यस्तैः स्यात्कि राज्यवर्द्धनम्।
यथालंकारवस्त्राद्यैः स्त्रियो भूष्यास्तथा हि ते॥

"तुम यह जान लो कि यदि मंत्री लोग राजा को नियंत्रण में न रख सकें तो क्या ऐसे मंत्रियों से राज्य का संवर्द्धन कभी संभव है ? ऐसी अवस्था में वे वास्तविक मंत्री न रह जाएंगे और उनकी स्थिति उन्हीं आभूषणों और अलंकारों जैसी हो जाएगी जो स्त्रियों के शरीर पर रहते हैं तुम्हें यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि सुराजत्व या सुनृपत्व का अर्थ है—नियंत्रित एकराजत्व।"

पद्मसंभव बोला, "आचार्य का कथन वंदनीय है किंतु फिर बुद्धगया के विहार का क्या होगा ?"

आचार्य तिस्स बोले, "बौद्ध धर्म ने विहार को जन्म दिया था, न कि उस ार के पेट से बौद्ध धर्म का जन्म हुआ। कोई भी धर्म अपने अनुपम गुणों के ण जनता के हृदय पर शासन करता है, न कि किसी राजा-महाराजा के अस्त्र ोर से। धर्म और तलवार में क्या सम्बन्ध है, यह मैं अब तक नहीं समझ ा।"

पद्मसंभव चुप लगा गया किन्तु उसका मन बोलता ही रहा, 'यह तो घोर र्थ हुआ है। सम्राट चाहता है कि बुद्धगया का विहार बन जाए और इस प्रकार द्ध धर्म का पुनरुत्थान हो, किंतु यह राधगुप्त एकदम अचल होकर बैठ गया है। मरियल ब्राह्मण में इतना साहस है कि वह महान अशोक से भी मुकाबला करने नहीं हिचकता!'

पद्मसंभव को चुप देखकर आचार्य तिस्स कहने लगे, "आयुष्मान, मैं तुझे चुप राना नहीं चाहता। तोष देना चाहता हूं। मैं समझता हूं, मेरे विचार तुम्हारे न को नहीं स्पर्श करते तो और सुनो—राजा सदा अपने मंत्रियों के नियंत्रण में रहता आया है—परतन्त्रः सदा राजा···संधि-विग्रहयोगे च कुतो राज्ञः स्वतंत्रता ·मंत्रे चामात्यसहिते कुतस्तस्य स्वतन्त्रता ?

"ऐसे बहुत-से नीति महावाक्य प्राचीन ग्रन्थों में आचार्यों के मिलते हैं जो व्यर्थ हीं हैं। तुम ऊपर उठकर सोचो—बहुत निम्न स्तर पर उतरकर इतने बड़े प्रश्न र विचार करना उचित नहीं है वत्स! स्वयं खज़ाने से वेतन पानेवाला राजा ाष्ट्र का वेतनभोगी कर्मचारी है। हां, यह बात ज़रूर है कि समान योग्यता वाले धिकारियों से उसे तिगुना वेतन मिलता है—'समानविद्येभ्यस्त्रिगुणवेतनो राजा' सा वाक्य अर्थशास्त्र में मिलता है।"

पद्मसंभव ने प्रश्न किया, "तो सम्राट के लिए उचित होगा कि वह अपने तन में मिले हुए धन से ही बुद्धगया के विहार का उद्धार कराएं।"

आचार्य तिस्स बोले, "यही उचित भी है और मुझे विश्वास है कि मंत्रिपरिद का यही निर्णय भी होगा क्योंकि सभी मंत्री महान अर्थशास्त्री और चोटी के ीतिज्ञ हैं। इतनी छोटी-सी बात वे नहीं समझेंगे, यह तो मैं मान ही नहीं सकता।"

अब चण्डाचार्य की ओर च' ए जो अपने एक अत्यन्त विश्वासी शिष्य के साथ विचार-विमर्श में लीन हैं।

सील की बदबू-भरी अर्ध-तमाच्छन्न कोठरी में गुरु-शिष्य इस तरह बैठे थे जैसे

बेताल किसी उत्पातपूर्ण योजना को अस्तित्व में लाने के लिए संलग्न हो।

वह शिष्य एक कुख्यात व्यक्ति था जो अपनी गर्दन बचाने के लिए चीवर
शरण में चला आया था। नगररक्षक उसे पहचानते तो जरूर थे किन्तु
विश्वास हो गया था कि अब उस जघन्य व्यक्ति के विचार शुद्ध हो गए होंगे। ब
यह है कि संस्कार बहुत ही प्रबल होता है। पानी का गुण है शीतलत्व। आग
सहयोग से वह उबलने तो जरूर लगता है किन्तु सहयोगी से अलग होने के ब
अपना गुण धारण कर लेता है। उसी तरह उस पतित व्यक्ति ने चीवर पहना अ
कुछ दिनों तक अपने गुरु के चरण-चिह्नों पर चलने का प्रयास भी किया, कि
फिर उसका संस्कार उबाल खाने लगा।

उस भिक्खु का नाम था अश्वलायन। सारे भारत की प्रदक्षिणा कर लेने
बाद अश्वलायन को चण्डाचार्य जैसा गुरु मिल गया—वह तृप्त हो गया। तब
वह निष्ठापूर्वक अपने निर्वाणमार्गी गुरु के लिए मद्य आदि जुटाता रहा औ
उनकी श्रुति-मधुर गालियां भी सुनता रहा। मौका पाकर अंधेरी रात को किसी
घर में घुसकर अर्थार्जन भी करता रहा। यह काम वह अपने पूर्व अभ्यास को सज
रखने के लिए किया करता था, यों तो चण्डाचार्य का जूठन ही उसके शरीर क
वज़न बढ़ाने के लिए पर्याप्त था—शुद्ध गव्यदुग्ध, घृतपक्व, अन्न, सुस्वादु मां
और लोटा-भर परम रुचिवर्धक मद्य की कमी न थी।

चण्डाचार्य ने अपने साधक शिष्य से कहा, "यही अवसर है जब तुम्हें गुरु-ऋ
से मुक्त होना है।"

अश्वलायन ने गम्भीर स्वर में कहा, "गुरुदेव, ताले-वाले तोड़ने का मु
अभ्यास है किंतु तीर चलाना मैं नहीं जानता। मैंने डकैती नहीं की है, यह तो आ
भी जानते हैं। आपका आदेश हो तो मैं महल में घुसकर महारानी के गले का हा
भी उतारकर ला सकता हूं किंतु मुझसे एक पिस्सू मारते भी नहीं बनेगा।"

चण्डाचार्य दांत पीसकर बोले, "तू···तू साला, अभागा है। मरने पर नर
तो जाएगा ही, जीवितावस्था में भी कुत्ते की तरह ही रहेगा।"

अश्वलायन हाथ जोड़कर कहने लगा. "मेरा एक मित्र इस फन का माहि
है कहिए तो उसे बुला लाऊं। देखते-देखते किसीका भी सिर उतार लेना उसके
लिए बायें हाथ का खेल है।"

चण्डाचार्य बोले, "खबरदार, यह बात किसीसे भी मत कहना। यदि बा

ः गई तो राधगुप्त तुषाग्नि में जीवित जलाकर खाक कर देगा।"

अश्वलायन सिर से पैर तक बेंत की तरह कांप उठा । वह ानता था कि धगुप्त कितना निर्दय शासक है।

चण्डाचार्य ने कहा, "तू जा, मैं सारी व्यवस्था कर लूंगा।"

राधगुप्त का रूखा-सूखा चेहरा जैसे ही चण्डाचार्य की आंखों के सामने झलका सके होश हिरन हो गए।

गिरते हुए मन को ताज़ा करने के लिए चण्डाचार्य ने भर-पेट मद्यपान किया न्तु ज़रा-सा भी नशा नहीं आया। उसके पेट में शराब जैसे खौलने लगी किन्तु शे का नाम न था। चंडाचार्य झुंझलाकर बोला, "साला···साला पिप्पलाद मद्य कर पात्र में पानी मिला देता है। मैं दो-तीन लोटा दुर्गंधपूर्ण पानी मद्य के नाम र पी गया, उफ्!"

अब गंगा-सोन संगम की ओर हम चलें। चण्डाचार्य का साथ ठीक नहीं है। रे आदमी की हवा भी संकट पैदा कर सकती है।

आचार्य राधगुप्त जब संध्या करके लौटे तो उन्होंने शशिमित्र से कहा, "वत्स, ायद अभी कुछ मंत्री यहां पधारें, अतः उनके लिए आसन आदि की व्यवस्था करके खो।"

"आसन की व्यवस्था ?"

उस कुटिया में दस-बीस दर्भासनों के अतिरिक्त और था ही क्या ! स्वयं हामंत्री खर-पात के बिछावन पर सोते थे तो वहां नरम और गरम गलीचा कहां से आया !

श्रेष्ठ और उच्चाधिकारी वहां प्रायः आते ही रहते थे, देश-देश के राजदूत और राजा-महाराजा भी आते थे, किन्तु सबके लिए दर्भासन ही था। उस त्यागी और तपोधन महामंत्री की शाश्वत संपदा उसके भीतर थी और बाहर थी फूस की झोंपड़ी और कुशासन।

ठीक समय पर मंत्रिमंडल के कई सदस्य आ गए और महामंत्री के चरण-स्पर्श करके अपने-अपने आसन पर बैठ गए। ऐसा लगता था कि बृहस्पति की सेवा में इंद्रादि दसों दिग्पाल उपस्थित हुए हैं।

उस रात को एक दीपक के बदले में दो-तीन दीपकों की व्यवस्था थी। गंगा के शांति प्रदान करनेवाले पुण्योदक को स्पर्श करके आनेवाली मंद मधुर वायु के

हल्के स्पर्श से सभी प्रमुदित हो रहे थे। सभी महामंत्री के शांत गम्भीर मुख
ओर देख रहे थे।

कुछ क्षण में महामंत्री के होंठ हिले और स्पष्ट शब्दों की वर्षा होने ल
बिना किसी शब्दाडंबर के महामंत्री ने उन बातों को स्पष्ट किया जो सम्राट
उनकी हुई थीं। बीस लाख स्वर्णमुद्रा से बुद्धगया के विहार को फिर से बन
की इच्छा सम्राट ने प्रकट की थी। इसके बाद महामंत्री ने अपना उत्तर भी
सुनाया जो उन्होंने सम्राट को दिया था।

सभी मंत्रियों ने साधु-साधु कहकर महामंत्री के कथन का अनुमोदन किय

महामंत्री फिर बोले, "सम्भवतः कल सम्राट का लिखित आवेदन परिषद
सामने आ जाए।"

धर्माधिकारी ने आदेश लेकर कहा, " वानप्रस्थादन्यः प्रव्रजितभावः सजा
दन्यः संघस्सामुत्थायकादन्यस्य मयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिवेशेत। न
तत्रारामविहारार्थाः शालास्युः।

"यह तो अर्थशास्त्र का ही आदेश है। व्यापारियों के अतिरिक्त और लोगो
बनाए हुए संघ आदि देश में स्थित या स्थापित नहीं होने दिए जाएं और न विह
या आराम आदि बनने दिए जाएं—ऐसा मत तो पूर्वाचार्यों का भी है। मैं आच
महोदय के विचारों का समर्थन तो करूंगा ही, साथ ही यह भी निवेदन कर
चाहूंगा कि हम राज्य के कोश का अपव्यय नहीं होने देंगे। जनता के धन के
तो संरक्षक हैं, स्वामी नहीं।"

बात यहीं समाप्त हो गई। धर्माधिकारी ने अकाट्य प्रमाण देकर यह स्प
कर दिया कि राज्य ऐसे कामों में हाथ नहीं बंटा सकता।

किसी नियम या कानून में स्वयं गति नहीं होती। उसके पालन कराने अ
करनेवालों का चरित्र-बल ही उसका बल होता है, उसकी गति होती है, यहां त
कि उसकी ज़िंदगी का केन्द्र भी उसके पालन कराने और करनेवालों का चरि
बल ही होता है।

मगध साम्राज्य की जनता का विश्वास अपने उन नेताओं पर था जो स
दृष्टि से वंदनीय और राज्य के प्रति पूर्ण वफादार थे तथा उन नेताओं के नेत
महामंत्री राधगुप्त।

मंत्रिपरिषद की उस अनौपचारिक बैठक में जो निर्णय हुआ वह अंतिम थ

ीका यह था कि जब कोई बहुत ही गम्भीर प्रश्न उपस्थित हो जाता था, जिस- मंत्रिमंडल को अपना निर्णय देना होता था, तो महामंत्री परिषद की बैठक के अपने मंत्रियों का मन टटोल लेते थे जिससे परिषद में मतभेद और अनावश्यक वाद का सूत्रपात न होने पाए।

जब सभी मंत्रियों ने एक स्वर से धर्माधिकारी का समर्थन कर दिया तब महा- त्री ने कहा, "मैं आपसे सहमत हूं किन्तु सोच लीजिए, कहीं सम्राट से सीधा संघर्ष करना पड़े और इस संभावित संघर्ष का फल यह हो कि प्रशासन में विकार पैदा जाए या जनता में अनुशासनहीनता फैल जाए।"

रक्षामंत्री ने कहा, "हम प्रत्येक परिस्थिति का सामना करेंगे। जनता तो मारा ही साथ देगी। वह जानती है कि उसका हित राजा के साथ है या उसके पने नेताओं के साथ।"

महामंत्री बोले, "एक बात पर विचार कीजिए और वह यह है कि हम बौद्ध र्म के अभ्युदय के लिए उतने ही उत्सुक हैं जितने तथाकथित बौद्ध, किन्तु हमारा ष्टिकोण उनसे नहीं मिलता। कारण यह है कि वे केवल बौद्ध धर्म के ही हित तक पने को सीमित रखते हैं जबकि हम राज्य के प्रत्येक उत्तम तत्त्व का विकास ाहते हैं।"

ये हृदय-मंथन की सीमाएं बहुत ही विस्तृत थीं। सभी संबंधित क्षेत्रों में बेचैनी के साथ इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा था।

सम्राट अशोक भी शांत मन से सोच रहे थे कि इस संवैधानिक संकट को तूल पकड़ने से कैसे रोका जाए। सम्राट नहीं चाहते थे कि यह छोटी-सी बात तूफान का रूप धारण करे। बड़ी-बड़ी बातें भी आसानी से निबट सकती हैं यदि निबटानेवाले की नीयत विकारग्रस्त न हो।

रात समाप्त हो रही थी किन्तु सम्राट अनिद्रावस्था में थे। वे कोई सुन्दर-सा हल खोज रहे थे। उन्हें यह विश्वास था कि मंत्रिपरिषद कभी भी इसलिए राजी नहीं होगी कि २ लाख स्वर्णमुद्राएं राज्य-कोष से निकालकर बुद्धगया के महा- विहार के पुनर्निर्माण के लिए व्यय की जाएं, क्योंकि जनहित के लिए बहुत-से काम अधूरे पड़े थे। विस्तृत साम्राज्य के हित की बात पर सम्राट भी पहले विचार करना चाहते थे। किन्तु दिए हुए वचन का पालन भी होना चाहिए, क्योंकि वे सम्राट थे।

खुली खिड़कियों से ऊषा का शान्तिदायक हल्का प्रकाश उस कमरे में अ
जिसमें सम्राट थे। दीपकों का प्रकाश फीका पड़ गया तथा हवा में भी शीतल
भर गई।

सम्राट ने हाथ जोड़कर नित्य की तरह ऊषा की वंदना की। वे बोले, "तम
मा ज्योतिर्गमय।"

इस दिव्य मंत्र के उच्चारण-मात्र से ही उन्हें ऐसा लगा कि उनके भी
प्रकाश की शत-शत धाराएं फूट पड़ीं। उन्होंने निश्चय किया---महारानियों
रत्नजटित आभूषणों को बेचकर वे अपने वचन का पालन करेंगे। यह उसी द
में सम्भव हो सकता है जब महामंत्री इसके लिए परामर्श दें। यह भी तो राज्य
सम्मान का सवाल था। सम्राट का शरीर भी व्यक्तिगत नहीं था, धन-संपत्ति
तो बात ही दूसरी रही।

मंत्रियों के विदा होने के बाद महामंत्री भी अपने आसन पर पत्थर की मू
की तरह अचल बैठे रह गए।

रात आगे की ओर खिसकती चली गई किन्तु महामंत्री बैठे ही रह गए।
भी घोर हृदय-मंथन का अनुभव कर रहे थे। अशोक के प्रति उनके हृदय में अब
स्नेह था, वे सम्राट को अपने पुत्र से भी अधिक प्यार करते थे, किन्तु राज्य
मुखिया होने के कारण उन्हें यदाकदा कठोर निर्णय लेना पड़ता था और ऐसे निर्ण
के भीतर वे भाव पूर्ण रूप से सजग रहते थे जो सम्राट के प्रति उनके हृदय में स
से थे।

शशिमित्र भी एक किनारे बैठा रहा। वह भी चिन्ता के भंवर में पड़
व्याकुल हो रहा था और मन ही मन ईश्वर से विनय करता था कि कोई बीच
मार्ग निकल आए जिससे यह भयानक संघर्ष टल जाए।

इसी स्थिति में रात समाप्त हो गई और महामंत्री अपने आसन से यह कह
हुए उठे---"प्रभो, प्रकाश दो, जिससे अंधकार में भटकना न पड़े!"

शशिमित्र ने कभी भी राधगुप्त को इस तरह कातर होकर भगवान को पुक
रते नहीं देखा था। बड़े-बड़े संकट आए किन्तु महामंत्री ध्रुव की तरह अचल
रहे। व्याकुल होकर जब कभी सम्राट पधारे तो महामंत्री ने शांत स्वर में कह
"महाराज, आप चिंता छोड़िए। सब ठीक हो जाएगा। मुझपर और मेरे साथि
पर विश्वास रखिए।"

किंतु उस दिन ?

उस दिन महामंत्री का धीरज जैसे जड़ से हिल गया था, उनकी स्थिर बुद्धि ान में फंसी हुई नौका की तरह दम तोड़ रही थी—अब डूबी कि तब डूबी, यह ल था। यह स्थिति बहुत ही भयानक होती है।

जब दो जातियों के परस्पर-विरोधी विचारों का संतुलन दिमाग में बराबर-बरा-र हो जाता है तब विचारक की मौत आ जाती है—'यह भी ठीक है, वह भी ठीक ' की स्थिति अत्यन्त कष्टदायक होती है। तर्क कभी इसका साथ देता है तो कभी सका। नतीजा यह होता है कि निर्णायक बुद्धि का सारा संगठन ही टूट जाता । इसी दशा में पड़कर वृद्ध महामंत्री भगवान को पुकारने लग गए थे।

बेचारा शशिमित्र तो बाहर से तटस्थ दर्शक-मात्र था, किंतु भीतर से अपने रम आदरणीय आचार्य के घोर हृदय-मंथन का अनुभव करता हुआ इतना व्यग्र ो उठा था कि उसे न तो समय का ज्ञान रह गया था और न दिशा का, आत्म-विस्मृति-जैसी दशा का बोध उसे हो रहा था।

संध्यावन्दनादि से नित्य की तरह निवृत्त होकर आचार्य स्वाध्याय में लगे किंतु बार-बार उनका मन उचट जाता था। वे चाहते थे कि सदा की तरह अपने-आपको एक ही केन्द्र-बिन्दु पर टिका दें, किंतु वे ऐसा कर नहीं पाते थे। अंत में ऊबकर उन्होंने कहा, "वत्स शशि, अब जी चाहता है कि हिमालय की ओर प्रस्थान करूं। शासन-व्यवस्था के उपद्रवों ने तो मुझे मार ही डाला। यह बहुत ही जघन्य कर्म है।"

शशिमित्र ने धीरे से उत्तर दिया, "आत्मोद्धार की बलिवेदी पर उस श्रेष्ठ साम्राज्य का बलिदान करना उचित नहीं होगा जिसका निर्माण आपने अपने ही हाथों से किया है।"

चौंककर महामंत्री बोले, "तूने यह कैसी बात कही ? मैं आशीर्वाद देता हूं, तेरी बुद्धि ऐसी ही बनी रहे। मैं सावधान हो गया। तप करने के बहाने जिस पला-यन-बुद्धि को मैं महत्त्व दे रहा था वह मिट गई।"

इसके बाद महामंत्री बच्चों की तरह खिलखिलाकर हंसते हुए बोले, "मैं महान मगध साम्राज्य का महामंत्री हूं और तू मेरा मंत्री है। अपने इस महत्त्वपूर्ण पद की रक्षा करते रहना। तुम्हारा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया—यह सदा स्मरण रखो।"

अंतिम वाक्य कहते समय महामंत्री का चेहरा फिर गम्भीर हो गया।

शशिमित्र भी अकचकाकर चुप लगा गया—वह यह अंदाज़ नहीं लगा स
कि उसके महा कूटनीतिज्ञ आचार्य जो कुछ बोल गए वह शुद्ध व्यंग्य था या उन
क्षणिक भावना थी।

महामंत्री फिर बोले, "वत्स, तुमने जो कुछ कहा उससे मुझे एक प्रकाश मिल
सबसे बड़ी तपस्या है, जिस पवित्र कर्तव्य को हमने स्वीकार किया है उसका निष्
पूर्वक निर्वाह करना। निश्चय ही साम्राज्य का भार मेरे कंधों पर है और असं
जनता के अभ्युदय, श्रेय और सिद्धि का भार भी प्रकारांतर से मेरे कंधों पर है
मैं अपने कर्तव्य से च्युत होकर या परिस्थिति से संघर्ष न करके तपस्या करने हिम
लय की राह लूंगा तो मेरा विश्वास है कि मेरे लिए स्वर्ग तो क्या नरक में
जगह नहीं रहेगी। तूने ठीक समय पर नीति की ओर ध्यान दिलाकर मेरा अ
मगध साम्राज्य का अशेष हित किया—ईश्वर इसी तरह सदा तेरी बुद्धि को उज्ज्व
रखें, यही मेरी कामना है।"

शशिमित्र ने अपने गुरुदेव का चरण-स्पर्श किया।

कुछ देर के बाद सम्राट का रत्नखचित स्वर्णरथ आया जिसमें चार उत्त
जाति के घोड़े जुते थे। सम्राट महामंत्री को याद कर रहे थे।

२४

जनता को तटस्थ दर्शक नहीं कहा जा सकता यदि उसमें अपने को और अप
राष्ट्र को सही समझने की योग्यता का विकास हो गया हो। यह बात भी महत्त्
पूर्ण है कि राज्य के अच्छे-बुरे कार्यों के प्रति सजग जनता यदि उदासीन रहे
वह राज्य नष्ट हो जाएगा। जन-चेतना ही सब-कुछ करती है—शासक तो ज
चेतना को ठोस रूप देने के लिए ही होते हैं न कि अपना सिक्का चलाने के लिए

अशोक इस सत्य को जानते थे कि वे एक आर्य-सम्राट थे, तानाशाह नहीं
उनकी बुद्धि शुद्ध थी तथा जनता को उन्होंने नारायण के रूप में जाना था। मह
मंत्री बार-बार युवक अशोक को सावधान करते रहते थे कि आप जनता के सब
नम्र और सतर्क सेवक बने रहिए। जहां प्रमाद आया न कि राज्य का नाश आरं
हो गया। हम-आप नष्ट हो जाएं तो यह उतनी चिंता की बात नहीं है। यदि राज

हो गया तो अराजकता फैल जाएगी और अराजकता सारे संगठनों को तोड़-भारत को नष्ट कर देगी। जनता का नैतिक पतन एक बार आरम्भ हुआ तो ालते-संभालते सब-कुछ नाश हो जाएगा। जनता किसी वस्तु को देर से ग्रहण ती है और देर से ही उसका त्याग भी करती है।

अशोक अपने तपस्वी महामंत्री को आचार्य की तरह पूजते थे क्योंकि वे जानते कि परम त्यागी महामंत्री को न तो राज्य से कुछ लेना-देना है और न पद-गौरव ही कोई ममत्व उनके मन में है। जिसने सब कुछ त्याग दिया, उसीके लिए ्वर की सारी विभूतियां हैं।

महामंत्री प्रायः मंत्रिमंडल के निर्णय को ही महत्त्व देते थे और सम्राट को ा मंत्रिमंडल के अधीन रहने का परामर्श देते रहते थे। अशोक ने कभी भी मंत्रि-डल के निर्णय की उपेक्षा नहीं की। वे अत्यन्त आदरपूर्वक उस निर्णय का पालन रते थे जो जनता के योग्यतम प्रतिनिधियों के द्वारा होता था। इस बार भी मंत्रि-डल ने स्पष्ट शब्दों में यह निर्णय किया कि बौद्ध धर्म के विकास के लिए मंत्रि-डल उत्सुक है और वह चाहता है कि उस महान धर्म का अभ्युदय जन-हित के लिए हो किन्तु जनता के धन का उपयोग वह इस कार्य में करने के पक्ष में नहीं है।

इस निर्णय ने अशोक को यद्यपि संकट में फंसा दिया किन्तु श्रेष्ठ पुरुषों की रीक्षा तो संकटपूर्ण स्थिति में ही होती है और अशोक ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक इस शुभ अवसर का स्वागत किया। उन्हें एक बार और परीक्षा देने का सुअवसर मिला। उन्हें विश्वास था कि इस परीक्षा से उबर जाने पर उनका सम्मान चाहे न भी बढ़े किन्तु जनता का प्रेम तो मिलेगा ही। इससे बढ़कर दूसरा सम्मान हो ही क्या सकता है! जनप्रिय होने का अर्थ है ईश्वर का प्यारा बनना। ईश्वर का प्यार प्राप्त करना अशोक जैसे अतिमानव के लिए कोई बड़ी बात नहीं कही जा सकती।

सम्राट ने अपनी महारानी को बुलाया और मुस्कराते हुए अपना निर्णय सुना दिया, "आप अपने स्वर्णालंकार दीजिए क्योंकि बुद्धगया में एक नष्ट विहार का उद्धार करना है। धन की शोभा इसीमें है कि उसका उपयोग बहुजनहिताय हो।"

सम्राट ने कहा, "जिस धन का उपयोग ज्ञानपूर्वक नहीं किया जाता है वह धन नष्ट हो जाता है और नष्ट हुआ धन उसे भी नष्ट कर देता जो उसे नष्ट करता है।"

महारानी तिष्यरक्षिता भीतर से तो जल-भुनकर खाक हो गई किंतु वे बं तो क्या !

यह समाचार अचानक सारे नगर में फैल गया कि सम्राट अपनी महारानी सभी स्वर्णाभूषणों को बाज़ार में विक्रयार्थ भेजनेवाले हैं।

नगर के वृद्ध महापुरुषों का हृदय द्रवित हो उठा, युवकों ने इसे एक दह देनेवाला त्याग माना किन्तु चंडाचार्य पुलकित होकर सोचने लगे—यदि बुद्धग में विहार बन गया तो वे ही उसके सर्वेसर्वा बनेंगे और फिर वहां बैठकर ऐसा सं ठन करेंगे कि राधगुप्त की सारी शक्ति चूर-चूर हो जाएगी।

आचार्य तिस्स को जब यह संवाद मिला तो उन्होंने हाथ जोड़कर कह "निश्चय ही अशोक देवानांप्रिय है। इतिहास को इस महान पुरुष ने अपने चरि से पवित्र बना दिया।"

पद्मसंभव ने आचार्य से प्रश्न किया, "भन्ते, सम्राट अपनी महारानी के शरी पर से उतारकर गहने बेचवा रहे हैं ? यह तो बहुत ही भयानक बात है।"

आचार्य तिस्स ने कहा, "महान बनना बच्चों का खेल नहीं है आयुष्मान धन्यवाद दो आचार्य राधगुप्त को जिन्होंने सम्राट की श्रेष्ठता को इतना ऊपर उठ दिया। यदि वे मौका नहीं देते तो सम्राट को अग्निपरीक्षा देने का यह शुभ अवस नहीं मिलता। मंत्रिमंडल का गौरव भी बढ़ा और अशोक भी साधारण नर से नरो त्तम बन गए। बहुत सोच-विचारकर राधगुप्त ने यह परिस्थिति पैदा की है। ऐसे महाबुद्धिशाली ऋषिकल्प महामंत्री के सामने मेरा सिर झुक जाता है।"

पद्मसंभव का मन नहीं भरा किन्तु उसने फिर प्रश्न नहीं पूछा, आचार्य के साथ बहस नहीं चल सकती, शिष्टाचार का ऐसा आदेश नहीं है।

नगर के वे महापुरुष, जो वयोवृद्ध तो थे ही, चरित्र और ज्ञान की दृष्टि से भी वंदनीय थे, श्रेष्ठिन के यहां पधारे।

स्वयं श्रेष्ठिन नगर के पूज्य नागरिकों का स्वागत द्वार पर आकर करने लगे। सभी वृद्धों को उचित आसन देकर श्रेष्ठिन ने हाथ जोड़कर प्रश्न किया, "यह मेरा सौभाग्य है जो आज आप पधारे। अब आज्ञा दीजिए, क्या सेवा की जाए ?"

एक वृद्ध ने कहा, "श्रेष्ठिन, हम आपके सज्जनोचित व्यवहार से सदा प्रभा-वित रहे हैं। इस समय हमारे सामने एक विचित्र प्रश्न उपस्थित हो गया है। क्या

ाट अपनी महारानी के आभूषण बेचने के लिए परिकरबद्ध हैं ?"

श्रेष्ठिन सविनय निवेदन किया, "आप हमारे गुरुजन हैं। आपने जो कुछ ा है वह सही मानिए। सम्राट को बीस लाख स्वर्णमुद्राओं की आवश्यकता है। ाज्य से वेतन पाते हैं।[१] इतना धन उनके पास कहां से आया ? बुद्धगया का द्ध विहार बनवाना है। राज्य का कोष तो आपका है। ऐसे कार्य के लिए उसका योग कैसे हो सकता है ? मंत्रिमंडल का भी यही निर्णय है। अनन्योपाय सम्राट आभूषणों को बेचकर धन संग्रह करने का निर्णय किया। वह विहार तो बनना चाहिए।"

सभी उपस्थित व्यक्ति चुप रह गए। कुछ देर तक मनोवेधक सन्नाटा छाया ा, फिर एक व्यक्ति ने कहा, "हां, सम्राट का यह निर्णय वन्दनीय है। यह आर्य ति का स्वभाव रहा है कि वह त्याग में ही सच्चा कल्याण पाती है।

"जनहित के लिए बच्चे, शरीर और स्वर्ग तक का त्याग हमारे पूर्वजों ने किया । हम उन्हींके चरण-चिह्नों पर चलने में गौरव मानते हैं। सम्राट के लिए भी ही उचित है।"

एक दूसरे अतिवृद्ध व्यक्ति ने धीमी आवाज में कहा, "श्रेष्ठिन, बात तो बहुत उत्तम है, किन्तु सम्राट का यह त्याग ऐसा है कि मैं दहल गया। हमारी महारानी वे आभूषण, जिन्होंने उनके पवित्र शरीर को स्पर्श किया है, साधारण लोगों के ए अब सुलभ हों, यह बात मुझे अखरती है।"

उक्त वृद्ध की बातों का समर्थन मौन रहकर सबने किया। श्रेष्ठिन ने कहा, आपका कहना समयोचित है, किन्तु उपाय क्या है ? मैं भी यही सोचता हूं कि महा- नी के पवित्र अंगों के अलंकार साधारण लोग धारण करें यह उचित नहीं है।"

वह वृद्ध फिर धीरे-धीरे बोला, "मैं एक विचार यहां उपस्थित करता हूं। मारे पुत्र-पौत्र तो अनेक तरह के लाभप्रद व्यापारों में लगे हैं। हम सभी ी-सौभाग्यसम्पन्न हैं। अन्तकाल भी निकट है। धन रखकर करेंगे क्या ? जब यह रीर ही हमारा साथ छोड़ने पर है तो तुच्छ स्वर्ण-रत्न हमारे किस काम आएंगे ! म सम्राट को स्वर्ण-रत्नों से सौ बार तौल देंगे। आप उनसे कहिए कि वे हमारी वाएं स्वीकार करें।"

आनंद-गद्गद कंठ से श्रेष्ठिन बोला, "जिस साम्राज्य में आप जैसे विचार-

१. कौटलीय अर्थशास्त्र--५।३।९१

वान पुरुष हों वह साम्राज्य भी धन्य है। मैं···मैं सम्राट की सेवा में···निवेदन···

श्रेष्ठिन का कंठ वाष्परुद्ध हो गया और आंखों से गंगा-यमुना की परमपाव धाराएं बरस पड़ीं।

बात तय हो गई। सभी वृद्ध आनंदविभोर हो गए और विदा हुए।

श्रेष्ठिन ने प्रत्येक का अभिनंदन किया और उन्हें उनके रथ तथा शिविका त अत्यंत आदरपूर्वक पहुंचा दिया।

जब सभी वृद्ध श्रेष्ठिन को आशीर्वाद देकर विदा हुए तो श्रेष्ठिन बोला, 'आ मेरा घर किसी देव-मंदिर से भी अधिक पवित्र हो गया जहां राज्य के पूज्य अं श्रेष्ठ व्यक्ति पधारे।'

यह समाचार महामंत्री तक पहुंचाने का कार्य श्रेष्ठिन ने स्वयं किया। संध्य समय जब महामंत्री अपनी होम-धेनु की सेवा में तल्लीन थे तो श्रेष्ठिन उनकी कुटि में पहुंचा। उसने देखा कि श्यामा गऊ महामंत्री के शरीर को जहां-तहां अशेष प्य से चाट रही है और वे अपने उत्तरीय से उसका शरीर पोंछ रहे हैं। खूंटे से बं नन्हा-सा पुष्ट बछड़ा इस शान से खड़ा है मानो वह धरती को चुनौती दे रहा है कह रहा है, 'धरती, सावधान रह! मैं शीघ्र ही तुझे अन्न का पहाड़ लगाने क आदेश दूंगा। तू जान ले, मैं सच्चा पृथिवी-पुत्र हूं और तू मेरी मां है।'

महामंत्री इधर ध्यान दें, इस प्रतीक्षा में श्रेष्ठिन चुपचाप एक ओर खड़ा रहा वह सारा दृश्य देख नहीं रहा था, आंखों से पी रहा था।

शांत गंगा-सोन का संगम और उतरती हुई संध्या। सर्वत्र निःशब्दता औ एक प्रकार की गंभीरता जो किसी प्रभावशाली अधिकारी के आसपास होती है हवा भी करीब-करीब स्थिर-सी थी, वृक्षों की पत्तियां हौले-हौले हिल-भर रही थीं सामने ही यज्ञशाला थी। यज्ञवेदिका से सुवासिता धुएं की एक पतली छाया-स ऊपर उठ रही थी। यज्ञवेदिका पर अक्षत, यव, फूल आदि जहां-तहां पड़े थे। ए दर्भासन भी बिछा हुआ था।

यज्ञमंडप के निकट ही ऊंची वेदी पर तुलसी का एक घना पौधा था तथा वेद पर पंचपात्र रखा हुआ था—कुछ कुम्हलाए हुए फूल भी पड़े थे।

श्रेष्ठिन सारा दृश्य देखकर भावविभोर हो गया। उसने देखा, सामने ही मह मंत्री की पर्णकुटी है। पवित्र गोबर से लीपा हुआ बरामदा और खर-पात से छाय हुआ छप्पर है जिसपर माधवी की लोनी लताएं फैल रही हैं। बरामदे के एक को

र्भासन बिछा हुआ है तथा एक छोटी-सी चौकी पर कोई ग्रन्थ सुशोभित हो रहा -उस ग्रंथ पर भी पुष्पांजलि अर्पित की गई है। सारा दृश्य उस युग की याद ाता है जब आर्य-ऋषि वनों में तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हुए भी राष्ट्र- ाण और ज्ञान-विकास का अनुष्ठान करते रहते थे। वे धरती को स्वर्ग से भी क पवित्र बनाने की चिंता में लगे रहकर आत्म-दीप को कभी झिलमिलाने नहीं देते थे। मन ही मन शत-शत प्रणाम करता हुआ श्रेष्ठिन चुपचाप खड़ा ा। उसने अपने को ज्ञान और कर्म के केन्द्र में पाया।

श्रेष्ठिन को विश्वास हो गया कि बिना कर्म के ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं है ा बिना ज्ञान के कर्म से किसीको भी लाभ नहीं हो सकता—लाभ क्या और विनाश होने का ही खतरा बना रहता है। कर्म के साथ सम्यक् ज्ञान का और न के साथ शुद्ध कर्म का योग तो होना ही चाहिए। जिसने इस रहस्य को समझा ी सच्चा योगी है—ज्ञान-योगी और कर्म-योगी दोनों।

श्रेष्ठिन ने यह समझ लिया कि महामंत्री ज्ञान-योगी तो हैं ही, कर्म-योगी भी ।

अचानक महामंत्री का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने श्यामा को प्रणाम किया और हा, "माता, यह आर्यावर्त तुम्हारे ही पुण्य से हरा-भरा है। तुम्हारी जाति का स्तित्व ही राष्ट्रसेवा के लिए है···"

एकाएक मुड़कर उन्होंने श्रेष्ठिन की ओर देखा जो हाथ बांधे दूर पर खड़ा ा। महामंत्री का चेहरा अचानक शासक की तरह गम्भीर हो गया जो अब तक क सरल तपस्वी के चेहरे की तरह भोलाभाला दीख रहा था। अभिवादन कर ने के बाद श्रेष्ठिन ने गिने-चुने शब्दों में नगर के वृद्धों के आने और उनके निश्चय ा सारा संवाद सुना दिया। क्षण-भर के लिए महामंत्री का शांत चेहरा भीतर के ाज से दमक उठा। एक परम कूटनीतिज्ञ होने के कारण अपने मनोभावों को सफ- तापूर्वक दबा देने की कला महामंत्री अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने उस आनन्द ो दबा दिया और गम्भीर स्वर में कहा, "अच्छा हो कि वे वृद्धजन स्वयं ही सम्राट े अपनी बात कहें।"

श्रेष्ठिन का मन कुछ उदास हो गया। उसने सोचा, 'महामंत्री यह कैसा अड़ंगा लगा रहे हैं! वे सीधे-सादे नागरिक सम्राट की सेवा में कैसे जाएंगे!'

महामंत्री ताड़ गए कि श्रेष्ठिन को उनका परामर्श रुचिकर नहीं लगा तो वे

बोले, "अरे मैं तो भूल ही गया ! श्रेष्ठिन, आप तो नगर के प्रतिनिधि हो, फि स्वयं जाकर सम्राट से सारी बातें क्यों नहीं कह डालते ? सम्राट अपनी प्रजा कितने प्रिय हैं, उन्हें भी इसका बोध हो जाएगा । ऐसा बोध हो जाने पर वे प्र के कल्याण की और भी अधिक चेष्टा करेंगे ।"

श्रेष्ठिन को महामंत्री का यह परामर्श भा गया । वह भी यही चाहता था बात जल्दी ही समाप्त हो, कौन जाने फिर दाताओं का मन न बदल जाए अ महारानी के आभूषण बिकने के लिए पाटलिपुत्र के बाज़ार में आ जाएं ।

"आज्ञा शिरोधार्य है," कहकर जब श्रेष्ठिन चला गया तो महामंत्री ने नि ही खड़े शशिमित्र से कहा, "वत्स, देखा तुमने जनता का प्रेम ! मैं तो समझ रहा कि मगध की जनता यह सहन नहीं करेगी कि उसकी महारानी के अलंकार बैंग कुम्हड़े की तरह खुले बाज़ार में बेचे जाएं । देश-देश के जो व्यापारी, राजपु पर्यटक हमारे यहां आते हैं वे जब सुनेंगे कि अशोक की रानी के आभूषण बाज़ार बिक रहे हैं तो वे क्या कहेंगे—जनता अपने स्वाभिमान की रक्षा स्वयं कर रही और यही उचित भी है । मुझे विश्वास था कि पाटलिपुत्र ऐसा होने नहीं देगा ।'

शशिमित्र ने मन ही मन कहा, 'यह ऋषि सचमुच जनता का नेता है । जानता है कि उसकी जनता कैसे सोचती है, कैसे चलती है । जन-स्वभाव का सह सही ज्ञान हुए बिना जनता पर शासन करना महामूर्खता है, घोर अज्ञान है ।'

महामंत्री नारायण का नाम स्मरण करके, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, फिर श्याम की ओर मुड़े और एक बार अच्छी तरह उसे देखकर बोले, "देखो बेटा, श्यामा कु दुबली हो गई है । इधर एक पखवारे से मैंने अपने हाथ से इसे नहीं खिलाया । उ महामंत्री बनने का यह भोग भोगना पड़ रहा है, मेरी कामधेनु दुबली हो गई !"

महामंत्री का गंभीर चेहरा अन्तर् की पीड़ा से विवर्ण हो गया । वे अत्य उदास स्वर में बोले, "मैं पानी पर कब तक लकीर खींचता रहूंगा ! स्वाध्या अध्यापन, आत्मचिंतन, यज्ञ-अनुष्ठान, सभी तो गड़बड़ में पड़े रहते हैं । मैं उन वस्तुओं के पीछे लगा फिरता हूं जो न तो मेरी हैं और न मैं उनका हूं ।"

इतना बोलकर महामंत्री अपनी कुटिया की ओर चलने लगे तो शशिमित्र मन ही मन कहा, 'फिर मन उचटा ! इन्हें कौन रोके ! मगध-साम्राज्य के ब दिन भविष्य की दीवार के उस पार से झांक रहे हैं । हे भगवान, आचार्य के म को आप ही फेर लीजिए !'

श्रेष्ठिन महामंत्री की कुटिया से भागा-भागा उस उद्यान की ओर चला जहां ाट संध्या समय हंसों और हरिणों से अकेले ही खेला करते थे। वहां किसीका प्रवेश वर्जित था, किंतु न तो महामंत्री का प्रवेश निषिद्ध था और न नगर के ठन का। जब श्रेष्ठिन सम्राट के निकट पहुंचा तो उसने देखा कि हंसों और णों से घिरे हुए वे बैठे हैं। सम्राट तालाब के तट पर आनंद-विभोर-से बैठे-बैठे करा रहे हैं। उनका अत्यंत मनोहर चेहरा भीतर के आनंद के प्रकाश से जैसे मगा रहा है।

दूर से ही अभिवादन करके श्रेष्ठिन रुक गया। सम्राट ने देख लिया और ते हुए निकट बुलाकर पूछा, "कहिए श्रेष्ठिन, जनता सुखी और प्रसन्न तो है ? क्या उसकी कोई आज्ञा लेकर पधारे हैं ?"

श्रेष्ठिन चौंक पड़ा। गुप्तचरों ने निश्चय ही सम्राट को सारा समाचार सुना था। वहां तो कोई था नहीं, तो गुप्तचर कहां से पैदा हो गए ! श्रेष्ठिन डर भी ा कि जब शासन-यंत्र इतना गठा हुआ है तो मूक दीवारों से भी सावधान रहने कल्याण है। श्रेष्ठिन ने निवेदन किया, "पाटलिपुत्र की जनता बड़भागी है जिसे ारे देवता-स्वरूप सम्राट इतना आदर देते हैं। हां, मेरे यहां नगर के वृद्धजन पधारे । उन्होंने आपकी सेवा में निवेदन करने के लिए कुछ कहा है। आदेश की प्रतीक्षा ; जो आज्ञा हो।"

सम्राट ने बच्चों की तरह सरल हंसी हंसते हुए कहा, "अवश्य कहिए। वे तो रे लिए भी आदरणीय हैं। वृद्धजनों का जहां आदर नहीं होता वहां अमंगल का वास हो जाता है।"

विनयपूर्वक श्रेष्ठिन ने सारा हाल कह सुनाया तो एकाएक सम्राट का मुस्क-ाता हुआ चेहरा गम्भीर हो गया। भय से श्रेष्ठिन कांप उठा। श्रेष्ठिन के लिए क-एक क्षण पहाड़ की तरह भारी बनकर आता था। उसे भय था कि परम ानी सम्राट अशोक नगर-वृद्धों के प्रस्ताव को कहीं ठुकरा न दें। वह एकटक म्राट के चेहरे को देख रहा था और सम्राट जल पर उठनेवाली लहरियों को निमेष दृष्टि से देख रहे थे।

कुछ देर के बाद सम्राट धीर-गंभीर वाणी में बोले, "श्रेष्ठिन, मैं समझता कि वे वृद्ध महापुरुष क्या सोचते हैं। धर्म के मार्ग पर सबको चलने का समान धिकार है। मैं उन्हें यदि रोकूंगा तो यह अन्याय ही नहीं पाप भी होगा। तुम

मेरी ओर से उन्हें कह दो कि अशोक आप महानुभावों के आदेश को सादर स्वी
करता है, वह आपका है और आपका आज्ञापालन करना ही उसका धर्म है, ि
एक प्रार्थना मैं भी करना चाहता हूं जिसे जनता तक तुम पहुंचा दो।"

श्रेष्ठिन निःशब्द, हाथ जोड़े, पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा। कुछ
रुककर सम्राट बोले, "जनता स्वयं बुद्धगया के विहार को बनवा दे। मैं धन ले
क्या करूंगा ? स्थापत्य-कला के आचार्य वहां रहेंगे और जो कार्य जनता नहीं
सकेगी वह कार्य पूरा हो इसका प्रयास मैं करूंगा। अब रही मेरी बात, सो मैं
शरीर से श्रम करके अपने को तृप्त कर लूंगा। अब तुम जा सकते हो।"

सम्राट ने कुछ कहने का श्रेष्ठिन को अवसर ही नहीं दिया।

जब श्रेष्ठिन चला गया तो सम्राट बोले, 'यह मेरा सौभाग्य है जो ऐसी प्र
का मैं शासक हूं।'

२५

यों तो यही सुना जाता है कि द्रव्य अपने स्वाभाविक गुण का त्याग नहीं
सकता, किंतु यदि मानव को हम द्रव्य मान लें तो यह बतलाना पड़ेगा कि इस
स्वाभाविक गुण क्या है। जहां यह प्रश्न आया न कि बड़े-बड़े विचारक सिर खु
लाते नज़र आएंगे। बाहर से देखने में एक ही जैसा लगनेवाला मानव भीतर
कितनी विविधताओं में बंटा हुआ है यह बतलाना असंभव है, प्रयास करके
सही-सही सिद्धांत नहीं दिया जा सकता।

आचार्य तिस्स ने जब नगर के आदरणीय वृद्धों का निर्णय सुना तो वे निक
बैठे चण्डाचार्य से बोले, "आयुष्मान, आपने कुछ सुना ?"

चण्डाचार्य ने कहा, "सब कुछ सुना। यह राधगुप्त की चाल है। यदि जन
ने विहार बनवा दिया तो हमारे उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती। अशोक बनवा
तो वह हमारे पवित्र धर्म की शरण में आ जाता।"

आचार्य तिस्स ने चौंककर कहा, "यह क्या कह रहे हैं आप ! सम्राट तो ध
के साक्षात् अवतार हैं। अमुक धर्म, अमुक धर्म का विभाग करना धर्म का ना
करना है। हमारे शास्ता ने कभी भी धर्म के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं कही है।"

चण्डाचार्य बोले, "आप भ्रम में पड़ गए हैं। बुद्ध के समय देश की जैसी स्थि

उन्होंने उसीसे प्रेरणा पाई और आज जैसी स्थिति है उससे हम प्रेरित हो रहे आप षड़ायतनों के रहस्य को नहीं जानते तो चुप ही रहिए।"

चण्डाचार्य आचार्य तिस्स को खरी-खोटी सुनाने ही गए थे।

आचार्य तिस्स मुस्कराते हुए बोले, "आपका कहना सही हो सकता है। मैं ने ज्ञान की वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहता हूं—मैं सब कुछ जान गया, ा भ्रम उत्पन्न होते ही सब कुछ समाप्त हो जाएगा। मैं षड़ायतनों को जानूं या ों जानूं इतना तो अवश्य जानता हूं कि अशोक ने अपना जीवन धर्म के लिए सर्ग कर दिया है। किस धर्म के लिए—यह प्रश्न आपके लिए है, मेरे लिए नहीं धर्म को जानता हूं और यह भी जानता हूं कि धर्म अविरोधी होना चाहिए। रोधों को शांत करने के लिए ही तो सत्य धर्म का उदय होता है और यदि धर्म ही विरोध घुस बैठा तो फिर धर्म और पाप में भेद ही कहां रहा!"

चण्डाचार्य आचार्य तिस्स के इस लम्बे प्रवचन को सुनकर समझ नहीं सके ोंकि उनकी धारणा ने उन्हें इतना आच्छन्न कर रखा था कि वे दूसरी कोई ात सुनकर भी समझ नहीं पाते थे।

चारों ओर से अलग करके चण्डाचार्य ने अपने-आपको अपनी ही धारणाओं ी अंधेरी गुफा में डाल दिया था। यह एक भयानक स्थिति कही जा सकती है किंतु संभव स्थिति नहीं। यह स्पष्ट है कि धरती से हज़ार हाथ नीचे दबा रहनेवाला क्ति क्षितिज की कल्पना नहीं कर सकता—उसका शरीर ही क्षितिज बन जाता कि धरती से हज़ार हाथ ऊपर उठनेवाला व्यक्ति अपने को अत्यन्त विस्तृत त्र में पाता है और उसका क्षितिज बहुत बड़ा होता है—अत्यन्त व्यापक।

चण्डाचार्य बिना कुछ बोले उठ खड़े हुए और लटपट पैरों से चलते हुए आचार्य तिस्स की कुटिया के बाहर निकल गए। कुछ दूर जाकर उन्होंने जलती हुई दृष्टि कुटिया को मुड़कर देखा। उस समय इस संसार में यदि सबसे घृणित कोई स्थान ा तो वह तिस्स की कुटिया। दो-तीन बार कुटिया को क्रोधपूर्वक देखकर चण्डा-ार्य बड़बड़ाए, "यह पतित व्यक्ति निश्चय ही राधगुप्त का गुप्तचर है। देखने में ायद यह बात तय हो चुकी है कि बुद्धगया महाविहार का इसे ही आचार्य बनाया ाए। यही कारण है कि अशोक को धर्म का अवतार बतलाता है ··। यह गंदा ूढ़ा तिस्स भी हमारे मार्ग का एक ज़हरीला कंटक बन गया है···"

असम्बद्ध विचारों के आघात-प्रतिघातों से आकुल-व्याकुल होकर चण्डाच आगे बढ़ते चले गए, किंतु उनका क्रोध भड़कता ही जा रहा था। अपने भीतर उठनेवाले ज़ोरदार संवेगों को दबाने की आदत उनमें नहीं थी। वे ज्ञान से न अपने संवेगों से ही सदा संचालित होते थे—उस दिन भी और पहले भी।

चण्डाचार्य के जाने के बाद दो भिक्खु आचार्य तिस्स के निकट आए। वे दू आ रहे थे। उन्होंने सूचना दी कि बुद्धगया महाविहार के निर्माण का कार्य आ हो गया है। बहुत तत्परता से काम हो रहा है। श्रेष्ठिन स्वयं इस कार्य सम्पन्न कराने में लगे हैं। महामंत्री और सम्राट भी कई बार निर्माण-कार्य दे गए। वह विहार पाटलिपुत्र की जनता बनवा रही है—जनसाधारण में ऐसी ध भावना है। यह अचरज की बात है। आचार्य तिस्स ने कहा, "स्वयं तथागत य चाहते तो अपने लिए ऐसा घर बनवाते जो हज़ार साल से भी अधिक दिन बना रहता, किंतु उन्होंने तो मूलगंध-कुटीर में रहकर ही जनकल्याण का उप किया। किसी भी धर्म का विकास उसके सद्‌गुणों के कारण होता है न कि मंदि और विहारों के कारण।"

भिक्खुओं में से एक ने कहा, "आवुस का कथन ठीक है। अपने घर को सदा लिए नष्ट करनेवाले महाश्रमण बुद्ध ईंट-पत्थरों के महल को कभी पसंद नहीं करें बेघर रहना ही धर्म की सच्ची सेवा है।"

आचार्य तिस्स ने मौन रहकर इस कथन का अनुमोदन किया।

इधर चण्डाचार्य चलते हुए एक ऐसी जगह पहुंचे जहां ताड़ी बिक रही थी ताड़ी की खट्टी महक ने उनकी नाक को अत्यधिक पुलकित कर दिया, किंतु मन दबाकर आगे बढ़े। कुछ दूर चलकर फिर लौटे और रुककर सोच-विचार में ल गए।

उन्होंने मन पर पूरा दबाव डालकर आगे बढ़ जाना ही तय किया। वे बढ़े किंतु मन नहीं माना। चण्डाचार्य मन ही मन बोले, 'तथागत तो कट्टर अहिंसक किंतु भिक्षा में मिले हुए मांस को खाना बुरा नहीं मनाते थे। वे कहते थे कि ज्ञान पूर्वक मांस खाना हिंसा नहीं है। यह तो शुद्ध पेय है—ताड़ी। मैं भी ज्ञानपूर्व यदि कण्ठ सींच लूं तो बुरा क्या है···!'

चण्डाचार्य को स्मरण आया कि वे तो नित्य रात को मूल्यवान मद्य पीते ह हैं तो ताड़ी में कौन-सा दोष पैदा हो गया! किंतु प्रश्न था रात और दिन का

क-छिपकर आनंद लेनेवालों के लिए ही तो प्रकृति ने अंधकार का सर्जन किया दिन का प्रकाश तो ऐसे काम के लिए नहीं है जिसे रात के अंधकार में सम्पन्न या जाता है।

अनजाने ही चंडाचार्य ताड़ीखाने में घुस गए और बोले, "प्यास लगी है। पेय तुम्हारे लिए सुलभ हो वह दे दो।"

ताड़ी बेचनेवाले को साहस नहीं हुआ कि एक भिक्खु को वह ताड़ी पीने के ए दे दे और जबकि वह प्यास लगने की बात कह रहा है।

उसने एक लोटा शुद्ध जल चण्डाचार्य को देकर कहा, "महाशय, आप इसे ीकार कीजिए। यह शुद्ध और पवित्र है।"

चण्डाचार्य रोष से व्याकुल हो गए किन्तु ताड़ी मांगने की हिम्मत भी उनमें हीं थी। ताड़ी बेचनेवाले को मन ही मन गालियां देकर उन्होंने लोटा उसके हाथ छीन लिया और सारा पानी उंडेलकर लोटे को फेंक दिया।

भिक्खु के इस अभद्र व्यवहार ने ताड़ी बेचनेवाले के रोष को भी भड़काया। ह चिल्लाया, "तुम देखने में तो साधारण से भिक्खु जैसे लगते हो, किन्तु हो पक्के तान। निकल जाओ हमारी दूकान से, नहीं तो···"

चण्डाचार्य भी उबल पड़े। किन्तु ताड़ी बेचनेवाला एक विशालकाय बलवान क्ति था। भय के कारण वे कुछ बोले नहीं और फूत्कार छोड़ते हुए चल पड़े। र्बल के काल और सबल के दासानुदास बनकर संसार में गुज़र करने की कला के ण्डाचार्य निष्णात थे। यह ज़ाहिर है कि वे धर्म को वाणिज्य के रूप में स्वीकार रने के पक्ष में थे। उन्होंने अपने जीवन में कभी भी धर्म को धर्म के रूप में नहीं हण किया। सामान्य से विशेष बनने के लिए पवित्र चीवर धारण किया, जनता प्रभावित करने के लिए धर्मध्वजी बने, दल और गुट बनाने के लिए संघ में ए और अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए बौद्ध धर्म का नेतत्व ग्रहण किया।

चण्डाचार्य को आगे चलकर एक खाली रथ मिल गया और उसपर सवार कर वे पाटलिपुत्र लौट आए। रास्ते-भर रथ हांकनेवाले को शील का उपदेश आए, उसे वज्रयान के रहस्य समझाते आए।

काफी रात बीते चण्डाचार्य अपने स्थान पर पहुंचे। उन्होंने वहां शीलभद्र और प्पलाद को आपस में हाथापाई करते देखा। आचार्यश्री के दर्शन-मात्र से ही दोनों रोष का शमन तो हो गया किंतु वाणी का कोप शांत नहीं हुआ—धाराप्रवाह

गालियों का आदान-प्रदान करते हुए दोनों एक-दूसरे को जलती हुई आंखों से दे रहे थे।

चण्डाचार्य बोले, "जान पड़ता है कि इन सालों ने आज अधिक चढ़ा ली है।

इसके बाद विवाद का रुख बदल गया। दोनों अपने आचार्य के इस रिमा पर भड़क उठे कि—ज़्यादा चढ़ा ली है।

चण्डाचार्य ने चीत्कार करके कहा, "हाथ-पांव तोड़ दूंगा। मैं कोई मामू भिक्खु नहीं हूं जो दरवाज़े-दरवाज़े भीख मांगता फिरता है। मैंने धर्म को समझ है, कायानुपश्यी होकर विहार करता हूं। तुम देखते नहीं अभागो, मुझे निर्वा सिद्ध हो गया है। मैं चाहूं तो स्वर्ग के देवताओं तक को नरक की हवा खिल सकता हूं। राजगृह का मखादेव यक्ष मेरी सेवा में लगा रहता है। उसीके नि त्रण पर अभी मैं राजगृह गया था जहां अपने पचासी करोड़ सेवकों के साथ मख देव यक्ष ने मेरा सत्कार किया। वहीं सह्य-ब्रह्मा भी आया था। मैंने सबको उपदे देकर निर्वाण के जिस रहस्य को बुद्ध नहीं समझा सके उसी रहस्य को दिन प्रकाश की तरह स्पष्ट कर दिया।"

शीलभद्र बोला, "तथागत से भी अधिक आप धर्म के रहस्य को जानते हैं यह तो अजीब बात है।"

चण्डाचार्य ने उछलकर शीलभद्र की गर्दन पकड़ी और कहा, "सावधान, नरक का तुच्छ कीट है।"

शीलभद्र झटका देकर भाग निकला और दरवाज़े पर खड़ा होकर बोल "आवुस, शास्ता, क्षमा कर दीजिए।"

मुस्कराते हुए चण्डाचार्य ने कहा, "डर गया? अभी तूने शील का पाल नहीं किया है। वेदना को अच्छी तरह जान लेने से भय नहीं होगा। वेदनाओं क्षय होने से परिनिर्वाण की प्राप्ति होती है, यह जान ले। मैंने तो तेरे शील परीक्षा ली थी। तू मेरा प्रिय शिष्य है, जैसा बुद्ध का आनन्द या सारिपुत्त थ डर मत आयुष्मान, भय उसीको होता है जो संज्ञा, संस्कार आदि से ग्रस्त हो है। तू निर्वाण का अधिकारी है डर मत।"

यहां यह नाटक हो रहा था और डेढ़ योजन की दूरी पर एक दूसरा ही दृ उपस्थित था।

रात आधी बीत चुकी थी। मगधकी परिषद् की बैठक में भाग लेने परिष

न चले गए थे। देश-विदेश के अनेक प्रश्नों पर विचार हो रहा था। स्वयं
ाट वहां उपस्थित थे और महामहिम अग्निप्रभ अध्यक्षता कर रहे थे।

महामंत्री की शांत निर्जन कुटिया की रखवाली शशिमित्र कर रहा था। वह
ी बैठकर आत्म-चिंतन करता था तो कभी कगार पर खड़े होकर सोन और
ा की निर्मल शोभा निरखता था। आकाश से चन्द्रमा मानो अभ्रक का चूर्ण
सा रहे थे। चांदनी अपने पूर्ण यौवन में समा नहीं रही थी।

इसी समय छाया की तरह निःशब्द शैवाल का प्रवेश रंगमंच पर हुआ। वह
तिमती कविता की तरह हौले-हौले आगे बढ़ रही थी। उसका गदराया हुआ
वन संभाल के बाहर हो रहा था। अंग-अंग से ज्योति-सी फूट रही थी और
खें मानो मदविह्वल होकर अपने धर्म को भूल चुकी थीं। शैवाल का सुन्दर, गठा
ा, छरहरा बदन और चमकता हुआ गोरा रंग किसी भी सुपुरुष को दास बनाने
लिए काफी था।

शशिमित्र ने चौंककर देखा और दो कदम आगे बढ़कर कहा, "तू ? शैवाल,
ने दिनों बाद ?"

शशिमित्र ने अनुभव किया कि उसका हृदय स्वाभाविक रूप से धड़क रहा
तथा ललाट गरम होता जा रहा है।

शैवाल ने मुस्कराकर शशिमित्र का कंधा छू दिया और धीरे से कहा, "हम
नों बंदी हैं, फिर मिलना तो कष्टकर होगा ही। इसीलिए तो कहती हूं ऋषि
मार, अब इस वातावरण को अंतिम प्रणाम करो।"

शशिमित्र ने दीर्घ निःश्वास त्यागकर इधर-उधर देखा। वह कुछ बोला
हीं। शैवाल आगे-आगे चली और मंत्राकर्षित-सा शशिमित्र पीछे। कुछ दूर
ने के बाद शैवाल अमराई की ओर मुड़ी। शशिमित्र भी छायानुवर्ती बना
हा। जब दोनों माधवी-कुंज के निकट पहुंचे तो शैवाल बोली, "तुमने भी मेरी
धि नहीं ली। मैं तो अपनी जन्मभूमि से दूर—बहुत दूर हूं। दासी का जीवन
तना अपमानजनक होता है यह जब सोचती हूं तो जी चाहता है कि आत्मघात
रके शांति पाऊं। तुमने जीवित रहने का आकर्षण मेरे भीतर पैदा कर दिया है
श !"

शशिमित्र की वाणी जैसे कंठ से विदा हो चुकी थी। वह चुप था। अब दोनों

प्रकृति ने पुष्प-शय्या तैयार कर रखी थी। हवा में फूलों की मादक सुगंध भरी
और गंगा के उस पार से कराहनेवाले पपीहा की आवाज़ रह-रहकर आती थी
शैवाल ने फिर कहना शुरू किया, "शशि, मैं तुम्हारे लिए जी रही हूं। यह बा
मैं कहना नहीं चाहती थी। मैं एक विदेशिनी कर्मफल भोगने के लिए तिष्यरक्षि
जैसी दुर्दान्त नारी की दासी बन गई। मेरा यहां कौन है ! आज तो भूल गई
मेरा देश यमन यहां से उत्तर है या दक्षिण। यह कितनी दयनीय स्थिति है ! जै
तैसे मागधी बोल पाती हूं, ठीक-ठीक मनोभाव भी तुम्हारी भाषा में प्रकट क
नहीं बनता।"

शशि ने कहा, "मैं भी तो तक्षशिला का रहनेवाला हूं शैवाल ! ऐसा लग
है कि अपनी-अपनी धुरी से हटकर दो नक्षत्र आपस में मिल गए हैं। अब तो ह
यही मान लें कि हमारा घर मगध है और हम मागधी हैं। यह संभव नहीं ज
पड़ता कि इस जीवन में हम अपने-अपने देश के दर्शन कर सकेंगे।"

शशि की बातें सुनकर शैवाल ने मुस्करा दिया। वह बोली, "मैं एक संव
देने आई हूं।"

शशिमित्र बोला, "वह कौन-सा संवाद है ?"

शैवाल खिसककर शशिमित्र के निकट चली आई और बोली, "सावध
रहना। तिष्यरक्षिता ने चंडाचार्य के साथ मिलकर तुम्हारे महामंत्री के खिलाफ ए
भयानक षड्यंत्र का सूत्रपात किया है। चंडाचार्य एक पतित व्यक्ति है और तिष
रक्षिता भी हृदयहीन राक्षसी औरत है।"

शशिमित्र का सौम्य हृदय धड़क उठा। महामंत्री एक ऋषि हैं। किसीसे
उनको भय नहीं है और न वे किसीको अपना शत्रु ही मानते हैं। पक्का ब्रह्मचा
होने के कारण अपने शरीर को भी शरीर नहीं मानते। क्या कहकर उनको सा
धान किया जाए यह शशिमित्र सोच नहीं सका।

शैवाल फिर बोली, "शशि, चिंता न करो। अगर कुछ हुआ तो तुम देखो
कि यमन का पानी कितना कड़ा होता है। एक चंडाचार्य क्या पचास चंडाचार्यों
निर्वाण का मार्ग दिखलाने की शक्ति मेरे शरीर में है। मेरे पिता अपने समय
अजेय योद्धा गिने जाते थे, भले ही यहां आकर उन्हें हार खानी पड़ी। किंतु वे वी
गति को प्राप्त हुए, हारकर पीछे नहीं हटे।"

बोलते-बोलते शैवाल अत्यधिक उत्तेजित हो गई। दिन का प्रकाश होता

शिमित्र देख लेता कि उस अत्यंत लुभावनी नवयुवती का चेहरा किस तरह तम-
ा उठा है। वंश-गौरव और जातीय गौरव में बड़ी शक्ति होती है। इस शक्ति
। दबाने की क्षमता किसीमें नहीं होती।

शैवाल कुछ देर चुप रही और फिर नरम स्वर में एक नारी की तरह बोली,
शशि, सब कुछ ठीक है, किंतु मैं तुम्हारी दासी हूं। चरणों में स्थान देना, यही
ख चाहती हूं।"

शशि इस तरह चौंक पड़ा जैसे तन्द्रा में पड़ा हो। वह बोला, "शैवाल, यह
या कहा तुमने ? मैं तो कुछ जानता ही नहीं। आचार्य के चरण ही मेरे लिए संसार
। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिए। अब रही तुम्हारी बात, सो
वाल, तुम मुझसे अधिक मेरी स्थिति को समझती हो। बतलाओ मैं क्या करूं ?
रा हृदय भी रह-रहकर विकल हो उठता है। प्रथमाश्रम के दिन पूरे करूं तब न
ोचूं कि धर्मपूर्वक द्वितीयाश्रम में कैसे प्रवेश किया जाए। यह भी आचार्य के ही
ाशीर्वाद से संभव है।"

शैवाल शशिमित्र का हाथ अपने हाथ में लेकर बोली, "तुम कितने भोले-भाले
ो मेरे प्राणों के साथी ! तुम्हारा यह भोलापन ही मुझे बर्बाद कर रहा है। तुम्हारे
ाचार्य मेरा त्याग करने का कभी भी आदेश नहीं देंगे। वे साक्षात् देवता हैं।
देवता किसीके हृदय को पैरों से नहीं कुचलता। मेरा विश्वास ठोस कारणों पर
ाधारित है।"

शशिमित्र भी सोल्लास बोला, "मैं भी ऐसा ही समझता हू कि मेरे आचार्य
दया और करुणा के अवतार हैं। वे वैदिक महर्षियों जैसे उदार और गंगा जैसे
ावन हैं। शैवाल, उनके चरणों की वंदना जिस दिन हम दोनों एकसाथ करेंगे
उन्हें आनन्द ही प्राप्त होगा तथा हमें दिव्य आशीर्वाद प्राप्त होकर रहेगा।"

शैवाल जैसे कराहकर बोली, "आह, वह शुभ घड़ी कब आएगी !" इतना
ोलकर शैवाल उठी और माधवी का एक गुच्छ शशिमित्र के हाथ में देकर बोली,
'शशि, इसे मेरे जूड़े में अपने हाथों से लगा तो दो।"

शशिमित्र सिहर उठा। वह क्षण-भर रुका और रेशम से भी नरम तथा चमक-
दार जूड़े में उसने माधवी का गुच्छ लगा दिया।

जूड़े को स्पर्श करते ही शशिमित्र को ऐसा लगा कि धरती के भीतर से बिजली
की अदृश्य धाराएं उसके शरीर में प्रवेश कर गईं जिससे उसने एक ज़ोरदार

झनझनाहट का अनुभव किया।

शैवाल को भी ऐसा ही अनुभव हुआ। अन्तर इतना ही था कि ऐसी झनझन
हट से शशिमित्र डर गया और शैवाल आनन्दविभोर हो गई।

२६

किसी भी वस्तु में न कोई गुण है और न अवगुण। व्यवहार-भेद से ह
गुणावगुण का सामना हमें करना पड़ता है। जिस आग से हम भोजन बनाते
उसी आग से झुलस भी सकते हैं, जिस अस्त्र से हम आत्मरक्षा करते हैं उसी अस
से आत्मघात भी कर सकते हैं, जिस ओषधि से प्राणरक्षा होती है उसी ओषधि क
गलत उपयोग किया गया तो प्राणों का संहार भी हो जाता है। आग, अस्त्र य
दवा का गुण व्यवहार-भेद से अनायास ही बदल जाता है। अब धर्म की बा
लीजिए। अभ्युदय, श्रेय और सिद्धि देना धर्म का प्रधान गुण माना गया है, किन
वस्तुतः धर्म में कोई गुणावगुण नहीं है। वह तो एक पद्धति-मात्र है। हम अप
व्यवहार के कारण उसमें मनचाहे गुणावगुण की शक्ति पैदा कर डालते हैं।

आचार्य तिस्स भी धर्म के मर्म को समझते थे और यही दावा चंडाचार्य क
भी था। दोनों ही धर्म के लिए आतुर थे, किन्तु दोनों धर्म का उपयोग अपने-अपने
ढंग से करते थे। तिस्स धर्म को निर्वाण का दाता मानकर उसका सेवन करते थे
और चंडाचार्य चाहते थे कि एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हो जिसमें बौद्ध धर्म
को माध्यम बनाकर उनके जैसे व्यक्ति प्रमुखता प्राप्त करें। उनकी दृष्टि में धर्म
साधन-मात्र था और तिस्स की दृष्टि में निर्वाण का दाता। चंडाचार्य गंगा का
उपयोग बाढ़ लाने में करना चाहते थे तथा तिस्स पीने या खेत सींचने के उपयोग
में। दोनों ही अपने-अपने स्थान पर सही माने जा सकते हैं किन्तु एक प्रश्न का एक
ही उत्तर उपयुक्त होता।

तिष्यरक्षिता पूर्णतः चंडाचार्य का साथ देती थी, वह चाहती थी कि यदि
सम्राट पूर्णतः बौद्ध धर्म को नहीं स्वीकार करें तो उन्हें शासन से हटा देना चाहिए।
तिष्यरक्षिता बौद्ध धर्म के अभ्युदय के लिए व्यग्र थी किन्तु वह यह नहीं सोच पाती
थी कि धर्म का मर्म क्या होता है। राजनीति में स्थायित्व नहीं होता। जो भी तत्त्व
राजनीति का आश्रय ग्रहण करेगा उसका जीवन खतरे में पड़े बिना नहीं रह

ता। लहरों पर चढ़कर उमड़ती हुई नदी को पार करने का प्रयास आत्महत्या ने जैसा ही गर्हित है। राजनीति तूफान है, वह तेज गति से सब-कुछ उलट-पलट ती है, निर्माण करने की क्षमता उसमें नहीं हैं। राजनीति निर्माण का कार्य ों कर सकती—यह इतिहास-सिद्ध सत्य है।

जब चंडाचार्य तिष्यरक्षिता के यहां पधारे तो सम्राट अपने बाग में महामंत्री साथ किसी गंभीर मंत्रणा में लगे थे। विशाल साम्राज्य में कहीं न कहीं कुछ न ब्र घटनाएं होती ही रहती थीं—आज यहां क्रांति हुई तो कल वहां किसी दूसरे ह का उत्पात खड़ा हो गया।

तिष्यरक्षिता के महल में आचार्य तिस्स और चंडाचार्य दोनों का स्वागत ता था, किंतु तिस्स के प्रति तिष्यरक्षिता के हृदय में घोर घृणा पैदा हो चुकी । चंडाचार्य ने महारानी को समझा दिया था कि तिस्स बाहर से देखने में सरल न पड़ते हैं किंतु भीतर से राधगुप्त के गुलाम हैं। वे गुप्तचर का काम करते हैं। ह तो कूटनीतिज्ञों का धंधा ही है कि ठंडे लोहे से गरम लोहे को काटा करते हैं। ब बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान का सवाल ज़ोर पकड़ने लगा तो धूर्त राधगुप्त ने एक द्ध आचार्य को धन आदि देकर अपना समर्थक बना लिया। अब तिस्स को बुद्ध-या में बननेवाले विहार का आचार्य बनाया जाएगा। तृतीय संगीति, जो अशोका-म में हुई, उसे तिस्स के द्वारा ही संपन्न कराया गया—यह भी एक चाल थी। स्स को प्रमुखता देकर बौद्धों की दृष्टि में उसकी शक्ति को राधगुप्त इसीलिए ढ़ा रहा है कि वह बौद्धों का नेता बन जाए और नेता बनकर तिस्स बौद्धों को धगुप्त का समर्थक बना दे। यदि यह हुआ तो राधगुप्त बौद्ध धर्म को बिल्कुल ही वा जाएगा। तिस्स और राधगुप्त की गंदी चालों से धर्म को बचाना ही होगा।

तिष्यरक्षिता के दिमाग में अच्छी तरह विष ठूंसकर चंडाचार्य स्वयंभू बौद्ध-ता बन बैठे थे। धन का अभाव नहीं रहा। स्वर्ण मुद्राओं का अंबार उनके सामने , जितना चाहें बटोर ले जाएं।

अनायास मिले हुए धन से किसीको भी लाभ नहीं हुआ—ऐसा धन जो नाश करने के काम में आता है। यह बात दूसरी है कि चंडाचार्य ऐसी जगह पहुंच के थे जहां से उन्हें नष्ट होने का कोई भय ही न था।

तिष्यरक्षिता बोली, "आचार्य, अब क्या होगा? सम्राट राधगुप्त जैसे पातकी दास बन गए हैं। बाहरवाले तो यही समझते हैं कि मगध-साम्राज्य के स्वामी

सम्राट हैं किंतु बात दूसरी ही है। गंगातट पर झोंपड़ी में रहकर अपने को त्या कहनेवाला वह अधेड़ ब्राह्मण सारे साम्राज्य को दबाकर बैठा हुआ है। सम्राट क काम है केवल युद्ध करना, नरहत्या का पाप बटोरना और एकांत बाग में अप को कैद करके बेहूदे पशुओं-पंछियों से मन बहलाना। यह भी कोई जीवन है !"

चंडाचार्य आसन से उछलकर बोले, "मैं तो चाहता हूं कि···आप धीर रखें मागधेश्वरी, आप···शांत रहें। मैं सब कुछ उलट-पलट डालूंगा। मेरे साथ केवल आर्यावर्त के ही सद्धर्मी हैं बल्कि मिश्र, पाण्ड्य, चीन देश, मयदेश, पणि गांधार, मंगोल देश, मलय देश, सुमित्रा द्वीप आदि के सद्धर्मी भी हाथ जोड़ खड़े हैं भूतान आदि देश तो अपने पक्के समर्थक और दास है···आपका चिंतित चेहरा देख कर मेरी तो छाती फटने लगती है। आप शांत रहिए। मैं तूफान खड़ा कर दे हूं—सद्धर्म रक्षा करेगा।"

तिष्यरक्षिता का हृदय उल्लास से भर गया। वह अपने सुन्दर, भरे हुए चेह पर प्रसन्नता के भाव लाकर बोली, "आपका ही भरोसा है। पहले आप राधगु से साम्राज्य की रक्षा कीजिए। तिस्स तो आपसे आप मर जाएगा। सम्राट को संभाल लूंगी। वह राधगुप्त के प्रभाव से निकलते ही सजग हो जाएंगे। मैं सम्रा को दोष नहीं देती। बेचारे सरल स्वभाव के हैं और दुर्भाग्यवश एक नरपिशाच चक्कर में पड़ गए हैं तो क्या करें आचार्य महोदय !"

चंडाचार्य आवश्यकता से अधिक उल्लसित होकर अपने दोनों मोटे और भ हाथ हवा में उछालते हुए बोले, "मागधेश्वरी जैसा चाहती हैं वही होगा। राधगु तो एक निर्बल भुनगा-मात्र है। मैं यदि चाहूं तो उसे क्षण-भर में ही निगल जाऊं

चंडाचार्य भूल गए कि वे एक महारानी के सामने बैठे हैं। बातचीत का संयत तरीका है उसपर भी उनका ध्यान नहीं रहा। जब उत्साह का वेग कुछ क हुआ तो डर गए और क्षमा-याचना के स्वर में बोले, "मुझे आप अपना अनुगत द समझें।"

तिष्यरक्षिता ने मुस्कराकर कहा, "आप क्या कह रहे हैं आचार्य ! आप सबसे श्रेष्ठ हैं, सबके लिए वदनीय हैं।"

चंडाचार्य इस बार लज्जावती नई-नवेली की तरह लज्जा का नाटच क हुए कहने लगे, "मागधेश्वरी ने मुझे जो सम्मान दिया है वह मेरा नहीं इस परम पवि चीवर का है। मैंने भगवान तथागत शाक्यसिंह के आशीर्वाद का ही सदा भरो

किया है। उनके चरण-चिह्नों पर चलता रहा। कठोर साधना और तपस्या के द्वारा निर्वाण को शरीर रहते प्राप्त कर लिया। मेरे सारे संस्कार समाप्त हो गए और अब उपादानरहित निर्वाण को प्राप्त कर लिया है। जो कुछ करना था कर चुका—अब कुछ भी करना बाकी नहीं रहा—यही निर्वाण है।"

इस अर्थहीन प्रलाप से तिष्यरक्षिता मन ही मन ऊब उठी। वह निर्वाण, त्याग, तपस्या और तथागत को नहीं जानती थी, वह जानती थी केवल सुख-भोग को। वह चाहती थी कि विशाल मगध-साम्राज्य का शासन उसकी मरज़ी से हो, सम्राट उसके इशारों पर नाचें तथा वह जो चाहे वही राज्य में हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही उसने चंडाचार्य को अपना सहायक बनाया था। बौद्ध धर्म का पल्ला उसने इसीलिए पकड़ा था कि राधगुप्त से उसको त्राण मिले। वह जानती थी कि बौद्ध भी यह चाहते हैं कि उनका शासन देश में स्थापित हो जिससे उन्हें इस धरती पर ही निर्वाण से प्राप्त होने वाला अनिर्वचनीय सुख प्राप्त होने लगे।

चंडाचार्य विदा होते समय बोले, "मैं बहुत शीघ्र ही राधगुप्त की खबर लेता हूं। राधगुप्त को हटाते ही तिस्स को भी मार भगाऊंगा। ये दोनों हमारे मार्ग के कंटक हैं। राजनीति में 'कंटक-शोधन-क्रिया' को बहुत महत्त्व दिया गया है। बिना कंटक-शोधन किए आगे बढ़ना असम्भव है।"

इधर चंडाचार्य राजनाति के गहन तत्त्वों पर अपने सारवान विचार प्रकट कर रहे थे और उधर चुपचाप द्वार पर खड़ी होकर शैवाल सुन रही थी। द्वार पर पहरा देने का भार उसे ही महारानी ने सौंपा था। वह उस दिन अस्त्रधारिणी बन-कर खड़ी थी। जब चंडाचार्य दरवाज़ा खोलकर बाहर निकले तो शैवाल का दिमाग एकाएक उबाल खा गया। उसने तलवार की मूठ पकड़कर सोचा—'एक ही वार में इस राक्षस का सिर काट लूं तो सारा उत्पात समाप्त हो जाए। यदि महारानी विरोध करें तो उन्हें भी पापी चंडाचार्य के साथ ही···'

दोनों हाथों से अपना सिर दबाकर शैवाल ने अपने को स्वस्थ किया। जो हो वह भीतर ही भीतर इतनी बौखला उठी थी कि कभी भी कोई कुकांड खड़ा कर सकती थी। स्वभाव की अत्यन्त उग्र तो वह थी ही, भड़क उठना उसका जातीय संस्कार था। वह एक लड़ाकू जाति के सरदार की कन्या थी। जब चंडाचार्य झूमते हुए उसकी बगल से निकले तो घृणा और रोष से उसने आंखें बन्द कर लीं। चंडा-चार्य ने मन के समस्त रस को आंखों में भरकर तिरछी चितवन से शैवाल के

उन्मत्त सौंदर्य को देखा और मन ही मन कहा, 'तिष्यरक्षिता ने कभी इसे मेरे यहां नहीं भेजा। जरा निकट से इसका रूप-रस तो पान करता। रानी भी एक ही छटी हुई औरत है।'

सारी बातें, जो चंडाचार्य और तिष्यरक्षिता के बीच हुई थीं, शैवाल सुन चुकी थी। वह मन ही मन छटपटा रही थी कि कैसे शशिमित्र को सावधान करे। उसे भय था कि महामंत्री पर जो संकट आनेवाला है वह उसके आराध्यदेव की प्रतिमा को भी कहीं चोट न पहुंचा दे। महामंत्री के प्रति यदि शैवाल के मन में श्रद्धा थी तो वह शशिमित्र के कारण। वह एक विदेशी युवती थी। भारत उसका घर न था—उलटे भारत के प्रति उसके हृदय में घृणा थी क्योंकि उसके पिता यहीं युद्ध में मारे गए थे तथा शैवाल को दासी बनाकर मागधेश्वरी के अन्तःपुर में पहुंचा दिया गया था। वह इस अपमान से हर घड़ी जला करती थी। किंतु शशिमित्र की प्रीति ने उसे मोम का बना डाला था। स्नेह जलते हुए सूरज को भी मोम की तरह पिघला सकता है, शैवाल तो एक नवयौवनोन्मत्ता नारी-मात्र थी।

तिष्यरक्षिता ने शैवाल को बुलाकर कहा, "शैवाल, यहां चंडाचार्य आए थे इसकी चर्चा कहीं न करना—सावधान किए देती हूं।"

शैवाल ने सिर झुकाकर आदेश सुन लिया। वह सोचने लगी, 'यदि कोई विकार नहीं है तो यह पर्दा क्यों ? क्या मागधेश्वरी के लिए यह उचित है कि वह अपने ही राज्य के विरोध में लफंगों का गिरोह जुटाएं—यह तो आत्मघात करना हुआ। तिष्यरक्षिता की दुर्बुद्धि को लाख धिक्कार !'

शैवाल अपनी कोठरी में जाकर लेट गई। खुली खिड़कियों से स्वच्छ हवा और फूलों की मादक महक आ रही थी। अपने गरम ललाट का पसीना अपनी नरम तथा बेहद चिकनी, भरी हुई हथेली से पोंछकर शैवाल उपाय सोचने लगी कि वह कैसे शशिमित्र को सावधान कर दे। महल से दो घड़ी के लिए अनुपस्थित होना संकट को बुलाना था, किंतु जब कोई अपने निश्चय पर अन्तिम रूप से स्थिर हो जाता है तो विधाता को भी अपना कर्म-चक्र कुछ देर के लिए रोक देना पड़ता है।

संध्या उतरती हुई इतनी नीचे उतर गई कि उसने अंधकार का रूप धारण कर लिया। आकाश ताराओं से भर गया था। अंधकार में ही आत्मविस्मृत-सी पड़ी हुई शैवाल जब सजग हुई तो उसने देखा, खुली खिड़कियों से रजनीगंधा की मादक महक के साथ हवा हौले-हौले आ रही है। शैवाल कोठरी के बाहर निकली और

ुली छत पर अनमनी-सी टहलने लगी। उसे ऐसा लगा कि सिर भारी हो रहा है ीर शरीर में आलस्य पैदा हो गया है। वह मुस्कराई और बोली, 'उफ्, मैं इतनी ुकुमार हो गई हूं कि चिंता की ज़रा-सी भी गरमी सह नहीं पाती ! मैं एक दासी दुश्मन की बेटी हूं, जिसका पिता हार गया है। इस अपमान से भरे जीवन में तनी सुकुमारता शोभा नहीं देती। देखा जाएगा।'

वह कुछ निश्चय करके अपनी कोठरी में घुसी तथा कुछ क्षण बाद गुप्त द्वार से हल के बाहर निकल गई—मागधेश्वरी के सुन्दर बाग के एक कोने में। यह वही ार्ग था जिससे होकर वह प्रायः शशिमित्र से मिलने जाया करती थी। उसे पता था के सम्राट जब अन्तःपुर में आ जाते हैं तब तिष्यरक्षिता उसे नहीं बुलाती। आज तक म्राट के सामने कभी भी शैवाल को जाने नहीं दिया गया। वह एकांत उद्यान में ब तक घूमती रही जब तक सम्राट की सवारी नहीं आ गई। प्रहरियों की दौड़-ूप से और महल की घोर शांति से शैवाल ने भांप लिया कि सम्राट आ गए। उसने एक झाड़ी के निकट मुड़कर पीछे की ओर देखा और धीरे से कहा, 'जा तो रही हूं किंतु वह नहीं मिल सका तो ? भग्नमनोरथ होकर लौटने की वेदना भी कैसी भयानक होती है !'

इसके बाद वह झाड़ी के पीछे जाकर गायब हो गई। उस अत्यन्त एकांत बाग की निर्जनता और भी गंभीर हो गई। केवल बसेरा लेनेवाले पंछियों का कलरव ही वहां गूज रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि सभी वृक्ष मुखर हो गए हैं, वे आपस में बात कर रहे हैं।

धीरे-धीरे आकाश मूक ताराओं से भर गया और ताराओं के इसी झिलमिल प्रकाश में शैवाल ने महामंत्री के पवित्र-शांत आश्रम में प्रवेश किया। उसने रुक-कर देखा, ऊंचे कगार के नीचे सोन और गंगा का मिलन अत्यन्त शांत दृश्य उपस्थित कर रहा है। असंख्य ताराओं ने शांति में जगमगाते हीरे गूंथ दिए हैं—शांति की चूनरी में।

मन में कोमल भावनाओं का आना शैवाल पसन्द नहीं करती थी। उसे ऐसा लगता था कि कोमल भावनाएं उसे अपाहिज बना देंगी। उसने झुंझलाकर कहा, 'इस तरह सोचना मूर्खता है···। क्यों मैं प्रकृति की रंगीनियों के फेर में पड़ जाती हूं ! इस रोग से बचना होगा।'

वह आगे बढ़ गई और अब वह महामंत्री की कुटिया को देख रही थी जो

ऊंची जगह पर चुपचाप खड़ी थी। शैवाल ने कल्पना की आंखों से देखा कि मह मंत्री ध्यानस्थ होंगे और होम-धेनु की सेवा में उसका शशिमित्र निमग्न होगा। व दबे पैरों से उस ओर चली जिधर श्यामा गऊ बंधी थी। शशिमित्र वहां नजर नह आया। ऐसे अवसर पर साधारण रमणी बिलख उठती, किंतु इसके विपरीत शैवा झुंझला उठी और बोली, 'वह गया कहां ? मिले तो पूछूं कि मैं तो इतनी दूर चल कर यहां आती हूं और तुम इतने लापरवाह हो कि'''नहीं, उसका अपराध नहीं है

शैवाल मालती-कुंज की ओर बढ़ी तो उसने देखा, एक मानव-मूर्ति मालती-कुं के चौंतरे पर बैठी है। शैवाल का दाहिना हाथ पर्तली से लटकनेवाली छोटी तल वार की ओर बढ़ गया। वह तिष्यरक्षिता के द्वार पर जब पहरा दे रही थी त उसने अस्त्र धारण किया था—वह उसी तरह चली आई थी।

शैवाल ने ध्यान से देखा तो उसका भ्रम मिट गया—वह शशिमित्र को दे रही थी जो उस मालती-कुंज के चौंतरे पर बैठा कुछ सपने देख रहा था। शैवा का कठोर गंभीर चेहरा खिल उठा। उसकी चाल में लचक पैदा हो गई और उस अनुभव किया कि उसके अंतर् का पुरुषत्व तेजी से भाग रहा है और अत्यन्त कोम नारी-भावना उभरती चली आ रही है। शैवाल ने उसे उभरने दिया।

शशिमित्र ने चौंककर पूछा, "तुम ? यहां ? इस समय ?"

शैवाल शशिमित्र के कंधे का सहारा लेकर बैठ गई और बोली, "क्या मेर यहां आना तुम्हें नहीं रुचता ?"

शशिमित्र बोला, "मेरे बाद तुम मुझे पहचानोगी शैवाल ?"

शैवाल कांप उठी। ऐसी निराशापूर्ण बात कभी भी शशिमित्र नहीं बोलता था

शैवाल ने कहा, "तुम्हारे बाद यह अभागिन तुम्हें पहचानने के लिए बैठी रहेगी क्या ? चन्द्रमा अस्त हो जाए और चांदनी गंगा की लहरियों से खेलती रहे— यह कहीं देखा-सुना है तुमने ?"

शशिमित्र ने कहा, "समय बतलाएगा। प्रतीक्षा करो।"

२७

शैवाल जब विदा हो गई तो शशिमित्र ने अपने-आपको बहुत ही शांत पाया वह जानता था कि चंडाचार्य ने जिस गुंडेपन का रास्ता पकड़ा है और तिष्यरक्षित

ी सहायता से उसने जैसी योजना बनाई है वह राज्य का सत्यानाश करने में सहा-क होगी। जिस सुखमय भविष्य की कल्पना चंडाचार्य ने की है और मूर्ख तिष्य-क्षिता ने अपने लिए जिस स्वर्ग का निर्माण करना आरंभ किया है वह जंगली आग ा रूप धारण करेगा। शशिमित्र ने सोचा—यदि इसीका नाम राज्य है, इसीको त्ता कहते हैं, यही धरती पर का चरम आनन्द है तो नरक में कौन-सी चीज़ होगी ? ड्यंत्र, अविश्वास, धोखा, खून, व्यग्रता, चिंता, अशांति, हे भगवान, समझ में नहीं ाता, राधगुप्त जैसे ऋषिकल्प महामानव कैसे इस जलती हुई चिता के बीच में बैठना पसंद करते हैं ! उन्हें क्या लेना-देना है साम्राज्य से ! वे राज्य से कुछ पाते नहीं। जनता उनके लिए मोटा अन्न और मोटा वस्त्र जुटा देती है। वे तपस्वी हैं। विद्यार्थियों को लेकर ज्ञानयज्ञ करना उनका परम धर्म है। तत्त्वचिन्तन में समय व्यतीत करते हैं, फिर इस उत्पात से उन्हें घृणा क्यों नहीं होती ?

अपना साहस बटोरकर शशिमित्र ने अपने आचार्य से पूछा, "प्रभो, मैं देखता हूं कि यह शासन-व्यवस्था का कार्य बहुत ही उद्वेगजनक है। आप एक तपोनिष्ठ ऋषि हैं। क्यों इस अर्थहीन उपद्रव में मन लगाते हैं ? चलिए मंदाकिनी के शांत तट पर बैठकर आत्मानन्द प्राप्त किया जाए। हिमालय की गोद में शांति बरसती है, यहां तो पूस-माघ की रात को भी लू चलती है भगवन् !"

आचार्य प्रदीप के मंद प्रकाश में शांत और प्रसन्न मन से बैठे थे। शशिमित्र के प्रश्न ने उन्हें चौंका दिया। वे एकाएक सजग होकर बैठ गए।

शशिमित्र फिर बोला, "आप क्षमा करें। मुझे सर्वत्र आग धधकती हुई नज़र आती है। जिसे आप राष्ट्र की श्रीवृद्धि के लिए आवश्यक मानते हैं वह राज्य तो राष्ट्र के विनाश का कारण बन चुका है। युद्ध और अत्याचार के अतिरिक्त राज्य से जनता को क्या मिलता है ? सच पूछिए तो राज्य जनता के पापों का ही प्रति-रूप है। आचार्यदेव, आप इस भंवर से बाहर निकलिए, मगध-साम्राज्य को कब तक आप सुरक्षित रखिएगा ? न तो आप अमर हैं और न अशोक। कभी न कभी यह राज्य उनके अधीन होगा ही, जिनकी कल्पना भी आप आज नहीं कर सकते।"

आचार्य राधगुप्त का चेहरा बहुत गम्भीर हो गया। वे फिर भी मूर्ति की तरह अचल बैठे रहे। हवा के मधुर स्पर्श से उस कुटिया का वातावरण सुखद था, किंतु शशिमित्र की बातों ने एक विचित्र स्थिति पैदा कर दी थी।

शशिमित्र हाथ जोड़कर बोला, "प्रभो, हम जिस आशा के पीछे दौड़ रहे हैं

वह किसी न किसी दिन विनाश का रूप धारण करके सामने खड़ी हो जाएगी यह ध्रुवसत्य है। मैं चरणों में निवेदन करता हूं कि हम इस सत्ता-राक्षसी को प्रणाम करके विदा हो जाएं, नहीं तो जब यह अपना अपवित्र मुंह खोलेगी तो फिर सबको समेट लेगी। इसने कौरव, पाण्डव और अन्त में भगवान कृष्ण के साथ ही यादव वृष्णि और कुक्कुर वंश को भी खा डाला। अन्त में सारा आर्यावर्त इसकी लपेट में आ गया···"

आचार्य जैसे घबराकर बोले, "चुप रहो आयुष्मान, तुमने मुझे पागल बना दिया। बेटा, सचमुच मैं गले में सांप डालकर बैठा रहा। अब तो जीवन की संध्या मेरे सामने है। सिद्धों और गणों से सेवित कैलास की शांत छाया में बैठना मुझे भी प्रिय है। शशि, मैं तुझपर प्रसन्न हूं। अशोक का मोह मुझे हिलने तक नहीं देता यह मोह अविद्या का ही एक रूप है। मैं अनुभव करता हूं कि मेरे भीतर प्रकाश का अभाव है। मेरा जैसा रूप बाहर की दुनिया देखती है वह धोखा तो नहीं है? मैं शरीर से त्यागी बन गया हूं किंतु मन तो सब-कुछ ग्रहण कर रहा है, सम्मान शक्ति, वंदना, सब कुछ।"

शशिमित्र ने कहा, "हम अंतर् और बाहर को एकरूपता प्रदान करें तो अच्छा। यदि भीतर से आप महान मगध-साम्राज्य के महामंत्री बनने के अहंकार को प्यार करते रहे तो फिर बाहर का यह त्याग दूसरों के लिए आदर्श भले ही हो किंतु आपके लिए फलप्रद नहीं हो सकता। हम कुटिया में रहकर कुटिया की ही चिंता करें। किंतु यहां तो बात ही दूसरी है। संतों जैसा जीवन व्यतीत करते हैं और साम्राज्य की चिंता करते हैं। यह परस्पर-विरोधी रूप हमें किसी न किसी दिन बर्बाद कर देगा आचार्यदेव, बर्बाद कर देगा।"

शशिमित्र का गला भर आया। वह रोता हुआ आचार्य के चरणों पर गिरकर बोला, "मेरी मुखरता को क्षमा करें। प्रभो, न जाने किसकी प्रेरणा से मैं इतना बोल सका!"

आचार्य की आंखें भी सजल हो गईं। उन्होंने बड़े स्नेह से शशिमित्र को उठाया और कहा, "वत्स, मैं भी जाग गया हूं। अब नींद के चक्कर में नहीं पड़ूंगा। तू चिंता मत कर, अब मैं सत्य के पथ पर चलकर वहां पहुंचना चाहता हूं जहां पहुंचना मेरे जैसे प्रत्येक व्यक्ति का जीवन-धर्म है।"

रात समाप्त हो रही थी। दीपक धीरे-धीरे निर्वाण प्राप्त कर चुका था। एक-

क करके तारे भी उषा-चरणों में लीन होते जा रहे थे। महामंत्री जैसे घोर समाधि थे और शशिमित्र होम-धेनु की सेवा में लीन हो गया था।

उषा की आनन्ददायक विभा दक्षिण-वायु के स्फूर्तिदायक झोंके के साथ फैलने गी। पंछी डालों पर बैठकर अलसित स्वर में कलरव करने लगे।

शैवाल की भी आंखें खुलीं। उसने सारी रात बहुत ही भयानक स्वप्न देखा ा। वह एक लाश को कंधे पर उठाए रक्तसागर के किनारे घूम रही थी। वह ाश कभी-कभी चीख उठती थी—उसे क्षमा कर दो, वह अज्ञानी है।

शैवाल खाट पर से उछल पड़ी और फर्श पर चक्कर खाकर गिरी। वह फर्श र मूर्छितावस्था में कब तक पड़ी रही यह उसे पता नहीं चला। जब वह होश में ाई तो घबराकर वह कमरे से बाहर भागी और यदि सामने दीवार न होती ो भागती हुई दो सौ हाथ ऊंची छत पर से नीचे गिर जाती। दीवार से टकराने र उसकी अर्धचेतना को एक ज़ोरदार झटका लगा और पूरी तरह सचेत होकर वह हांफने लगी।

वह घबराई-सी अपनी कोठरी में लौटी और खाट पर लेटकर सारी घटना को स्मरण करने लगी, यह सब क्या है ? वह रात को शशिमित्र के निकट से लौटी। तिष्यरक्षिता ने उसे आधी रात को बुलाया और कहा कि जो कुछ तू जानती है उसे गोपनीय रखना। इसके पूर्व भी तुझे सावधान कर चुकी हूं।

इसके बाद शैवाल अपनी कोठरी में आकर बिना भोजन किए सो गई। वह अत्यन्त उद्विग्न थी। निद्रावस्था में उसने जो कुछ देखा था यद्यपि वह स्वप्न था फिर भी वह अशुभ था और अशुभ बातें किसीको भी प्रिय नहीं जान पड़तीं। ज्यों-ज्यों तिष्यरक्षिता शैवाल को सावधान करती जाती थी उसका संदेह बढ़ता जाता था। बात को वज़न मिलता जाता है यदि उसपर बार-बार ज़ोर दिया जाए। रात की चेतावनी ने शैवाल के दिमाग को बौखला दिया।

वह प्रयास करके भी मन को शांत नहीं कर सकी तो बोल उठी, 'मेरा यहां कौन है जो सिरहाने में बैठकर रोएगा ! दासी का जीवन भी कोई जीवन होता है ! अभी शरीर में शक्ति है, जवानी है; कल जब बुढ़ापा आएगा तो पाटलिपुत्र की सड़कों पर भीख मांगने के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा नहीं रह जाएगा। यह तिष्यरक्षिता भी अपने लिए फांसी का फंदा बना रही है—मरने दो इसे कुत्ते की मौत।'

इसके बाद वह उछलकर खाट से उतरी और स्नानागार में बिजली की तर घुस गई। उसने इतनी तेजी से किवाड़ बन्द किए कि उसकी आवाज़ दूर-दूर त फैल गई। दूसरी दासियां, जो खाट पर अंगड़ाइयां ले रही थीं, घबराकर इध उधर देखने लगीं।

दोपहर को फिर चंडाचार्य का अशुभागमन हुआ। वे किसी विजयी सेनापति की तरह अपनी पूरी ऊंचाई में तनकर इस तरह चल रहे थे कि जो द्वाररक्षक थे अकचकाकर भिक्खुराज को देखने लगे। उन्हें ऐसा भ्रम हुआ कि चंडाचार्य ते शराब के नशे में तो नहीं हैं।

तिष्यरक्षिता ने उनका स्वागत किया। बैठते ही चंडाचार्य दाहिने-बायें देख कर बोले, "मागधेश्वरी, कोई यहां है तो नहीं ? दीवारों के भी कान होते हैं। भगवा तथागत ने बार-बार सावधान किया है कि दीवारों से भी सावधान रहो।"

तिष्यरक्षिता बोली, "निश्चिंत रहिए आचार्य ! यहां कोई सुननेवाला नहीं है द्वार पर जो दासी खड़ी है वह गूंगी और बहरी भी है—वह यहां की भाषा समझती भी नहीं, समुद्र पार से लाई गई है कंबोजद्वीप से।"

चंडाचार्य कबूतर की तरह छाती तानकर बोले, "बस, अब दर नहीं है। पांच सहस्र स्वर्ण-मुद्राएं खर्च करनी पड़ीं। अब मुक्ति मिल जाएगी, बहुत शीघ्र।"

उत्साहित होकर तिष्यरक्षिता ने कहा, "काम के लिए ही तो धन होता है मिट्टी में दबाकर रखना तो उसका प्रयोजन नहीं है।"

चंडाचार्य अपनी अंदर की ओर घुसी हुई छोटी-छोटी बेशर्म आंखों से तिष्य रक्षिता के अत्यंत मोहक रूप का रसपान करते हुए नरम स्वर में बोले, "मागधेश्वरी, सचमुच यह मगध-साम्राज्य आपके चरणों का दास है। प्रजा आपकी पूजा माता तारादेवी के आसन पर करती है।"

अपनी प्रशंसा सोल्लास सुनना श्रेष्ठ व्यक्तियों का काम नहीं है—यह सिद्धां अचानक तिष्यरक्षिता को स्मरण हो आया। उसने अपने श्रेष्ठत्व को प्रमाणि करने के लिए लज्जा से सिर झुकाकर कहा, "मैं तो धर्म की एक अदना दासी हूं धर्म की शरण में रहने के लिए मन व्यग्र रहता है। यदि भगवान तथागत की दय हुई तो मेरी यह कामना आपकी सहायता से पूरी हो जाएगी। मेरी यह कामन है कि यह सारा आर्यावर्त एक बार पुनः पीत शोभा से सुशोभित हो जाए।"

इस सुललित कल्पना में चार चांद लगाने का प्रयास करते हुए चंडाचार्य बोले

हान भिक्खु-संघ एक स्वर से हमारी मागधेश्वरी को धर्म की सेनाध्यक्षा तथा रतेश्वरी के पद पर प्रतिष्ठित कर दे, यही मेरी कामना है। हे तथागत ! तुम कहां शास्ता, मेरी कामना पूरी करो शाक्यसिंह !"

इतना बोलकर भैंसे की तरह सांस लेते हुए चंडाचार्य महारानी के श्रीमुख ओर ललचाई हुई आंखों से देखने लगे। तिष्यरक्षिता अचानक जैसे चौंक गई र बोली, "हां, आचार्य ने कौन-सी व्यवस्था की है ?"

चंडाचार्य भी चौंक पड़े और बोल उठे, "गांधार का प्रसिद्ध धनुर्धर आ गया अर्जुन और द्रोण को भी धनुर्विद्या में नीचा दिखलाने की शक्ति रखता है। रात अंधकार में उड़ते हुए चमगादड़ की पूंछ बाण मारकर काटते तो मैंने देखा है। माल है मागधेश्वरी, कमाल है। वह फौलाद का बना हुआ योद्धा है। उसके रीर से टकराकर तलवार की धार कुंद हो जाती है। देखते ही बनता है उसके थी जैसे विशाल शरीर को।"

तिष्यरक्षिता का मन भी ललचा उठा ऐसे दुर्दान्त पुरुषसिंह को देखने के लिए ो एक स्वाभाविक तकाजा था।

चंडाचार्य ने अनिच्छापूर्वक जाने की इच्छा प्रकट करते हुए कहा, "बस, अब र नहीं है। आप देख लीजिएगा धर्मेश्वरी, कि पलक मारते ही सारा चित्र बदल या।"

चंडाचार्य विदा हुए और तिष्यरक्षिता द्वार तक पीछे-पीछे गई। यह सम्मान न्हें इस जघन्य जीवन में पहली बार मिला था और यह कौन कह सकता है कि ल क्या होगा—कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि प्रथम ही अंतिम बन ाता है।

ऐसे व्यक्तियों का प्रेम, जो अपनी-अपनी गोट लाल करने में एक-दूसरे को साधन बना रहे हों, राजनीति में सनातन से देखा जाता है। यह प्रेम प्रेम का मल है जिसे राजनीतिज्ञ बड़ी शान से अपने उपयोग में लाते हैं। चंडाचार्य और तिष्य-रक्षिता का नाता भी कुछ इसी तरह का था। दोनों एक-दूसरे को साधना चाहते थे। एक के पास अपार धन, सत्ता और इसी तरह की बहुत-सी दर्लभ चीजों का अम्बार था तो दूसरे के पास भी नीचता की संपत्ति थी। दोनों एक-दूसरे का मुंह जोहते थे। चंडाचार्य को सोने की थैली चाहिए थी तो तिष्यरक्षिता को चंडाचार्य जैसे उपयोगी गुंडे की आवश्यकता थी।

इस तरह की तुक शायद बहुत कठिनाई से बैठती है किंतु विधाता की महिम को कौन चुनौती दे सकता है !

पूर्वजन्म-कृत पाप की तरह चंडाचार्य अनायास ही तिष्यरक्षिता को प्राप्त हो गए थे। पाप को प्यार करने की दुर्बुद्धि भी तिष्यरक्षिता में अनायास ही ज़ोर पकड़ गई थी। होनहार कैसे-कैसे संयोग जुटाता है, देखने और समझने की चीज़ है।

चंडाचार्य अपने दुर्गन्धपूर्ण घर में पहुंचे। वहां उस समय कोई नहीं था। आंखों म काजल लगाए और चांदी के बहुत-से गहने पहने एक जवान दासी ज़रूर थी जो वार-बार दरवाज़े की ओर देख रही थी। आते ही चंडाचार्य ने उस दासी को देखा उसका रूप उन्हें बहुत ही निम्न स्तर का जान पड़ा यद्यपि पहले ऐसी बात न थी बिजली की चमक के बाद लालटेन की रोशनी कुछ क्षण तक बहुत ही मटमैली नज़र आती है। तिष्यरक्षिता के निकट से लौटने के बाद उस दासी का रूप और शृङ्गार यदि चंडाचार्य को घिनौना लगे तो उचित ही है।

चंडाचार्य बोले, "यह तो बंदरी-सी लगती है, बिलकुल ही ऊंट की बेटी जैसी।"

वे झूमते हुए अपनी कोठरी में घुसे जो शराब की तेज़ गंध से भरी हुई थी कोने में शराब के दो मटके एक फटे हुए चीवर से ढके सयत्न रखे हुए थे। आसन पर सिंह की तरह बैठकर चंडाचार्य ने यह मान लिया कि वे सम्राट अशोक हैं उन्होंने कभी सम्राट को इसी तरह बैठे देखा था। चंडाचार्य को इस कल्पना से आनंद ही आया कि वे तिष्यरक्षिता के अधिकारी हैं क्योंकि वे अशोक हैं। यह दिमागी सनकीपन बहुतों के जीवन का आधार बन जाता है। ऐसे भी बहके हुए व्यक्ति इस दुनिया में मौजूद हैं जो अपने दिमागी सनकपन के सहारे ही जी रहे हैं और अच्छी तरह जी रहे हैं।

उन्होंने प्रयास किया कि उस दासी पर तिष्यरक्षिता के रूप का आरोप करके मन बहलाने का अवसर निकाल लें। वे प्रयास में लगे ही थे कि किसीने दरवाज़े को धकेलना शुरू कर दिया। चंडाचार्य गुर्राए और बोले, "देख तो मीनाक्षी, कौन साला है ! कोई भी हो, झाड़ू से मरम्मत करके निकाल दे।"

मीनाक्षी ने मर्मभरी मुस्कान और तिरछी चितवन से बेचारे चंडाचार्य को अर्धमूर्छित करके कहा, "तुम ही क्यों नहीं जाते जो मुझे दूसरे के सामने भेजते हो! राजा का कोई संवादवाहक हुआ तो क्या कहेगा ?"

चंडाचार्य उसी तरह चौंक उठे जैसे ऊंघते हुए बंदर की पीठ पर कोई एक धौल ा दे। मीनाक्षी पीछे के दरवाज़े से नि.शब्द खिसक गई और चंडाचार्य मन ही आगंतुक की माता-मातामही का संबंध कुत्ते और गधे जैसे घिनौने पशुओं थापित करते हुए दरवाज़ा खोलने गए। उन्होंने देखा कि गांधार देश का धनु- सामने खड़ा है। वह एक आंख का काना और पिशाच की तरह डरावना है। की दूसरी आंख बाहर की ओर निकली हुई और गोल है। चेचक के दागों से रा भरा हुआ है जैसे दीमकों ने खोद डाला हो। शरीर दुर्बल और सिर पर बे-लम्बे बाल—दाढ़ी-मूंछों का एक जंगल। वह आगे की ओर झुका हुआ- था।

चंडाचार्य ने देखा लघुकाय पिप्पलाद उस व्यक्ति के पीछे अपने को छिपाए ड़ा है। स्वागत-सम्भाषण के बाद वे घर के अंदर घुसे। दरवाज़ा बंद करके चंडा- र्य उस व्यक्ति को अपनी कोठरी में ले गए और पिप्पलाद से बोले, "अरे, तू हर ही बैठ ! कोई साला आ जाए तो बाहर से ही टरका देना।"

पिप्पलाद ने इसे अपना अपमान समझा किंतु डर के मारे वह बोल न सका।

दिन बीता और रात आई।

पाटलिपुत्र की मनोरम वीथियां आनंद-कोलाहल से जैसे जाग उठी हों, जो दिन- र के कर्म-कोलाहल के असह्य दबाव से मन मारे पड़ी थीं। राजपथ पर आनंद- भोर सुखी-संपन्न नागरिकों का आना-जाना बढ़ गया। दुकानों पर भीड़ नज़र ाने लगी। फूलों की दुकानों तक तो पहुंचना भी कठिन था। पुष्पपुर के मौजी ागरिकों के हृदय में प्रकृति के प्यारे पुष्पों के प्रति यदि स्नेह हो तो उचित ही है।

इस हलचल से दूर पर नगर के एक अप्रसिद्ध कोने में गुप्तचर-विभाग के धान का कार्यालय था। उस कार्यालय में भिखारी, कोढ़ी, सनकी, भिक्खू, दढ़ियल, टाधारी, सभी तरह के मानव आते-जाते नज़र आते थे मानो वहां खैरात बांटी ाती हो। बदनाम स्त्रियां और ततोधिक घृणित वृद्धाएं भी वहां आती-जाती रहती ीं। पता नहीं चलता था कि आखिर इस बड़े-से डरावने भवन के भीतर क्या है।

आधी रात को चंडाचार्य की प्रिय दासी मीनाक्षी भी शराब के नशे में झूमती ई उस घर में घुसी। वह बिलकुल ही आपे से बाहर थी। किसी न किसी तरह हारा लेती हुई वह चौथी मंज़िल पर पहुंची। वहां एक अधेड़ व्यक्ति एक कोठरी ं प्रेत की तरह बैठा था, क्योंकि वह कोठरी करीब-करीब अंधकाराच्छन्न थी।

मीनाक्षी वहां पहुंचते ही होश में आ गई। उस अधेड़ व्यक्ति के चरणस्पर्श कर वह धीरे से बोली, "वह आ गया। चंडाचार्य के यहां मैंने देखा। महामंत्री व रक्षा का प्रबंध कीजिए। मुझे खतरा नज़र आता है। चंडाचार्य आज राजभवन भी गया था। पुष्पकन्या से पता चला कि तिष्यरक्षिता ने चंडाचार्य को धन देने व वचन दिया है।"

मीनाक्षी की बातें ध्यानपूर्वक सुनकर उस अधेड़ व्यक्ति ने ताली बजाई। बग की कोठरी से एक दुबला-सा व्यक्ति चुपचाप निकलकर हाज़िर हुआ। अधेड़ व्यक्ति ने कहा, "मृगांक, तुम महामंत्री की कुटिया की रक्षा का प्रबंध कड़ा कर दो विश्वासी और तत्पर व्यक्तियों को लगा दो। देखो, महामंत्री को भी पता न चले कि क्या हो रहा है। वे जान जाएंगे तो हमारी जान के ग्राहक बन जाएंगे।

"जैसी आज्ञा स्वामी की," कहकर मृगांक जैसे आया था वैसे ही चला गया। अब मुड़कर उस अधेड़ व्यक्ति ने मीनाक्षी से कहा, "सावधान होकर काम करो तुम्हारा वेतन दुगुना कर दिया जाता है। साम्राज्य की रक्षा करना हमारा धर्म है हम किसीके दास नहीं हैं, साम्राज्य के सेवक हैं। यह सदा स्मरण रखो कि साम्राज्य पर किसी ओर से भी खतरा पैदा न होने पाए।"

मीनाक्षी ने फिर उस व्यक्ति का चरणस्पर्श किया। वह कोठरी से निकल और बाहर निकलते ही शराब के नशे में लड़खड़ाने लगी। वह अस्फुट स्वर गालियां बकती हुई खुली सड़क पर आ गई और जिस ओर बदनाम औरतों व बस्ती थी उसी तरफ चल पड़ी। इधर-उधर खड़े कुछ व्यक्तियों से टकराती हु और किसी-किसीको इशारे करती हुई वह अंधकार में गायब हो गई।

रात समाप्त हो गई।

प्रदीपों की जगमगाहट समाप्त हो गई। नगररक्षक दल के दल सड़कों औ पतली-पतली गलियों में भयानक कुत्तों के साथ घूमने लगे। अपने-अपने घरों बिना किवाड़ लगाए नागरिक मीठी नींद सो गए जैसे माता की गोद में निर्भय होक शिशु सो जाता है।

सुशासन माता की गोद से कम सुखद नहीं होता और साथ ही निरापद भी

२८

जैसे वसंत के आते ही एक-एक पत्ता पीला होकर टपकता जाता है वैसे ही भाग्य के आते ही पुण्य की एक-एक पंखुरी निःशब्द खिसककर गिरती चली जाती और अन्त में कांटे की तरह एक तिनका रह जाता है।

यह सिद्धांत केवल व्यक्ति पर ही लागू नहीं होता; परिवार, समाज और राष्ट्र पर भी लागू हो जाता है।

चंडाचार्य ने बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान के नाम पर छत्र और सिंहासन का जो स्वप्न देखा था वह बौद्ध धर्म के भीतर से उसके पुण्य के समाप्त हो जाने का ही लक्षण कहा जा सकता है। जिस धर्म-संगठन के भीतर से धर्म की शक्ति या प्रमुखता नष्ट हो जाती है, वह धर्म-संगठन केवल षडयन्त्रकारी वर्ग के रूप में रहकर भयानक बन जाता है—ऐसा इतिहास का कहना है। काल-प्रवाह में पड़कर बौद्ध धर्म ने भी करीब-करीब अपना सौंदर्य खो दिया था। उसके रक्षक उसकी पुरानी महत्ता को उद्दीप्त करके अपना उल्लू सीधा करना चाहते थे और कहते थे, "हम बौद्ध धर्म के लुप्त गौरव को फिर से प्रतिष्ठित करने के लिए जान दे रहे हैं।"

भवभोग और विभवभोग में लिप्त व्यक्तियों की जान इतनी सस्ती नहीं होती जो वे उसे अनायास ही गंवाने को तैयार हो जाएं। शरीर ही से तो उन्हें धरती पर का आनन्द-लाभ करना है। यदि वे किसी सिद्धांत के लिए शरीर को होम देंगे तो सुरा, सुन्दरी और सम्पदा के मजे कौन लूटेगा! प्रेत बनकर तो ऐसे आनन्द की गुदगुदी का सुखानुभव किया ही नहीं जा सकता—अशरीरी प्रेत की स्थिति तो बहुत ही दयनीय मानी गई है। सच्चा अनुभव तो प्रेत बनकर ही प्राप्त किया जा सकता है जिसके लिए हम तैयार नहीं हैं।

किन्तु जीवन में सत्य को प्रतिष्ठित करनेवाले सफलजीवन व्यक्ति भी यदा-कदा नज़र आ जाते हैं, जैसे आचार्य तिस्स। उन्होंने धर्म का साक्षात्कार अपने जीवन में किया था और निर्वाण का अनुभव ज्ञानमय शरीर में करके शांत हो गए थे। न तो उन्हें कभी उद्वेग होता था और न भौतिक सुख ही मोहित करता था। वेदना-मुक्त होकर ब्रह्म-विहार करते हुए आचार्य तिस्स ने एक दिन सुना कि धर्म को फिर से प्रतिष्ठित करने के लिए आचार्य चण्ड प्रयत्नशील हैं।

तिस्स ने अपने प्रिय शिष्य पद्मसंभव से कहा, "आयुष्मान, पत्थर की नौका

पर चढ़कर कोई कैसे नदी पार कर सकता है ! चंडाचार्य श्रेष्ठ पुरुष हैं, कि उनका मन अभी भी भव और विभव के चक्कर से मुक्त नहीं हुआ है। धर्म अपने आप में प्रतिष्ठित है। उसका संतुलन ठीक रखना ही धर्म-सेवकों का है। वह अपनी धुरी पर स्वयं घूमता रहता है। चण्डाचार्य का अपना ही संतु अभी ठीक नहीं है, ऐसा मुझे जान पड़ता है। वे राजनीति का आश्रय ग्रहण चुके हैं। राजनीति स्वयं ही शान-प्रधान और बेहद चंचल होती है। धर्म राजनी के आश्रय में आते ही अपने श्रेष्ठ गुणों का त्याग कर देता है। राजनीतिज्ञ अपने विष या अस्त्र की तरह काम में लाते हैं। अविरोधी धर्म ही धर्म है। किसीको भी आघात नहीं पहुंचाता। हां, धर्म से उसे ही हानि होती है जो धर्म हनन करता है।"

इतना बोलकर आचार्य तिस्स इस तरह चुप हो गए जैसे वे सहज समाधि लीन हो गए हों। सामने राजगृह की पहाड़ियां थीं और पहाड़ी भी साफ न आती थी जिसपर खड़े होकर बुद्धदेव कारागार में बन्द सम्राट बिम्बसार को नि दर्शन देते थे। इसी समय एक दूत ने संवाद दिया कि मगध-सम्राट पधार रहे आचार्य का क्या आदेश है ?

आचार्य ने शांत स्वर में कहा, "जैसी उनकी इच्छा।"

दूत चला गया किन्तु आचार्य शांत बैठे रहे। कुछ देर में ही पैदल चलते हु महान सम्राट अशोक उस तपस्वी की कुटिया में नतमस्तक पधारे। उन्होंने दूर ही हाथ जोड़कर अभिवादन किया। आचार्य ने सम्राट के लिए एक कुशासन दे का आदेश पद्मसंभव को दिया। सम्राट अकेले ही आए थे। वे आसन पर बै गए।

प्रौढ़ावस्था के अशोक देखने में बहुत ही दर्शनीय जान पड़ते थे। कभी उनके अत्यन्त सुन्दर और प्रभावशाली चेहरे पर राजतेज चमक उठता था तो कभी भीत की अशेष शांति और साधना की विभा झलक उठती थी। वे सम्राट थे या योग यह बतलाना कठिन था। आसक्ति और अनासक्ति का ऐसा सुन्दर समन्वय इति हास के पृष्ठों पर शायद ही कहीं नजर आए। कुशल-समाचार पूछने के बाद गंभी स्वर में मितभाषी सम्राट ने कहा, "मेरी प्रार्थना है कि आचार्य एक बार बुद्धगय पधारकर देख लेते कि वहां जो विहार जनता की ओर से बन रहा है वह कैस है।"

आचार्य तिस्स ने कहा, "मैं तब देखना उचित समझूंगा कि उस विहार में जो ह रहे हैं वे कैसे हैं। ईंट पत्थरों को देखकर क्या होगा राजन्, धर्म की प्रतिष्ठा ो उसके मर्म को समझकर लोकव्यवहार के धरातल पर उतरनेवाले विचारवान ुरुषों से होती है, विहारों या आरामों से नहीं।"

सम्राट का शांत-गंभीर चेहरा भीतर के आनन्द से भर गया। उन्हें जैसे एक प्रकाश मिल गया। जीवन में धर्म को प्रतिष्ठित करना होगा और हमारे कार्यों से ही धर्म के स्वरूप को लोग देखें—यही धर्म की सेवा है।

फिर तिस्स बोले, "आप धर्मधर्मेश्वर तथागत के जीवन को ध्यान से देखिए। राजन्, उन्होंने धर्म के नाम पर कुछ भी नहीं किया। वे एक साधारण भिक्खु की तरह भिक्षा मांगते थे, स्नानाहार करते थे, रोगग्रस्त होने पर ओषधि-सेवन करते थे। आराम से सोते थे और चंक्रमण करते थे। यही न ? उन्होंने धर्म को चीवर की तरह ऊपर से धारण नहीं किया था। वे सदेह धर्म थे। उनके एक-एक व्यवहार से धर्म का परम पवित्र स्वरूप स्पष्ट होता था। धर्म को धारण करना धर्म की सेवा नहीं है—धर्म को आत्मार्पण करना होगा, फिर हम धर्ममय हो जाएंगे, हममें और धर्म में ज़रा भी पार्थक्य नहीं रह जाएगा। यह समवायी सम्बन्ध ही धर्म की सेवा है।"

आचार्य का उपदेश सम्राट के शरीर के अणु-अणु में बिजली की तरह फैल गया। उन्होंने अनुभव किया कि हठात् उनका पुराना शरीर गायब हो गया और एक परम ज्योतिर्मय शरीर उन्हें प्राप्त हो गया। यह था ज्ञान के धरातल पर पुनर्जन्म-लाभ करना।

सम्राट ने एकाएक झुककर आचार्य का चरणस्पर्श कर लिया। उनका वह मस्तक, जो कभी भी किसीके सामने नहीं झुका, एक अनागरिक अनासक्त तपस्वी के चरणों पर झुक गया। अत्यधिक तृप्ति का सुखानुभव करते हुए सम्राट बोले, "भगवन्, आज मैंने नया जीवन, नई दृष्टि और नया ज्ञान प्राप्त किया। मेरा पुराना चोला, जो सांप की केंचुली जैसा था, उतर गया।"

आचार्य ने आशीर्वाद दिया और सम्राट विदा हो गए। इस घटना का कोई भी प्रभाव आचार्य के शांत मन पर नहीं पड़ा। वे फिर ध्यानस्थ हो गए। हां, सम्राट के भीतर जो विचारों का संघर्ष होता रहता था, वह एकाएक शांत हो गया। जब वे लौट रहे थे तो उनकी गति अत्यन्त शान्त थी। उनको आते और

जाते पद्मसंभव ने देखा था। पद्मसंभव ने साफ-साफ देख लिया कि जो सम्रा आए थे वे यहीं रह गए और जो सम्राट विदा हो रहे हैं वे कोई दूसरे हैं। आ वाले सम्राट और जानेवाले सम्राट की चाल और शरीर के तनाव में इत अन्तर नज़र आता था कि पद्मसंभव आश्चर्यविभोर हो गया—अचानक यह क हो गया! क्या मानव इतना कोमल है, नरम है कि वह क्षण-मात्र में भी बद डाला जा सकता है? तर्क चाहे कुछ भी कहे किंतु पद्मसंभव ने अपनी आंखों से देख लिया कि फौलाद से भी कठोर अशोक कितनी जल्दी पुनर्जन्म-लाभ कर विदा हो रहे हैं।

सत्यपूत वाणी का बल अजेय होता ही है।

पद्मसंभव ने आचार्य से पूछा, "भगवन्, सम्राट इतनी जल्दी कैसे बद गए?"

तिस्स ने कहा, "आयुष्मान, अच्छी तरह सूखी लकड़ी को प्रज्वलित कर दे के लिए आग को एक नन्ही-सी चिनगी ही काफी है। भीगी लकड़ी को जलाने क प्रयास यदि हम करें तो कितना उत्पात सहना होगा यह तो तुम जानते ही होगे सम्राट स्वभाव से ही साधु पुरुष हैं। उन्होंने श्रमण ब्राह्मण-धर्म का पालन किय है। उनका अन्तर्जगत् उर्वर खेत की तरह शुद्ध है। अच्छा बीज पड़ते ही अंकुर फू पड़ेगा। ऊसर का हाल तो तुम भी जानते ही हो।"

सन्ध्या हो गई थी। आचार्य से विदा होकर पद्मसंभव अपनी कुटिया की ओ चल पड़ा।

इसी समय शशिमित्र ने अपने आचार्य से पूछा, "क्या आप भी बुद्धगय पधारेंगे?"

महामंत्री बोले, "तू भी जाना चाहता है क्या? मैं नहीं जाता परन्तु यदि आचार्य तिस्स गए तो उनका सत्संग नहीं छोड़ूंगा। वे साक्षात् ज्ञान हैं। ऐसा अना सक्त योगी देखने में नहीं आता।"

शशिमित्र चुप लगा गया। मंत्रिपरिषद की आवश्यक बैठक समाप्त होने के बाद महामंत्री से यह प्रश्न शशिमित्र ने पूछा था। निश्चय ही वृद्ध महामंत्री भीतर से थक गए थे और वे विश्राम चाहते थे। वे कुटिया के भीतर चले गए और शशि मित्र ऊपर कगार पर खड़ा होकर गंगा-सोन का मनोरम दृश्य देखने लगा। उसने देखा, शरद की गंगा पर संध्या की धूप सोना बरसा रही है। राजहंस के अमल

ल डैने की तरह पाल ताने दूर-दूर पर बहुत-सी नौकाएं नज़र आ रही हैं। र शशिमित्र ने देखा, एक पगली चीथड़े लपेटे और पुरुषों की तरह सिर पर णीय धारण किए बालू पर उछल रही है। उसके एक हाथ में धन्वा है और ठ पर तरकस। वह चिल्ला रही है—हटो, मैं महारथी कर्ण पधार रहा हूं। वह त्यंचा चढ़ाकर टंकार करती है और फिर खूब तनकर चलती हुई अपने को भी कर्ण तो कभी द्रोण कहती है। शशिमित्र ने मुस्कराकर कहा, 'हे भगवान, ह शरीर ऐसा भी हो जाता है। यह स्त्री युवती और सुन्दरी भी है फिर भी इसका ह हाल है।'

संध्यावंदन का समय हो गया और महामंत्री अपनी कुटिया से ताज़ा होकर निकले। शशिमित्र आसन-पंचपात्र आदि लेकर तैयार हो गया। नित्य की तरह महामंत्री आगे-आगे चले। दोनों गंगातट पर पहुंच गए। स्नानादि से निश्चिन्त होकर महामंत्री संध्या करने बैठ गए। अस्तंगत सूर्य की कोमल किरणों के स्पर्श से उनका दिव्य गौर वर्ण ऐसा जान पड़ता था जैसे उनके भीतर से ही सुनहली किरणें फूट रही हों। महामंत्री ध्यानस्थ हो गए। समय बीतने लगा और रात का प्रथम प्रहर आरंभ हो गया। गम्भीर प्रणवनाद के बाद महामंत्री ने आसन का त्याग किया। शरद के निर्मल आकाश में ताराओं का झिलमिल प्रकाश फैल रहा था। शांत महामंत्री लौट पड़े। वे शांत कदमों से चलते हुए तट के किनारे पहुंचे जहां से पतली पगडंडी घूमती हुई ऊपर की ओर जाती थी। महामंत्री आगे-आगे चल रहे थे तथा शशिमित्र पीछे-पीछे आसन पंचपात्रादि लिए चल रहा था। वह यह भी ध्यान रखता था कि कहीं वृद्ध महामंत्री के पैर न डगमगाएं।

कुछ दूर ऊपर जाते ही अंधकार को चीरता हुआ एक बाण आया जो शशिमित्र की पीठ में घुस गया। तत्काल ही दूर से एक चीत्कार भी सुन पड़ा। शशिमित्र बाण लगते ही बोला, "मुझे किसीने बाण से मारा।" और वह गिर पड़ा।

अचानक ही इस दुर्घटना से महामंत्री चौंक उठे और उन्होंने नीचे लुढ़कने से शशिमित्र को संभाला। हलके अंधकार में महामंत्री ने देखा कि शशिमित्र की पीठ में तीर भीतर तक घुस गया है। वे किंकर्तव्यविमूढ़-से होकर क्षण-भर रुके और फिर एक झटके के साथ इस तरह शशिमित्र को गोद में उठा लिया जैसे कोई हलका बच्चा हो। वृद्ध महामंत्री के दुर्बल शरीर में भीम जैसी शक्ति न जाने कहां से आ गई थी।

दौड़ते हुए कुटिया में पहुंचकर महामंत्री ने देखा उनका उत्तरीय खून से गया। शशिमित्र अचेतावस्था में पड़ा था। यत्न करके महामंत्री ने उसके शरी बाण निकाल डाला किंतु खून का झरना झरता ही रहा—गरम खून के फ छूटते ही रहे।

महामंत्री ने बाहर निकलकर ताली बजाई। तत्काल ही एक व्यक्ति के पीछे से प्रकट हुआ। सारा समाचार कहकर उन्होंने उसे राजवैद्य के यहां दिया। एक दूसरा व्यक्ति अनायास ही आकर कुटिया के सामने खड़ा हो गया

शशिमित्र की निद्रा गाढ़ी होती जा रही थी। कभी उसका हृदय और क नाड़ी की परीक्षा करते हुए महामंत्री अपने भीतर विकलता का अनुभव कर रहे इधर रात आगे खिसकती जा रही थी और उधर शशिमित्र शांति—चिरशांति ओर खिसकता जा रहा था।

एक बार वह बोला, "पितृदेव क्षमा···शैवाल···शैवाल···क्षमा···शांति· चिर···शांति !"

देखते-देखते महामंत्री की कुटिया शताधिक रथों से भर गई। बहुत-से वैद्य चिकित्सक आए, श्रेष्ठिन आया, नगररक्षक भयाकुल-सा आया, मंत्रिमंडल के सब सदस्य आए और अंत में स्वयं सम्राट का रथ भी आया। मशाल की रोशनी वह सारा अंचल जगमगा उठा। सभी चुप थे। एक भी शब्द कहीं से सुन नहीं पड़ता था। कुटिया के बरामदे में शशिमित्र शांत पड़ा था और उसके सिर को गोद में लि महामंत्री शांत बैठे थे—अत्यंत मनोवेधक दृश्य था। सम्राट स्वयं हतचेत-से ख थे। जंगली आग की तरह यह समाचार नगर में फैल गया। अनेक वाहनों पर नाग रिकों की भीड़ महामंत्री की कुटिया की ओर दौड़ पड़ी। भीड़ में भयानक रोष फैल रहा था। एक वृद्ध बोला, "यह चोट हमारे पूज्य महामंत्री पर थी जो उनके शिष्य को लगी। हम इसे माफ नहीं कर सकते।"

दूसरा वृद्ध गरजा, "जब सम्राट अपने महामंत्री तक की रक्षा नहीं कर सकते तो वे हमारी रक्षा क्या करेंगे ?"

तीसरा उत्तेजित व्यक्ति बोला, "हम कल सम्राट के द्वार पर जाकर कहें कि वे चीवर पहनकर बुद्धगया चले जाएं और सिंहासन जनता को सौंप दें। यह जनता की धरोहर उनके पास है।"

एक महिला ने कहा, "कलिंग-विजेता इतना निर्बल-दुर्बल हो गया कि वह

ष्ट्र के प्रनीक महामंत्री तक की रक्षा नहीं कर सकता ! हम ऐसे राजा को एक ण के लिए भी सिंहासन पर देखना नहीं चाहते।" सम्राट सभी आक्षेपों को शांत दय से सुनते रहे। निश्चय ही वे एक अपराधी की तरह जनता के सामने खड़े थे— स जनता के सामने जिसने उनको अपने सिर पर बैठाया था, जिसने उनका निर्माण कया था, जिसकी शक्ति से वे 'महान' कहे जाते थे।

आधी रात समाप्त हो गई और धीरे-धीरे शशिमित्र ने अंतिम सांस ली। महामंत्री ने अपनी गोद से उसका सिर उतारकर कहा, "अब आप लोग जाएं। शशि चला गया। आप लोगों की कोई आवश्यकता नहीं है।" सभी अपने-अपने उत्तरीय से आंखें पोंछने लगे। सम्राट ने आगे बढ़कर अपना उत्तरीय शशिमित्र पर डाल दिया। वे अब तक चुप ही थे।

भीड़ ने मशाल की रोशनी में उस स्थान को देखा जहां पर शशिमित्र को तीर मारा गया था। पहले ही से वहां नगररक्षक मौजूद थे।

एक और शव वहां पर पड़ा नज़र आया जो बाणों से बिंधा हुआ था। वह एक लम्बे जवान का था। उसका चेहरा मूंछों और घनी दाढ़ी के जंगल से भरा हुआ था। यह वही व्यक्ति था जिसे चण्डाचार्य ने गांधार से मंगवाया था किंतु उस व्यक्ति को किसने बाणों से छलनी बना डाला, वह कौन था, यह कौन कह सकता है !

जांच करने से पता चला कि जैसा बाण शशिमित्र के शरीर से निकला था उसी बनावट के और भी बाण उस मृत व्यक्ति के तरकस में थे।

यह प्रमाणित हो गया कि शशिमित्र का हत्यारा वही था, किंतु उस हत्यारे का हत्यारा कौन था यह पता न चला।

जैसे ही रात का अन्त हुआ, गंगातट पर चन्दन की एक चिता धधक उठी। अग्निसंस्कार स्वयं महामंत्री ने किया। लाखों की भीड़ के सामने शशिमित्र का सुन्दर शरीर जलकर सदा के लिए समाप्त हो गया।

भूखी राजनीति एक शशिमित्र क्या ऐसे लाखों निरपराध शशिमित्रों को खाकर भी डकार नहीं लेती। राजनीति की भूख ऐसी होती है कि वह सूरज-चांद को भी चबा डाले तो भी उसकी जठराग्नि शांत नहीं होती। महामंत्री राधगुप्त के धोखे में बेचारा शशिमित्र तो एक छोटी-सी आहुति-मात्र था। हां, राधगुप्त को यदि वह चबा पाती तो उसका मन क्षण-भर के लिए शांत हो जाता।

अभी तो समय बाकी था। राजनीति धीरज से प्रतीक्षा करने में नहीं चूकती।

२९

शशिमित्र के आहत होने का संवाद जैसे ही तिष्यरक्षिता ने सुना वह पग
की तरह चीख उठी—"शशिमित्र ! वह मारा गया ! आह, वह सुन्दर युवक शशि
नहीं, नहीं, वह निरपराध था। यह बुरा हुआ, बहुत बुरा।"

इतना बोलकर तिष्यरक्षिता विक्षिप्त की तरह इस कमरे से उस कमरे
दौड़ने लगी। वह बार-बार यही बोल रही थी, "शशि निरपराध था, शशि
कोई अपराध न था, मैं जानती हूं—मुझे मालूम है।" भय से दासियां एक-दूस
का मुंह देख रही थीं। सारा महल जैसे सन्नाटे में डूब गया था। द्वार-रक्षक अ
धिक सावधान हो गए थे। सभी अकचकाए-से इधर-उधर देखते किंतु कहीं से
कोई उत्तर नहीं मिलता—चारों और जैसे प्रश्नों का जाल-सा बुना हुआ था—
क्या हुआ ? महामंत्री की हत्या का प्रयास—? यह एक अनहोनी घटना—!

शैवाल अपनी कोठरी में बैठी शृंगार कर रही थी। वह उस दिन फिर शशि
मित्र के निकट जाना चाहती थी। जब से उसने आशंका की बात सुनी थी, उस
मन विकल रहता था। वह चाहती थी कि यदि संभव हो तो वह शशिमित्र
अपने आंचल के एक कोने में निर्धन के धन की तरह बांधकर किसी ऐसी जग
चली जाए जहां राजा, महामंत्री, महारानी, राजनीति कुछ भी न हो। किंतु य
संभव न था। हृदय संभव-असंभव के ताल पर नहीं नाचता। वह तो अपनी कल्प
के ही रंग में जीता और मरता है।

जैसे ही शैवाल के निकट यह संवाद पहुंचा वह इस भयानक आघात को नह
सह सकी। वह चक्कर खाकर फर्श पर गिरी किंतु शेरनी की तरह गुर्राती हुई तुर
इस तरह खड़ी हो गई जैसे घी पड़ते ही हवन-कुंड से अग्निशिखा भड़क उठत
है। वह एक झटके में उठकर खड़ी हो गई। उसकी आंखें जवापुष्प की तरह लाल
हो गईं।

शैवाल कसकर दोनों मुट्ठियां बांधकर बोली, "यह दुर्बलता ? नहीं—!
नारी हूं और नारी ही रहना चाहती हूं।"

इसके बाद उसने जलती हुई आंखों से कोने में रखी हुई तलवार को देखा औ
होंठ चाटती हुई बोली, "पिता नहीं रहे। यही मेरी मां है।"

उसने तलवार को उठाकर चूम लिया और वह कोठरी के बाहर शांत मन

ल गई—जैसे कुछ हुआ ही नहीं। दो बार निर्जन छत पर टहलकर उसने अपने त-व्यस्त मन को एकत्र किया, फिर मुस्कराकर आसमान की ओर देखा, ताराओं भरे शांत-सूने आसमान की ओर।

शैवाल उस ओर इठलाती हुई चली जिधर तिष्यरक्षिता का कमरा था। दासियों शैवाल को रोककर कहा, "पट्टमहादेवी बहुत क्षुब्ध हैं। तुमने सुना नहीं कि ामंत्री की कुटिया···"

हंसती हुई शैवाल बोली, "सब कुछ सुना, तो इससे महारानी को क्या ? यहां त्य गुप्त हत्याएं होती ही रहती हैं। राज्य-संचालन क्या धर्मोपदेश देने से ता है ?"

वह इतना बोलकर अल्हड़ की तरह मुड़ी और दूसरी ओर चली गई। दासियों मान लिया कि यह छोकरी राक्षसी है।

एक दासी ने कहा, "यह यमन की रहनेवाली अनार्य छोकरी है। देखती नहीं ात-बात में छुरा निकाल लेती है। इसके देश में हम जाएं तो ज़िंदा नहीं लौटें। ुना है कि यमनवाले दूसरे देश के आदमियों को मारकर खा जाते हैं। यह भी नरभक्षी जाति की लड़की है। कहां से इस पिशाची को लाकर सम्राट ने महल में रख दिया !"

शैवाल अकारण इधर से उधर घूमती रही।

एक-एक दिन करके सप्ताह समाप्त हो गया। जो तूफान उठा था वह बाहर से शांत हो गया। आचार्य तिस्स महामंत्री से मिलने आए तो उन्होंने महामंत्री को शांत और प्रसन्न पाया जैसे कुछ हुआ ही नहीं। सम्राट प्रायः नित्य ही महामंत्री की कुटिया पर आते थे किन्तु उन्होंने एक बार भी महामंत्री के मुंह से शशिमित्र का नाम नहीं सुना और न उस रात की भयानक घटना की ही चर्चा सुनी। इस भयानक चुप्पी ने सम्राट को चिंताकुल कर दिया। वे सोच ही नहीं सकते थे कि उनके महामंत्री क्या सोच रहे हैं। यह तो माना ही नहीं जा सकता कि उस दिन की घटना को महामंत्री महत्त्व नहीं देते हैं, शशिमित्र की हत्या का भी उनके मन पर कोई असर न हो ! उन जैसे घोर कूटनीतिज्ञ का मौन किसी आनेवाले निर्णायक तफान का सूचक ही है।

श्रेष्ठिन, नगररक्षक और मंत्रिपरिषद का प्रत्येक सदस्य भी महामंत्री के मौन से कातर हो रहा था। जनता के भीतर जो हलचल पैदा हुई थी वह भी शांत हो गई थी। महामंत्री के मौन ने राज्य पर आनेवाले संकट को कमज़ोर कर दिया था।

सप्ताह के बाद मास समाप्त हो गया। जहां पर शशिमित्र की चिता जली थी वहां महामंत्री नित्य जाते थे और दो फूल चढ़ा आते थे। यह एक ऐसा दृश्य था जो हृदय को चुटकियों से मसल देता था। वृद्ध महामंत्री का वहां जाना और झुककर कांपते हुए हाथों से फूल चढ़ाना और फिर अंगवस्त्र से आंखें पोंछकर विदा होना ऐसा हृदयविदारक चित्र था कि जो महामंत्री के साथ जाते थे वे भी असहाय की तरह रो देते थे।

यदा-कदा कोई अज्ञात व्यक्ति भी वहां जाकर फूल चढ़ा आता था। एक बार किसी कृष्णवस्त्रावृता नारी को कुछ लोगों ने चिता-स्थान के निकट सिर झुकाए और हल्के स्वर में विलाप करते देखा। जब इसकी सूचना महामंत्री को दी गई तो वे विकल हो उठे और बोले, "वह···वह वही हो सकती है···हां, वही हो सकती है···वही···मैं जानता था···किंतु दुर्भाग्य ने दूसरा ही कांड खड़ा कर दिया···बेटी क्षमा कर दो···मेरे ही चलते तुझे यह दिन देखना पड़ा।"

उस दिन महामंत्री बहुत ही व्यग्र नजर आए। आखिर धीरज की भी अपनी सीमा होती है। वह आकाश तो नहीं है जिसका अंत नहीं है। किसी मानव का धीरज उसके जीवन के विस्तार से बड़ा कैसे हो सकता है!

यहां तो यह हो रहा था और चंडाचार्य अपने नरक जैसे घर में बैठकर शीलभद्र और पिप्पलाद से परामर्श कर रहे थे—एक बार तो चूक गया। वह बूढ़ा बच गया और मारा गया उसका शिष्य।

अच्छा हुआ जो किसीने उस योद्धा का भी वध कर दिया। पुरस्कार के पैसे बच गए।

शीलभद्र बोला, "आचार्यदेव, बड़ा नाग नहीं तो उसका ज़हरीला बच्चा ही मारा गया—यह भी सफलता ही है।"

पिप्पलाद ने मंतव्य दिया, "पुरस्कार के पैसे आप बांट दीजिए। हम आपके दो अनुचर हैं, आधा-आधा दोनों को दीजिए।"

चंडाचार्य गालियां बकते हुए आसन पर से उछले। पिप्पलाद यदि पीछे नहीं खिसक जाता तो उसे ज़ोरदार चपेटाघात का कष्ट सहन करना पड़ता। चंडाचार्य ने कहा, "हिस्सा मांगता है साला, तेरे चलते पचासों स्वर्णमुद्राएं प्रतिमास खर्च करता हूं। मद्यप कहीं का—बेशर्म!"

पिप्पलाद दूर से ही बोला, "मद्य क्या मैं अकेला ही पीता हूं! रात-दिन आप

ीते रहते हैं।"

चंडाचार्य गंभीर स्वर में कहने लगे, "आयुष्मान, तू नहीं समझता। मैं तो ज्ञानपूर्वक पीता हूं। भगवान ने सिंह सेनापति से कहा था कि ज्ञानपूर्वक मांस ण करने में दोष नहीं है।"

पिप्पलाद ने नहले पर दहला मारा, 'मद्य पीकर लोग पनालों में लुढ़क पड़ते मांस खाकर तो कोई ज्ञान-विक्षिप्त नहीं हो जाता।"

इस बेअदबी को भी मुस्कराकर चंडाचार्य पचा गए। संत का स्वभाव ही ाह होता है। चंडाचार्य ने कहा, "सुन लिया तेरा तर्क। अब बैठ और आगे के र्यक्रम पर विचार कर। तू परम तार्किक और महाविद्वान है। तुझसे कोई भी करके सफल नहीं हो सकता।"

पिप्पलाद बैठा किंतु इतना हटकर जहां तक चंडाचार्य की मोटी बांह नहीं च सके।

परामर्श के बाद यही तय हुआ कि एक बार और प्रयास किया जाए तथा महा-नी से दस हजार स्वर्णमुद्राएं लेकर इस बार पांचाल देश का कोई भयानक वधिक ाया जाए—ऐसा व्यक्ति बुलाया जाए जिसका पेशा ही खून करना हो। चंडा-र्य महारानी की सेवा में जाने को प्रस्तुत हुए। उन्होंने अनेक तरह के सुगंधित य लगाकर स्नान किया। फिर चीन देश के बने चीवर पहनकर पिप्पलाद से हा, "ठीक तो है न ?"

पिप्पलाद बोला, "आचार्य को देखने से आंखें चौंधिया जाती हैं किंतु एक बात कसर रह गई और वह यह कि किसी हजाम···"

अपने सिर और गालों पर हाथ फेरकर चंडाचार्य ने धीरे से कहा, "बेटा, रूर भूल हो गई। दूसरे ही दिन सारा चेहरा चिउटी के अंडों से भर जाता है—फेद बाल बहुत ही बुरे होते हैं किंतु 'विनय' के अनुसार हम बाल काले करने की वा का व्यवहार नहीं कर सकते।"

रात का प्रथम प्रहर आरंभ हो गया था। एक सुन्दर रथ मंगवाया गया। हाथ पात्र लेकर बहुत ही मथर गति से चलते हुए चंडाचार्य रथारूढ़ हुए। एक योजन ी दूरी कम नहीं होती। रथ पाटलिपुत्र के राजमार्ग से चला। एक भिक्खु को न्दर रथ पर ध्यानस्थ बैठे देखकर पथिक कुछ चौंके जरूर किंतु यह समझकर चुप लगा गए कि अब योग छोड़कर ये भिक्खु भोग में जुट पड़े हैं।

बड़ी शान से चंडाचार्य राजमहल में पधारे। द्वाररक्षक अभिवादन करके हट गए। रथ आगे बढ़ गया। यह भी एक शान थी।

सम्राट के दर्शन करके लौटी हुई तिष्यरक्षिता का शृंगार भी प्रलयोत्प ही कहा जा सकता है। इसी समय जन्म-जन्मान्तर के संचित पाप की तरह चार्य अंतःपुर में पधारे।

उनके लिए समय का कोई बंधन नहीं था। सभी जानते थे कि आ मागधेश्वरी के गुरुवत् पूज्य हैं। आचार्य तिस्स भी मागधेश्वर के गुरुवत् पूज जो शायद ही कभी पधारते हों, किंतु चंडाचार्य बराबर कृपा करते ही रहते थे

उल्लसित मुद्रा से महारानी को अभिवादन करते देखकर चंडाचार्य ने भांप लिया कि उनकी योजना निश्चय ही सफल होकर रहेगी—दस हज़ार स मुद्राएं ज़रूर ही मिल जाएंगी।

बातों ही बातों में चंडाचार्य ने सब कुछ कह दिया तो तिष्यरक्षिता ने "जिसने आपके धनुर्धर को मार गिराया था वह एक पगली स्त्री थी जो धनुष- धारण करके गंगातट पर घूम रही थी और कह रही थी कि वह कर्ण है, अर्जुन

चंडाचार्य चौंककर बोले, "वह पगली थी ? कैसी पगली ? आश्चर्य !"

तिष्यरक्षिता ने कहा, "उसका नाम क्या है यह तो पता नहीं, किंतु ऐसा में आया है कि वह कभी बदनाम स्त्री थी और फिर पगली हो गई। मीनाक्षी···"

चण्डाचार्य आसन पर से उछल पड़े और दोनों हाथ हवा में उछालते बोले, "असंभव ! बिलकुल ही असंभव ! वह मीनाक्षी पगली नहीं है। वह दासी है जो यहां-वहां चूल्हा-चौका करती फिरती है। खैर, जो हुआ वह ठीक हुआ। आप चिंता न करें। मैंने यक्षों को अपना दास बनाया है तो मानव की शक्ति जो मेरे सामने टिके ! आपने सुना होगा मागधेश्वरी, भगवान की सेव राजगृह का महाबली मखादेव यक्ष अपने बीस कोटि सेवकों के साथ रहता अब वह मेरे साथ रहता है। भगवान के निर्वाण के बाद सवा दो सौ वर्ष तक मखादेव असहाय बना रहा, किंतु आज वह मेरे साथ है, मेरा आज्ञाकारी सेवक

तिष्यरक्षिता मन ही मन डर गई और विनयपूर्वक बोली, "आपकी श की महिमा का बोध मुझे है। विश्वास है कि आप सब कुछ कर सकते हैं।"

मंद मुस्कान से उस विशाल कक्ष को उद्भासित करते हुए चंडाचार्य क

"और मैं उसका सेवक हूं जो धर्म के लिए अपने को होम दे। मागधेश्वरी
वय ही धर्म की मूर्ति हैं। भगवान तथागत की संचित तपस्या आपके रूप में
रित हुई है, उनका तेज सम्राट के रूप में प्रकट हुआ। मैंने योग की दृष्टि से
कुछ देख लिया है तब मुंह खोल रहा हूं।"

तिष्यरक्षिता लज्जा और विनय का नाट्य करती हुई बोली, "मैं एक साधा-
नारी हूं। हां, आर्यपुत्र निश्चय ही भगवान के तेज से अलंकृत हैं।"

इसके बाद दोनों गंभीर विचार में डूब गए। अच्छी तरह गरम करके ही लोहे
झुकाया जाता है। चंडाचार्य इस कला में प्रवीण थे। दस क्या पचीस
र स्वर्णमुद्राएं प्राप्त करने में वे सफल रहे और बहुत ही उल्लसित हृदय से
ा हुए। उनके पैर सीधे नहीं पड़ रहे थे। उल्लास का वेग संभालना सबके
आसान काम नहीं है। जो दुःख और उल्लास के वेग को संभाल ले वही योगी
योगी से भी श्रेष्ठ महामानव है, अतिमानव है जो चंडाचार्य नहीं थे।

चंडाचार्य विदा हुए। एक सुंदरी दासी उल्का—मशाल—लेकर आगे-आगे
। रात का दूसरा प्रहर आरंभ हो गया था। वे महल की कई मंजिलें उतर-
ीचे पहुंचे। अभी भी उन्हें उस विशाल भवन के कई हिस्सों को पार करना
—विशाल खंभे और लंबे-लंबे बरामदे, जो बिलकुल ही निर्जनता के कारण
वने लगते थे। प्रदीपों का मंद प्रकाश फैल रहा था। इसके बाद एक पतला-
गलियारा था जो बहुत ही लंबा तथा सुरंग की तरह था। उसके बाद था
ान पौर। आगे-आगे उल्का लिए वह सुंदरी दासी चल रही थी। उसकी क्षीण
, पृथुल नितंब और पीठ पर डोलनेवाली वेणी को चंडाचार्य देख सकते थे।
कभी वह जरा-सा मुड़ती तो उसके गोरे कपोलों को बार-बार स्पर्श करनेवाले
जटित कर्णाभूषण को वे देख लिया करते थे। इस तरह चलते हुए चंडाचार्य
अनिर्वचनीय रस का अनुभव कर रहे थे। वे इसीलिए धीरे-धीरे चल रहे थे
कुछ अधिक समय तक अपने को उस आनंदलोक में रख सकें।

जैसे वे पतले गलियारे में पहुंचे एकाएक शैवाल सामने प्रकट हुई। उसके
में चमचमाती हुई तलवार थी। दासी डरकर एक ओर हट गई। अच्छी तरह
ड़ों को समेटे और बाल खोले शैवाल साक्षात् मौत की तरह प्रकट हुई। उसने
ही दासी को कहा, "चुपचाप खड़ी रह। चिल्लाई तो सिर काट लूंगी।"

दासी थरथर कांपती हुई जहां की तहां मूर्तिवत् खड़ी रह गई। वह शैवाल के

भयानक स्वभाव से परिचित थी।

शैवाल ने चंडाचार्य से प्रश्न किया, "क्यों रे नीच, तूने मेरे सिर पर वज्र क्यों किया ? शशि ने तेरा क्या बिगाड़ा था ?"

हक्के-बक्के-से चंडाचार्य बोले, "मैं···तो···कुछ नहीं···जानता। मुझे··· दो···मैं निरपराध···हूं।"

"यह ले राक्षस", इतना बोलकर शैवाल बिजली की तरह तड़प उठी। पहले ही प्रहार में चंडाचार्य का सिर कटकर नीचे गिर गया। फिर भी उसने नहीं लिया। जिस तरह रूई धुनी जाती है उसी तरह तलवार से उसने शरीर को देखते-देखते धुन डाला। चंडाचार्य के मुंह से एक शब्द भी नहीं निक बोलने या चीखने के लिए उन्होंने मुंह खोला ही था कि लपलपाती हुई तल उनकी मोटी गर्दन पर वज्र की तरह गिरी और सारा किस्सा समाप्त हो गया उनके कटे हुए सिर का मुंह खुला हुआ था।

वह दासी, जिसने उल्का धारण कर रखा था, मूर्छित होकर गिर पड़ी। शैवाल ने चंडाचार्य की तड़पती हुई लाश पर बार-बार थूका और वह तीर की बाहर की ओर भागी। प्रहरी ने उसे रोकना चाहा किंतु उसे आहत करती हुई बाहर निकल गई और वायुवेग से उस ओर भागी जहां सम्राट थे। वह एक उ था। द्वार पर पहुंचते ही वह प्रहरी के आगे तलवार फेंकती हुई बोली, "पीछे ह

पत्थर के फर्श पर झनझनाती हुई तलवार गिरी। किंकर्तव्यविमूढ़ प्रहरी तक यह सोचें कि यह सब क्या हो रहा है, तीर की तरह शैवाल अंदर घुस गई। द्वाररक्षकों में से किसीने भी उसे नहीं रोका। सारा कांड पलक मारते ही हो ग

शैवाल तूफान की तरह उद्यान में घुसी और जब तक प्रहरी उसे पक वहां पहुंच गई जहां सम्राट अपने महामंत्री के साथ बैठे थे। प्रहरी दूर प हक्के-बक्के-से रुक गए। अब वह मागधेश्वर की शरण में थी।

खून से रंगी हुई एक नारी-मूर्ति को अपने सामने देखकर क्षण-भर के महायोद्धा अशोक भी घबरा गए। महामंत्री जैसे के तैसे शांत बैठे रहे। उद्यान के सुंदर सरोवर के तट पर बैठे थे—तीसरा कोई भी न था।

सम्राट ने गंभीर स्वर में पूछा, "तू कौन है ?"

शैवाल सम्राट के चरणों पर गिरकर बोली, "महारानी की दासी शै हूं।" चौंककर महामंत्री ने शैवाल की ओर चांद की स्वच्छ रोशनी में देखा।

ी शैवाल है जिसको स्मरण करते हुए शशिमित्र ने शरीर त्याग किया था।

सम्राट क्षण-भर शांत रहकर बोले, "तू यमन सरदार की कन्या है ?"

शैवाल उठकर बैठ गई और हाथ जोड़कर बोली, "हां, प्रभो !"

सम्राट ने पूछा, "तू इस समय, इस रूप में कैसे आई ?"

शैवाल ने सारी कथा सुनाकर कहा, "आप ही हमारे जैसों के पिता और प्रभु । उस राक्षस चंडाचार्य ने सारे साम्राज्य को नष्ट करने का षड्यंत्र रचा था। ज्य महामंत्रीजी की हत्या का सारा प्रबन्ध उसने किया था। यह अच्छा हुआ कि त्यारे का बाण मेरे भाग्य को नष्ट करके ही विफल हो गया। अब तो शशिमित्र हा नहीं जो वह अपने ऊपर बाण का प्रहार सहकर इस साम्राज्य की, रक्षा करे। सरा प्रहार राष्ट्र के भाग्य को ले बीतेगा। मैंने राष्ट्र की रक्षा की यह नहीं कह कती, किंतु आपसे विनय है कि आप मुझे वधिक के हवाले कर दें। मैं शशिमित्र के निकट जाऊंगी।"

इतना कहकर शैवाल फूट-फूटकर रोने लगी और खून से भीगे हाथों से सम्राट के पैर पकड़कर मूर्च्छित हो गई।

महामंत्री पत्थर की मूर्ति की तरह चुप बैठे थे। वे बोले, "मागधेश्वर, शशिमित्र मेरा पुत्र था। यह मेरी पुत्रवधू है जो शशिमित्र की वाग्दत्ता पत्नी थी। इस अभागी विधवा का न्याय कीजिए।" तब तक शैवाल होश में आ गई। वह उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़े सम्राट के आदेश की प्रतीक्षा में उनके शांत चेहरे की ओर देखने लगी। सोचकर सम्राट बोले, "तू पगली है। जो होना था वह हो चुका। तू मेरी बेटी संघमित्रा की सेवा में रह। आज से तू भी मेरी बेटी हुई। तू अब दासी नहीं रही। अपनी बहन को प्रसन्न रखना, उसकी सम्यक् रूप से रक्षा करना।"

वृद्ध महामत्री, जो अब तक शांत थे, फूट-फूटकर रोने लगे। वे उठकर शैवाल के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "बेटी, भूल जा कि क्या हुआ। आज से तू महान मागधेश्वर की कन्या के पद पर प्रतिष्ठित हुई। इस पदगौरव की रक्षा अंतिम सांस तक करना, यही इस बूढ़े अभागे की याचना है।"

शांत नील गगन में ताराओं के साथ तारानाथ सुशोभित थे। वे धरती पर अमृतवर्षा कर रहे थे और वह अमृत उस अमृतवर्षा से हीन ही था जो उस समय सम्राट अशोक के उद्यान में हुई थी।

इस तरह यह उपन्यास समाप्त हुआ। □ □ □

1478

साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कारप्राप्त

तीन श्रेष्ठ उपन्यास

गाइड

अंग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार आर० के० नारायण का एक उत्कृष्ट उपन्यास

जिस पर हिन्दी में फिल्म भी बनी है

मूल्य : ५·००

रथचक्र

मराठी के विख्यात कथाकार श्री० ना० पेंडसे का भारतीय जन-जीवन पर आधारित एक हृदयस्पर्शी उपन्यास

मूल्य : ६·००

लद्दाख की छाया

अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध लेखक भवानी भट्टाचार्य का एक उत्कृष्ट उपन्यास चीन-भारत संघर्ष की पृष्ठभूमि पर

मूल्य : ८·००

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

LIBRARY
WORLD KONKANI CENTRE
Shakthinagar, Mangalore

No: Acc. No :

Issued on	Borrower's No. and Signature	Returned on

T093
N-1000
MOST

LD KONKANI CENTRE
LIBRARY
SHAKTHINAGAR D.K.

No. _____

ooks lost, torn, defaced, marked
r damaged in any way shall
ave to be replaced by the borrower.

ooks issued can be recalled at
ny time, if necessary.

LP TO KEEP THIS BOOK
FRESH & CLEAN